मैं और मैं

मैं और मैं

मृदुला गर्ग

मंजुल भगत को

मैं और मैं

एक

तेज कदमों से चलती माधवी अपने प्रकाशक के दफ्तर से निकलकर स्कूटर की तरफ बढ़ी। डेढ़ बजने से पहले घर पहुंचना है। बच्चों के स्कूल से वापस आने से पहले। दो घंटे बहस में कब निकल गये, पता नही चला। उसके प्रकाशक का कमरा क्या है, लेखकों का अड्डा। आये दिन महफिल और बहस-मुबाहसा। आज बातचीत का विषय उसका अपना इकलौता सद्य-प्रकाशित उपन्यास था। अपने लेखन पर बहस हो और लेखक बीच में छोड़कर उठ जाये, तपस्वी की-सी संकल्पशक्ति चाहिए। माधवी को अपने पर गर्व है, बच्चों की उपेक्षा नही की, समय रहते उठ गयी।

स्कूटर में बैठने लगी तो कौशल कुमार ने कहा, "मैं आपके साथ घर चलूं।" पूछा नही, कहा।

माधवी ने चौंककर उसकी तरफ देखा। हां, दफ्तर से साथ बाहर निकला था, लेखक है, बहस में शरीक था, सबसे मुखर। पर···

उसने घड़ी पर नजर डाली। बारह बजकर पैंतीस मिनट।

"मेरे घर? इस वक्त···" उसने वाक्य अधूरा छोड़ दिया। अकलमंद को इशारा काफी है। वह समझ जायेगा।

पर शायद समझ का बुद्धि से कोई तआल्लुक नही है।

"क्यों, दुपहर के भोजन का वक्त है क्या?" कौशल कुमार ने पूछा।

माधवी पानी-पानी हो गई। बात ठीक थी। वह यही सोच रही थी। बच्चे आते ही खाना मांगते है, वह उनके साथ मेज पर बैठकर खाती है। आदत है। कौशल को खाने के लिए कहना पड़ेगा और एक अजनबी की उपस्थिति उस समय बच्चों को खलेगी। पर बात को इस तरह स्पष्ट कहकर कौशल ने उसे बगलें झांकने पर मजबूर कर दिया।

"दरअसल डेढ़ बजे बच्चे स्कूल से आ जाते हैं···" उसने कहा तो कौशल बात काटकर बोला, "उनके आने से पहले उठ जाऊंगा। सिर्फ आधा घंटा बैठूंगा।

कल जो आपने मेरी कहानी के बारे में कहा था, उसे लेकर मन में कुछ शंका थी। बच्चों को पता भी नहीं चलेगा, कोई आया था।"

माधवी को लगा, आखिरी वाक्य उसने कुछ फुसफुसाकर कहा है। उसकी त्योरी चढ़ गयी। लगता है, बात का कुछ और मतलब लगा लिया है इसने। बच्चे आ जाते हैं नहीं; आते हैं, कहना चाहिए था।

"बच्चों को पता चलने का सवाल नहीं है," उसने कहा, "उनके आने के बाद मुझे अपना समय उन्हें देना होता है।"

"वही तो," कौशल ने भोलेपन से कहा, "मैं उनके आने से पहले उठ जाऊंगा।"

एक बार फिर माधवी शर्मिंदा हो गयी और उसी शर्मिंदगी में कौशल के 'तो चलूं' कहने पर 'हां' कह बैठी। फिर तो कूदकर कौशल स्कूटर में सवार हो गया। खुद बैठने में उसे वक्त लगा।

स्कूटर चल पड़ा। पहियों की जबरदस्त खड़खड़ के ऊपर कौशल के शब्द टूटकर गिरने लगे। बिना रुके वह बोल रहा था। पर माधवी तक 'नहीं' के बराबर पहुंच रहा था। वह बेहद परेशान थी।

"आप क्या सोचती हैं ?" दो बार कौशल की चिल्लाहट कान में पड़ी तो उसे भी चिल्लाकर कहना पड़ा, "मैंने सुना नहीं, आप क्या कह रहे थे ?"

"क्या ?"

"मैंने सुना नहीं, आप क्या कह रहे थे," उसने आवाज को खींचकर जबरदस्ती ऊपर उठाया तो खांसी से बेहाल हो गई।

स्कूटर की रफ्तार और तेज हुई। कौशल के शब्द टूटकर भी कानों में पड़ने बंद हो गये पर उसका खुलता-बंद होता मुंह सामने रहा। स्कूटर के शोर, उसकी खांसी, दूसरे तक पहुंच न पाने की मजबूरी, सबसे बेखबर, कौशल बोले चला जा रहा है।

अपने कोने में सिमटते हुए माधवी ने महसूस किया, यह आदमी किस कदर बदशक्ल है। कुदरत की बख्शी बदसूरती से इत्मीनान नहीं हुआ, अपनी तरफ से काफी मदद की है। पान इतने खाता है कि जबान और दांतों का रंग कीचड़ जैसा हो गया है। बात करते हुए, कील मुहासों से भरे उसके काले-लंबूतरे चेहरे के बीच मुंह के अंदर घूमती कत्थई-लाल जबान कीड़ों पर झपटती छिपकली की याद दिलाती है। वह बिल्कुल बेफिक्र है। मुंह में पान है, इसकी परवाह किये बगैर धाराप्रवाह बोल रहा है और छिपकली···उफ ! माधवी की देह ने सिहरन महसूस की तो बुद्धि ने फौरन फटकार बतलाई। बदसूरत होने से क्या होता है, मालूम है न, कितना बढ़िया लेखक है ! चार दिन पहले उसकी जो कहानियां पढ़ी हैं, उनके प्रभाव से मुक्त हो पाई है ? नहीं, नहीं हो पाई। कहानियां वाकई

दहला देने वाली थी। पढकर लगा, सब-कुछ अपने केन्द्र-बिंदु से छितर गया है। वह, जिसे यथार्थ की संज्ञा दी जाती है, सच नही है और अगर है तो गलत है। तमाम रिश्ते, मूल्य, धारणाएं झूठी हैं। हम सब मरे हुए लोग हैं। लाशें, जिन्हें कठपुतली वाले ने डोर मे बांध रखा है और इधर-उधर नचा रहा है। उसके इशारों पर नाचने को जिन्दगी का नाम दे भले ही दें, है वह मौत का हिस्सा। वैसे भी आदमी जिंदगी का इस्तेमाल दूसरों को मारने के लिए करता है। अजीब जद्दोजहद है। लाशें एक-दूसरे को मार रही हैं। पर किसलिए ? सब बेकार है, फिजूल है, ढोंग है, जीने का स्वांग है, सच कुछ है तो मौत। जीवन निरर्थक है तो शरीर का क्या महत्त्व ? कोई कितना भी कुरूप हो या रूपवान्…

"मैं बहुत बदसूरत हू…नही ?" सहसा कौशल ने कहा।

चौराहे की लाल बत्ती ने स्कूटर की रफ्तार पर रोक लगा दी थी, इसलिए शब्द स्पष्ट कानों मे पड़े।

माधवी का खून जम गया। उसका सोचा, इसने कैसे सुन लिया। शायद उसके कोने मे सिमट जाने से समझ गया हो। वाह, क्या सूक्ष्म भावानुभूति है !

प्रतिवाद करने के सिवाय चारा न था। "नही, नही, बिल्कुल नही !" उसने अतिरिक्त उत्साह के साथ कहा। मन मे चोर जो था।

"मैं आपके मन मे घृणा नही जगाता ?"

"नही, नही, बिल्कुल नही !" उसने उसी गर्मजोशी के साथ कहा।

"आपको नही लगता, तो मैं बदसूरत हो ही नही सकता।" उसने गहरे इत्मीनान के साथ कहा और एक भीगी-सी मुस्कराहट उसके चेहरे पर चिपक गई, जिसने उसके लिजलिजे होठो को और भोंडा बना दिया।

उसकी तरफ देखा तो मन मे आया कि किसीके होठ कुदरती तौर पर इतने काले नही हो सकते। जरूर एक के बाद एक सिगरेट का धुआ उगलते रहने के कारण हो गये है। इसकी तमाम आदतें ऐसी क्यों है जो बद से बदतर सूरत बरशें ? उसने देखा, उसके चेहरे पर वही रूमानी मुस्कराहट चिपकी हुई है। उसे अपनी तरफ देखता पाकर उसकी लिजलिजाहट और बढ गई। माधवी की परेशानी भी। लगता है, इसने मेरी बात पर पूरा यकीन कर लिया है ! यह समझता क्यों नही, कुछ बातें हैं जो औपचारिकता के नाते कही जाती हैं पर उनका कोई मतलब नही होता। अब किसी आदमी से यह तो कहा नही जा सकता—आप बेपनाह बदसूरत हैं, आपकी सूरत देखकर मैं वितृष्णा से सिहर उठती हू। कौशल कुमार के रचना-संसार मे बसने वाले जीव कह सकते हों, तो हों, वह नही कह सकती। मगर उसकी गलतफहमी दूर करने के लिए कुछ तो कहना ही होगा।

"मुझे क्या लगता है, उसका कोई महत्त्व नही है," उसने कहा।

चौराहे की वत्ती हरी हो गई। स्कूटर खड़खड़ाकर आगे दौड़ गया।

"मुझे किसी पुरुष की शक्ल-सूरत में दिलचस्पी नहीं है," माधवी ने कहा पर यह वाक्य शोर में दव गया और पहले वाक्य के जवाव में कौशल चिल्ला उठा, "महत्त्व है! मेरे लिए वहुत महत्त्व है!"

सीलन-भरी मुस्कराहट की छटा एक वार फिर देखने को मिली और माधवी ने तीखी आवाज में कहा, "नहीं होना चाहिए।"

मुस्कराहट कायम रही। माधवी अपने को दुहराती पर देखा, घर जाने वाली गली सामने है और जरूरी है कि स्कूटरचालक को दायें-वायें की हिदायतें दी जायें। फिर घर सामने था, किराया अदा करना था, वगल में कौशल कुमार खड़ा था। बिल्कुल न चाहते हुए वह इसे साथ कैसे ले आयी, सोचती हुई वह भीतर घुसी, कौशल कुमार के साथ।

कमरे में पहुंचकर घड़ी देखी। वारह वजकर पचास मिनट। नौकर ने मेज पर थालियां लगा रखी हैं। खाना भी तैयार होगा। वस, खीर उसे वनानी है। छोटे वेटे समीर से सुवह वादा किया था। यह चला जाये तो···

"चाय नहीं पिलायेंगी ?" कौशल कुमार ने आरामकुर्सी में धंसते हुए कहा।

रसोईघर में जाकर वह नौकर को दो प्याले चाय वनाने की हिदायत दे आयी, लौटकर पूछा, "क्या वात थी!"

"किसमें ?"

"आप कह रहे थे न, कुछ जरूरी वात करनी है।"

"हां, कहानी के वारे में। खोलकर वतलाइए, पढ़कर क्या लगा आपको ?"

"वतलाया तो था, कहानी वहुत उद्विग्न करती है," उसने घड़ी पर नजर डालकर संक्षिप्त उत्तर दिया।

"क्या उद्विग्न करता है, समाज में होने वाला शोषण या पात्र के मानसिक ह्रास की स्थिति ?"

"दोनों।"

"कैसे ? मेरी कहानी में सामाजिक शोषण तो दिखलाया नहीं गया। लगता है, आप मेरी कहानी समझीं नहीं।"

"समझी कैसे नहीं," माधवी के अंदर का वुद्धिजीवी चोट खा गया। "सामाजिक शोषण दिखलाया नहीं गया, ठीक है, पर पात्र की मानसिकता वनी उसीसे है," उसने कहा, "वह मरना चाहता है पर इतना निष्क्रिय हो चुका है कि कर कुछ नहीं सकता, वस चाह सकता है। आत्महत्या के लिए मन में लालच है पर आत्महत्या करने की ताव नहीं। यही तो है जो उद्विग्न करता है। आत्महत्या हमारे अंदर संवेदना को जन्म देती है, विक्षोभ को नहीं। क्योंकि उसमें आदमी सक्रिय होता है, आवेश-आवेग को महसूस कर सकता है। आत्महत्या जीवित

व्यक्ति की बात कहती है, इसलिए महान होती है। पर आपकी कहानी का नायक ! वह तो कब का मर चुका। फिर भी जिये जा रहा है…"

कहानी उसपर हावी हो गयी। कब आकर हरिचरण चाय रख गया, कौशल कुमार ने लम्बे-लम्बे घूंट भरकर अपना प्याला खाली कर दिया, माधवी का प्याला पड़ा पपड़ी जमाता रहा, उसे ठीक से मालूम नहीं हुआ।

"आप मेरी बात कितनी अच्छी तरह समझी हैं," कौशल कुमार ने आगे झुककर कहा, "शायद इसलिए क्योंकि आपकी रचनाओं में भी वही अनर्थकता की भावना है जो मेरी कहानी में। एक बात और कहूं, आपका उपन्यास पढ़ा तो लगा, लेखिका का कोई वर्ग नहीं है, इन्सान इसके लिए बस इन्सान है। दुर्लभ गुण है।"

माधवी का चेहरा खिल गया। "सचमुच ऐसा लगा आपको ?" उसने गद्गद स्वर में कहा, "सच कहती हूं, मुझे पाखंड और आडंबर से सख्त नफरत है।"

"जानता हूं। एक प्याला चाय और पिलायेंगी ?" कौशल ने एक ही सांस में दोनों बातें कहीं।

माधवी बुद्धि के छज्जे से वास्तविकता की पथरीली धरती पर गिरी। आडंबर से नफरत है तो कह दे, अब आप जाइए, डेढ़ बजने वाला है, और चाय नहीं बन सकती। फिर होंठ खुलकर बंद क्यों हो गये ? बार-बार घड़ी देखकर क्यों रह गई, जबान खुली क्यों नहीं ?

"आज सुबह बिना चाय पिये ही घर से निकल पड़ा था," कौशल ने कहा, "शक्कर नहीं थी।"

"अभी बनवाती हूं," हकलाकर माधवी ने कहा और रसोईघर की तरफ चल दी।

बाहर दरवाजे की घंटी घनघना उठी। एक-दो-तीन बार। बच्चे इसी अंदाज में घंटी बजाते हैं। वह बाहर भागी। दरवाजा खुलते ही आलोक और समीर तेजी से बैठक में आये और सोफे पर बस्ते पटक दिये। अजनबी पर नजर पड़ी तो उसी तेजी से बाहर निकलकर बोले, "कौन हैं ?"

"एक लेखक हैं," उसने कहा।

"इस वक्त क्यों आये हैं ?" आलोक बोला। वह दस बरस का है और बेहद मुंहफट।

"बस, जा रहे हैं।"

"खीर नहीं बनी ?" समीर ने रोनी आवाज में पूछा।

"आज समय नहीं मिला, कल बना दूंगी," उसने आश्वासन दिया पर आठ बरस का समीर रो ही दिया, "आज क्यों नहीं बनी ? मैं नहीं खाऊंगा खाना।"

"मैं क्या करती, ये आ गये," माधवी ने कुछ-कुछ समीर का अनुसरण करते हुए कहा।

"इस वक्त क्यों बुलाया ?" आलोक ने अपने आक्रामक अंदाज में कहा।

"मैंने नहीं बुलाया," माधवी के भीतर का क्षोभ उभर आया, "प्रकाशक के पास गयी थी, वहीं मिल गये।"

"मिल गये, ठीक है, पर यहां लाने की क्या जरूरत थी ?" आलोक ने ऊंची आवाज में कहा।

"चुप रहो, सुन लेंगे," माधवी ने दबी आवाज में फटकारा, साथ ही राहत भी महसूस की। सुन लिया होगा तो जल्दी चला जायेगा। जितने ये लोग खाना खायेंगे, वह खीर बना लेगी। हरिचरण ने आकर सूचना दी कि खाना लग गया है, आलोक खाने को तैयार था पर समीर अपने कमरे में जाकर बिस्तर पर लेट गया। कोपभवन की रस्मअदायगी खीर न बनने की वजह से नहीं, उसके कहीं और मसरूफ होने के कारण है, वह जानती है। खीर बनाकर मना लेगी, उसने सोचा और आलोक के साथ बैठक में लौट आयी। देखा, कौशल कुमार आराम से बैठा सिगरेट फूंक रहा है।

"मेरा आदर्श दास्तायेव्स्की है," उसे देखते ही वह बोला, "उसके सामने कामू-काफ्का भी बौने हैं, बौने।"

अरे, यह न जाने किस दुनिया में विचर रहा है। आलोक की बात इसने भला क्या सुनी होगी।

"देखिए," उसने कहा, "बच्चों के लिए कुछ करना है, इस वक्त आप···"

"हां-हां, कीजिए न, आप अपना काम कीजिए। मैं बैठा हूं," उसने बात काटकर कहा।

अब ?

"दूध उबल रहा है," हरिचरण ने आकर घोषणा की। आलोक को मेज पर बिठलाकर वह रसोईघर में चली गयी।

खीर बनायी, रूठे समीर को मनाया और खाने की मेज पर ले आयी। देखा, कौशल उसी इत्मीनान के साथ बैठा सिगरेट फूंक रहा है। सस्ते तम्बाकू की तीखी गंध और धुएं की वजह से कमरा, कब्रगाह की-सी घुटन लिये हुए है। घड़ी सवा दो बजा रही है। भूख जोर मार रही है।

"आइए," उसके मुंह से निकला, "आप खाना ही खा लीजिए।"

कौशल उठा और मेज पर आ गया। माधवी ने खाना परोस दिया। उसने खा लिया। खाकर उठा कि माधवी ने हाथ जोड़ दिये, "अच्छा तो···"

कौशल ने हाथ नहीं जोड़े, आरामकुर्सी की तरफ बढ़ता हुआ बोला, "चाय नहीं पिलायेंगी ?"

हतप्रभ माधवी हाथ जोड़े बेवकूफ-सी खड़ी रही। आलोक ने आकर बचा लिया।

"कल मेरा हिंदी का इम्तिहान है, तुमसे कुछ पूछना है," उसने फटी आवाज में कहा। माधवी ने साहस बटोरा और कह ही डाला, "माफ कीजिएगा, अब मुझे बच्चों को पढ़ाना है।"

"क्या बजा है ?" कौशल ने पूछा।

"तीन।"

"अरे, तीन बजे तो मुझे रेडियो स्टेशन पहुंचना था।"

"तो जाइए न। मुझे भी अब काम है," माधवी ने रुखाई से कहा।

"बस में पहुंचना तो मुश्किल होगा, स्कूटर लेना पड़ेगा। दस रुपये देंगी ? कल लौटा दूंगा," कौशल ने एक सांस में कहा।

"हां-हां," माधवी ने उत्साहित होकर कहा। दस रुपये में पिंड छूटे तो गनीमत जानो।

उसने जल्दी से बटुआ खोलकर दस का नोट उसकी तरफ बढ़ा दिया और खुद बाहर दरवाजे की तरफ बढ़ गयी।

"कल लौटा दूंगा," उसके पीछे से आकर कौशल ने कहा।

"ठीक है, कोई जल्दी नहीं है," कहकर उसने हाथ जोड़ दिये।

"ये दस रुपये में..." दरवाजे के पल्लों के बीच खड़े रहकर कौशल ने कहना शुरू किया तो 'नमस्कार' कहकर वह लौट पड़ी। समझ गयी थी कि खड़ी रही तो वह बोलना बंद नहीं करेगा। चला जायेगा तो दो मिनट बाद जाकर दरवाजा बंद कर लेगी।

माधवी को लौटकर भीतर जाती पीठ को चंद पल निहारकर कौशल सीढ़ियां उतर गया। चौड़ी सड़क पर आकर उसने जेब से दस का नोट निकालकर परखा। एकदम करारा नोट है। बेदाग और खूबसूरत, उस घर की मालकिन की तरह ! उसके होंठों ने मुरकी खाई। नोट कैसा भी हो, काम चला देता है पर नये-करारे नोट का अपना नशा है। सौंदर्य जहां भी हो, मन में पुलक जगाता है और साथ ही वितृष्णा। वह अच्छी तरह जानता है कि जब तक सौंदर्य मन में पुलक जगाता रहेगा, वह दुनिया को पूरी तरह नकार नहीं सकेगा, कहीं-न-कहीं *नफरत की आग कम होती रहेगी। क्यों ? इतनी बदसूरती के बीच रहकर भी* वह सौंदर्य से वशीभूत हुए बगैर क्यों नहीं रहता ? उसके अपने जीवन में कहीं कुछ सुंदर नहीं है। चेचक के दागों से गुदे बीवी के चेहरे से लेकर घर से सटे उस पोखर तक, जिसके किनारे बूचड़खाने के कसाई जानवरों की खाल उतारते

हैं। उसके खून-घुले पानी से उठते बदबू के भभकों जैसी ही रही है, हमेशा से उसकी जिंदगी। पोखर के बराबर से गुजरता है तो डरकर कांप जाता है। और जो हो, यह न हो कि अंत में इसी पोखर के गंदे पानी में कूदकर जान देनी पड़े। जिंदगी खूबसूरत न हो सकी पर मौत···कम से कम उसकी मौत···!

पोखर के पानी के साथ ही उसे अपनी कमीज का बेहद गंदा कालर याद आ गया। हफ्ते-भर से पहन रहा है। रात में धोकर डाली जा सकती है पर साबुन···इन दस रुपयों में से साबुन की टिकिया जरूर खरीदेगा। एक रुपये की आयेगी। फिर आटा, नमक, दाल···छोड़ो दाल···प्याज-हरी मिर्च से ही खा लेंगे। दांतों के नीचे प्याज और सूखी रोटी की किचल-किचल, उफ! गलती की। दस मांगे। बीस मांगने चाहिए थे। दस रुपयों में क्या-क्या कर लेगा। देखेंगे। अभी तो सिगरेट खरीदो। खत्म हो गयी···

उसके पास सिगरेट होती हैं तो कभी किसीको पिलाने से इन्कार नहीं करता। पर दूसरे लोग! साले कभी जो सिगरेट उसकी तरफ बढ़ा दें। उल्टे नसीहत देंगे, कम पिया करो, इतनी सिगरेट सेहत के लिए नुकसानदेह होती है। साले, चुगद···बुदबुद करके उसने सैकड़ों गालियां बाहर उछाल दीं। फिर कुछ राहत महसूस करते हुए सोचा, पूरा पैकेट खरीदेगा और अकेले पियेगा।

पहली सिगरेट को महबूबा की तरह होठों से छुआ और बस-स्टाप के पीछे की दीवार का सहारा लेकर खड़ा हो गया।

हां, धुएं के गोल-गोल दिलकश छल्ले बनाते हुए उसने सोचा, खूबसूरत औरत है उस घर की मालकिन। कमनीय और आत्मग्रस्त। आत्मग्रस्त न होती तो पीछा छुड़ाने को इतनी तत्परता से दस का नोट निकालकर उसके हवाले न कर देती।

आत्मग्रस्त लोग उसे पसंद हैं। वे खुदगर्ज होते हैं पर दुनियादार नहीं, कूदकर चलती बस में सवार होते हुए उसने सोचा, उस घर की मालकिन की तरह।

दो

सुबह उठी तो माधवी के मन पर असंतोष की असंख्य परतें जमा थीं। इच्छा हो रही थी कुछ लिखे पर कोई ठोस तस्वीर सामने नहीं थी जिसे शब्दों में उतारा जा सकता। नया सोचने की राह में पुराना उपन्यास रोड़े अटका रहा था। उसके बारे में ठीक राय मिल जाती तो···कितने लोगों ने कितनी तरह की बातें कहीं पर एक कौशल कुमार ही था जिसकी बात सुनकर लगा, वह जो कहना चाहती थी, पाठक तक पहुंच गया है। वह कहना चाहती थी कि वांछित पुरुष का पा

लेने से ही स्त्री का जीवन सार्थक नही हो जाता, एक पुरुष को छोड़कर दूसरे के पास जाने से क्षणिक आवेग भले शांत हो जाये, अंततः निस्सारता ही हाथ लगती है। उसके साथी लेखकों ने समझा था, या जानबूझकर नहीं समझा था, नायिका में निस्सारता की भावना और कुछ नहीं, बस उच्चवर्गीय ऊब है। बड़ा दुख हुआ था माधवी को। पर कल कौशल से बात करके सिर से बोझ उतर गया था। काश, उस वक्त डेढ न बजा होता।

कौशल कुमार अगर आज आये ''ग्यारह बजे''जमकर बात हो उपन्यास पर। वह भी एक ही पागल है। रोज सुबह होती है, और सुबह से शाम तक तीन बार खाना पकता है। एक दफा खीर न बनी, दूसरी बार बन जाती, बातचीत का सिलसिला तोड़ने की क्या जरूरत थी। ऐसे मौके क्या रोज-रोज आते हैं। अगर आज कौशल कुमार आये'''पर क्यों आयेगा वह ? छोडो।

उसने रजाई को सिर तक खीच लिया। बच्चो को स्कूल भेजकर दुबारा विस्तर मे जा दुबकी है। रोजमर्रा के कामो में मन नहीं रम रहा, दिमाग मे बलबले उठ रहे हैं।

"मेरा ब्रीफकेस देखा है ?" कहता हुआ राकेश कमरे मे आया।

"ऊं-हूं," उसने रजाई के अदर ही बुदबुद की।

"क्या हुआ, तबीयत तो ठीक है न ?"

"हूं।"

"अरे मुंह तो रजाई से बाहर निकालो, दम घुट जायेगा।"

राकेश को ताजी हवा का मिराक है। खिडकी दरवाजे सब खुले रखना चाहता है। और माधवी है कि तमाम दरवाजे बद करके अंधेरे मे अपने भीतर झांकना चाहती है। राकेश को क्या कभी भीतर झांकने की जरूरत महसूस नही होती ? फुर्सत ही कहा है ? सुबह छह बजे फोन लेकर जो बैठता है तो नौ बजे चोगा छोडकर सीधा फरीदाबाद जाता है, दवाइयो के अपने छोटे-से कारखाने पर और सात बजे लौटने पर फिर वही फोन की टन-टन। हर पांच मिनट पर घंटी बजती है तो माधवी सोचती है, क्या अच्छा हो अगर फोन की घंटी सितार या सरोद के सुरो मे बज सके। और कुछ नही तो संगीत का रसास्वादन हो। राकेश को फोन से अलग नही किया जा सकता। वह तो ऐसे होगा जैसे चाद से दाग को हटा देना। जो हो नही सकता'''यह दाग रहेगा ही। दाग क्या काली-कलूटी मक्खी है, भीमकाय, जो हर कमरे मे भिन-भिन करती घूमती रहती है। राकेश ने इंतजाम करवा रखा है कि फोन उठाकर हर कमरे मे ले जाया जा सकता है। उससे छुटकारा पाना'''अच्छा, सहसा उसे खयाल आया, इस फोन की सूरत और सीरत, दोनों कौशल कुमार से नही मिलती ? रजाई के भीतर खलखलकर हँस पड़ी।

राकेश ने रजाई खींचकर उसके मुंह पर से हटा दी, पूछा, "हो क्या रहा है ?"

माधवी ने एक आंख खोलकर उसे देखा और दुबारा रजाई के भीतर दुबकने लगी ।

"किस दुनिया में हो ?" राकेश ने हाथ बढ़ाकर उसे रोक दिया ।

"आज कुछ लिखने को मन है," माधवी ने अंगड़ाई लेकर कहा ।

"बाप रे, तब मैं चला !" राकेश एकदम कमरे से बाहर हो गया ।

माधवी प्यार से हँस दी । कितना प्यारा पति पाया है उसने । भारतीय पुरुष और पत्नी के अकेलेपन की जरूरत को समझे ! ऐसा पति जिस स्त्री का हो उसे और क्या चाहिए ? मगर···चाहिए । चाहत की कोई हद नहीं है । आदर्श पति की आदर्श पत्नी बने रहने में दो-चार दिन से अधिक संतोष नहीं मिल सकता । दिमाग को खुराक चाहिए, शरीर को प्रसाधन । प्रसाधन ? शरीर के संदर्भ में प्रसाधन का खयाल क्यों आया, खुराक का क्यों नहीं । क्या है यह ? सौंदर्य की लालसा या उच्चवर्गीय आडंबर ? लोग कहते हैं···मारो गोली । दिमाग इस तरह भटका तो बन ली कहानी ! मतलब भटकना तो होगा मन को, पर बिल्कुल पटरी से उतरकर नहीं । एक दिशा में इतनी देर तो बढ़े कि कोई तस्वीर जेहन पर उभर आये । फिर तो शब्द कानों में बजने लगेंगे और उन्हें कागज पर उतारना शेष रहेगा ।

वह रजाई के और अंदर खिसक गई । हां, लौट चलो गर्भाशय में । सब तरफ अंधेरा कर लो । अंधकारपूर्ण गरमी में ही बीज अंकुरित होता है और बनता है शिशु या कहानी ! शिशु या कहानी ? किसे चुनोगी ? ऊंह, फिर उठ आया वही सवाल । कौनसी भूमिका अदा करोगी आज —मां की या लेखिका की ? संसार एक रंगमंच है, शेक्सपियर ने कहा था, जिस पर हम नाटक करते हैं, रोज नया नाटक, नयी भूमिका । कभी आदर्श पत्नी, कभी स्वतंत्र प्रेम में आस्था रखने वाली प्रेयसी । कभी सुघड़ गृहिणी, कभी मुखर बुद्धिजीवी । कभी वर्गीय अहंकार से भरी सोशलाइट, कभी वर्ग-विभेद से विमुख लेखिका । लिखे ऐसी स्त्री की कहानी ? जो जीवन जीती नहीं, बस एक के बाद एक भूमिका निभाती चलती है । दिलचस्प विषय है । तो लिख डाले ? और इसे भी उपन्यास की तरह गलत समझा गया तो···क्यों गलत समझा गया उपन्यास को ? कमी उसकी अभिव्यक्ति में है या पाठकों की मानसिकता में ? और लोग नहीं समझे तो कौशल कुमार कैसे समझ गया ? वह तो माधवी के वर्ग का सदस्य भी नहीं है । फिर···एक बार उससे बात हो जाती···शब्द प्रकाशन के दफ्तर जाये तो मिल सकता है···वह रजाई फेंककर उठ खड़ी हुई । तो चले···शब्द प्रकाशन के दफ्तर या अपनी मेज पर ? लेखक का स्वधर्म है लिखना, कोई समझे चाहे नहीं ।

जिसमे सवेदनशक्ति होगी समझ जायेगा, आज नही तो कल, औरो की परवाह वह क्यों करे। पर'''बात करने मे हर्ज नहीं है। बहुतसे मुद्दे अपने तहत साफ हो जाते हैं। अपनी आकृति देखने को भी तो दर्पण चाहिए'''

शशोपंज की हालत मे वह पलंग के पास खडी थी कि फोन की घंटी उसी कमरे में घनघना उठी। तो जाते-जाते राकेश इसे उसके कमरे में लगा गया! आज पहली वार उसके बजने पर राहत महसूस की। चोंगा उठाकर कहा, "हलो", तो उधर से आवाज आई, "कैसी हैं? मैं कौशल बोल रहा हूं।"

एक 'हलो' में आवाज पहचान ली। दो-चार बार तो कुल सुनी होगी!

"नमस्कार! कहिए?" उसके स्वर में उत्साह था।

"आपके दस रुपये लौटाने हैं। किस समय आऊ देने?"

"दे दीजिएगा। कोई जल्दी नही है।"

"लेने की जल्दी नही है, यह आपका बड़प्पन है पर मुझे तो देने की जल्दी है। किस समय आऊं? अपनी सुविधा देखकर बतलाइएगा। कल लगा, आपको कुछ असुविधा हो रही है।"

"बच्चे स्कूल से आते हैं तो तवज्जह मागते हैं, और कोई बात नहीं है," उसने मधुर स्वर मे कहा, "आप ग्यारह बजे आ सकते हैं?"

"बिल्कुल। बच्चे कितने बजे आते है?"

"डेढ़।"

"ठीक है। आप एक बजे मुझे उठा दीजिएगा। मुझसे सकोच करने की जरूरत नही है। साफ कह दीजिएगा, एक बज गया, अब आप जाइए। मैं चला जाऊगा।"

माधवी उन्मुक्त भाव से हँस दी। सारी दुविधा जैसे एक ही क्षण मे समाप्त हो गयी। जब एक बजेगा, बजेगा। तब तक सब-कुछ भूलकर साहित्यचर्चा करेगी। सब-कुछ भूलकर ही महान कृति की रचना की जा सकती है वरना खीर बनाने के चक्कर मे'''एक बार फिर वह हँस पडी। दिलोदिमाग पर अजीब मस्ती छायी हुई है आज। कहानी बढ़िया बनेगी।

ठीक ग्यारह बजे कौशल आ पहुचा।

"बिल्कुल ठीक समय पर आये आप," उसके मुह से निकला।

"हा, मुझे ठीक समय पर आने की आदत है," वह बोला।

माधवी हँस दी। "आने की है पर जाने की नही," उसने कहा।

कौशल नही हँसा। "जाते हुए डर लगता है," गहरी वेदना के साथ फुसफुसाकर उसने कहा, "जिस आदमी के सामने कोई मंजिल न हो, वह जाने से हमेशा कतराता है।"

माधवी सकुचित हो गयी। "मैंने तो मजाक मे कहा था" उसने कहा'

अब कौशल हँस दिया "और क्या, है ही मजाक की बात। आज देखिएगा, मैं बिल्कुल ठीक समय पर चला जाऊंगा। आप संकोच में क्यों पड़ गयीं ? लाइए चाय पिलाइए।"

आज माधवी खुद चाय बनाकर लायी। घूंट भरते हुए सोच रही थी कि उपन्यास का जिक्र कैसे करे कि कौशल बोला, "लगता है, आप इस बात से बहुत दुखी हैं कि लोगों ने आपके उपन्यास को ठीक से समझा नहीं।"

"आपको कैसे पता ?" माधवी ने आनंदित होकर कहा।

"कल ही समझ गया था। बहुत-कुछ कहना चाहता था पर समय नहीं था।"

"क्या कहना चाहते थे ?" उत्सुक होकर उसने पूछा।

"पहली बात तो यह कि लोगों की परवाह आपको नहीं करनी चाहिए। सब-के-सब बौने हैं, बौने। अपने से अच्छा किसीको लिखते देखते हैं तो ईर्ष्या से भर जाते हैं। आपके उपन्यास में खामियां निकालें तो आप समझिए, उपन्यास जरूर बढ़िया है।"

"यह कैसे हो सकता है," वह संकोच के साथ मुस्करायी।

"यही है !" कौशल ने गहरे विश्वास के साथ कहा, "मुझीको लीजिए। मेरी कहानियों का इन मठाधीशों ने कभी नाम नहीं लिया पर मैं जानता हूं, साहित्य को पहचानने वाले मर्मज्ञ जानते हैं, आप भी जानती हैं कि हिंदी साहित्य में आज इस स्वर की कहानी और नहीं है।"

"आप जितना आत्मविश्वास मुझमें होता तो···"

"होना चाहिए। मैं आपके उपन्यास को हिंदी साहित्य की उपलब्धि मानता हूं।"

"सच !" गद्गद होकर माधवी ने कहा।

"बिल्कुल सच। झूठ मैं बोलता जरूर हूं पर साहित्य को लेकर नहीं। साहित्य मेरे लिए ईश्वर से ऊपर है। वैसे मैं ईश्वर को नहीं मानता और··· इसी बात पर दूसरा प्याला चाय पिलाइए।"

माधवी दुबारा चाय बना लायी और फिर देर तक उपन्यास पर बात हुई। कौशल कुमार के अंतर्बोध की प्रखरता पर वह दंग रह गयी। कैसे उसने उन बारीकियों को जा पकड़ा जिनसे शायद वह स्वयं अनभिज्ञ थी। लेखक सब-कुछ सोच-विचारकर तो लिखता नहीं। कितना कुछ अनायास उसके चेतना-संसार से पात्रों के चरित्र में संगमित हो जाता है। जो वह जीवन से पाता-सीखता है, अपने सर्जित संसार के पात्रों को अर्पित कर देता है, उसका लेखा-जोखा नहीं रखता। अपने को रिक्त करके जो संसार वह रचता है, उसे केवल बुद्धि द्वारा नहीं परखा जा सकता और न सिर्फ भावना के बल पर। प्रखर चेतना, तीक्ष्ण बुद्धि और भावानुभूति होने पर ही एक का कहा-अनकहा दूसरे तक

इतनी समग्रता के साथ पहुंच सकता है। संवादहीनता के बारे में बहुत-कुछ सुना-पढ़ा है, महसूस भी किया है पर इतनी तीव्रता के साथ नहीं। संवाद होने पर ही पता चलता है, संवाद का न होना क्या है।

जो आदमी उसकी रचना को इतनी सूक्ष्मता से समझ गया है, क्या उसे नहीं समझ पायेगा? कितना कुछ है जो कभी किसीसे कहा नहीं, राकेश से भी नहीं। या कहा है, राकेश ने सुना नहीं। सुना है तो समझा नहीं, समझने की जरूरत महसूस नहीं की, कोशिश भी नहीं की। इससे पहले इस तरह एकाकीपन का अनुभव नहीं हुआ। यह कौनसी गांठ खोल दी इस अजनबी ने उसके भीतर कि अचानक अकेले सोचना भारी पड़ने लगा। दिमाग को भी बंधु चाहने लगा।

"क्या बजा है?" कौशल ने पूछा।

चौंककर उसने घड़ी देखी। "अरे, एक बज गया। पता ही नहीं चला।"

"देखा। आज आप भूली, मैं नहीं। तो जाऊं?"

"हां, एक बज गया। अब आप जाइए," माधवी ने कहा और हंस दी।

कौशल फौरन उठ खड़ा हुआ।

दरवाजे पर पहुंचकर वह पलटा और बोला, "वह दस रुपये आपको चाहिए?"

इस अटपटे सवाल पर सकपकाकर माधवी ने उसकी तरफ देखा और झिझकते हुए बोली, "ऐसी कोई जरूरत तो नहीं है..."

"कल आपसे झूठ बोला," कौशल ने कहा, "मुझे रुपये स्कूटर के लिए नहीं चाहिए थे। दरअसल घर पर राशन नहीं था। मुझे तो आपने खाना खिला दिया पर बच्चे दिन-भर भूखे रहे। उन्हीं दस रुपयों से शाम का खाना बना।"

माधवी स्तब्ध खड़ी थी। कहां वह खीर को लेकर इतनी परेशान थी, बच्चों के खाने का बेवक्त होना उसे साल रहा था और वहां इसके बच्चे...!

"आज पचास रुपये एक जगह से मिले हैं। चाहें तो लौटा सकता हूं। पर एक हफ्ता रुक सकें तो मुझे सुविधा होगी। अगले हफ्ते सौ रुपये मिलने वाले हैं, उनमें से चुका दूंगा।"

पचास रुपये क्या चीज हैं। पचास के तो वे दो प्याले हैं जिनमें अभी वे चाय पी कर चुके हैं। और अगर कौशल कुमार के घर आने के बजाय वह स्वयं शब्द प्रकाशन के दफ्तर गयी होती तो दस रुपये स्कूटर में ही लग जाते। समझ लो, कौशल कुमार नहीं आया, वही गयी थी।

"रहने दीजिए," उसने कहा, "लौटाने की जरूरत नहीं है।"

"क्यों?" कौशल कुमार ने तंज के साथ कहा, "मुझपर रहम खाकर दस रुपये माफ!"

"नहीं...मैं तो..."

"आपके लिए दस रुपये कुछ नहीं हैं पर मेरे लिए बहुत मानी रखते हैं।"

"लौटाना चाहें तो लौटा दीजिएगा।" उसने कोमल स्वर में कहा।

"अवश्य लौटाऊंगा। सौ रुपये मिलते ही आपका पैसा लौटा दूंगा। इस वक्त हाथ तंग है। ऐसा कीजिए, आप मुझे बीस रुपये और दे दीजिए। पैसा मिलते ही इकट्ठा तीस दे जाऊंगा।" कौशल ने एक सांस में इस अहंकार के साथ कहा कि संकुचित माधवी उसकी तरफ आंख उठाकर देखने का साहस न कर सकी, चुपचाप अंदर से बीस रुपये लाकर उसके हाथ पर रख दिये। आंखें उसकी झुकी रहीं। जब देने में इतनी शर्म आ रही है तो लेने में इसे कितनी आ रही होगी!

कौशल ने और बात नहीं की। रुपये लेकर खटाखट सीढ़ियां उतर गया।

माधवी वहीं सीढ़ियों पर रेलिंग के सहारे टिकी खड़ी रही।

बच्चे स्कूल से लौट आये। पहले आलोक ऊपर आया। उसे देखते ही कल वाले आक्रामक स्वर में बोला, "आज भी वह बैठे हैं?"

"नहीं," उसने ठंडे स्वर में कहा। अपनी जगह से हिली नहीं।

"यहां क्यों खड़ी हो?" आलोक ने अचरज के साथ पूछा।

"तुम अंदर जाओ," उसने उसी ठंडे स्वर में कहा।

तब तक समीर ऊपर पहुंच चुका था। उसे देखते ही बोला, "खीर बनी है?"

"नहीं," उसने डपटकर कहा, "रोज-रोज खीर खाने की जरूरत नहीं है। जाओ, दोनों ऊपर जाकर खाना खाओ। मुझे परेशान मत करना, मैं लिखूंगी।"

बच्चों ने एक-दूसरे की तरफ सवालिया नजरों से देखा, आपस में मूक समझौता किया और चुपचाप भीतर चले गये। उसकी एक खास दबंग आवाज को वे अच्छी तरह पहचानते हैं, उसके सामने बहस नहीं करते।

माधवी वहां से हटकर सीधी अपने कमरे में जाकर बिस्तर पर लेट गयी। कुछ देर शून्य में अपलक ताकती रही, फिर सहसा फफककर रो दी। लग रहा था सब-कुछ गलत है, एकदम गलत। और जिम्मेवार वह है।

चौड़ी सड़क पर आकर कौशल ठिठका पर आज कल की तरह जेब से निकालकर नोट नहीं परखे। वह हल्की ग्लानि महसूस कर रहा था; पैसा लेने के कारण नहीं, गलत कयास लगाने की वजह से। जैसे पानी से भरी सुराही उठाने के लिए आप अपनी पूरी ताकत का इस्तेमाल करें और सुराही एकदम खाली, फूल-सी हल्की निकले। उस घर की मालकिन तो बहुत आसानी से रुपया दे देती है। दस-बीस लेने में कोई रोमांच नहीं है। मजा तब आता है जब

रुपया निकलवाने के लिए कमकर मेहनत करनी पड़े; तरह-तरह के कलात्मक झूठ बोलने पड़ें। इसके साथ तो सच से काम चल गया! पचास रुपये उसे मिले नही, ठीक है, पर मिलने थे ता। पूरे दस फर्मे पढ़कर दिये थे राजेश्वर मिश्र को। उस बदमाश ने पेशगी दिये रुपयों का खाता खोल लिया और सारे-के सारे काट लिये। इस तरह हर आदमी पेशगी दिया रुपया काटता रहा तो उसकी जिंदगी कैसे चलेगी, कभी सोचा है किसीने? नही, कोई क्यो सोचेगा? उसका है कौन? बीवी? बच्चे? सब साले उसे पैसा कमाने की मशीन समझते हैं। एक ही सवाल है उनके पास—नौकरी क्यों छोडी? अरे सालो, हरामजादो, छोडी नही, छूट गयी। दूसरी क्यो नही ढूढी? नही ढूढी, बस। नहीं कर सकते हम बधी-बधाई नौकरी। जानते नही सालो, हमारे पास जीनियस दिमाग है। उच्चतम कोटि का साहित्यकार हू, समाज का दायित्व है कि मेरा पोषण करे। कौन है इस समाज के रक्षक-भक्षक-दाता? यही माधवी जी और उनके पति सरीखे बड़े लोग। लौटाने की जरूरत नही है, किस दम्भ के साथ कह रही थी। किस बात पर इतना दम्भ है, माधवी जी? जरूरत नही है, जानता हू। रुपया हाथ का मैल है। जी हा, यह मैल सिर्फ बड़े आदमियों की हथेलियों पर जमता है। हमें मिल जाये तो हम साबुन की तरह इसका इस्तेमाल करें।

कल रात बड़ी तबियत से कमीज धुलवाई थी अपनी कुरूप और सहनशील भारतीय अबला पत्नी से। पूछना चाहिए था माधवी जी से, कैसा लगता हूं साफ-सफेद कमीज मे? बौराई-सी मेरी तरफ देखती और कहती, डेढ बज गया, बच्चे तवज्जह मागते हैं! और हमारे बच्चे? सिर्फ खाना मागते है। साले, हर वक्त खाना मागते हैं। हरामजादे···उसके मुह से गालियो की बौछार हुई और तभी खयाल आया कि आज बिना खाना खिलाये उठा दिया है उस घर की मालकिन ने। आतें कुलबुला रही हैं भूख से। चाय पर चाय पिलाती गयी, साथ मे दो मुट्ठे नमकीन भी न रखा। पिच्च से सड़क पर थूककर, वह पास खड़े खोमचे वाले के पास जा पहुंचा और एक के बाद एक, दो प्लेट कुलचे-छोलों पर हाथ साफ कर गया।

बढ़िया बने थे छोले, डकार लेकर उसने सोचा पर पूरे पाच रुपये निकल गये हाथ से। पांच और पान-सिगरेट पर उठ जायेंगे। चलो, जाने दो। पत्नी बेचारी को एक दिन मे दस रुपये से ज्यादा खर्च करने की आदत भी नहीं है।

तीन

अगले दिन सुबह नौ बजे कौशल का फोन आया। उसके अगले दिन भी···

फिर रोज आने लगा। ठीक नौ बजे।

पहले दिन माधवी ने आत्मीयता से बात की, फिर औपचारिकता से, फिर उदासीनता से और अब खीज आने लगी है।

दो हफ्ते हो चले···

रोज नौ के घंटे के साथ फोन का टनटनाना बेहद अखरता है, कुछ ऐसे जैसे साफ कसे बिस्तर पर पड़ी सिलवट। माधवी सोने से पहले कई बार बिस्तर झाड़ती है। चादर पर सिलवट हो तो सिर्फ बदन में नहीं गड़ती, दिमाग में भी खलिश पैदा करती है। कभी-कभी आधी रात को आंख खुलने पर जब बदन में कुछ चुभने लगा है तो माधवी आलस करके पड़ी नहीं रहती, उठकर बिस्तर झाड़ लेती है। सिलवट निकल जाती है। पर इस सिलवट को निकालना उतना आसान नहीं है।

कितनी बार तो झाड़ चुकी···

रोज सुबह नौ बजे फोन बजता है।

"कहिए, किसलिए फोन किया है ?" वह सर्द आवाज में पूछती है।

"यूंही, गपशप करने," वह किलककर कहता है।

"रोज-रोज गपशप करने के लिए कुछ है नहीं···"

"किसने कहा ?" वह बात काट देता है, "आपसे कहने को मेरे पास इतना कुछ है कि सारी उम्र बोलूं तो भी खत्म न हो।"

"मुझे और भी काम हैं," उसकी आवाज पहले से भी ज्यादा सर्द हो जाती है।

"तो कीजिए न, काम करने की मनाही थोड़ा ही है," कौशल शायराना अंदाज में कहता है।

"अच्छा···नमस्कार···" वह कहती है।

"अरे रुकिए न, आपसे एक जरूरी बात पूछनी है," कहकर कौशल उसे रोक लेता है।

और वह जरूरी बात कुछ इस तरह की होती है। कौशल पूछता है, जीवन में आप किसका निर्देश मानकर चलती हैं, नीति का या विवेक का ? या अनैतिक

और निर्वैतिक में आपके विचार से क्या अंतर है ? या फिर आपके मत में प्रेम का अधिक महत्त्व है या करुणा का ?

"लंबी बातचीत का विषय है, फुर्सत से कभी बात करेंगे," वह टालना चाहती है।

"कब ?" वह तुरत पूछता है, "मैं आ जाऊं ग्यारह बजे ?"

"नहीं, मुझे बाहर जाना है।"

"तो कल आ जाऊं ?"

"कल का प्रोग्राम अभी तय नहीं है।"

"मैं फोन पर पता कर लूंगा," वह कहता है और अगले दिन नौ बजे फिर'''

फोन काटकर भी चैन नहीं आता। कौशल का उठाया हुआ कोई-न-कोई सवाल, *नैतिक, दार्शनिक या सामाजिक, उसके दिमाग पर हथौड़े बजाता रहता* है। कौशल को वह भले टाल दे, उसके सवालों को नहीं टाल पाती। बुद्धि लालच नहीं छोड़ पाती, क्या करे, खुराक जो चाहिए। पर इतनी नहीं कि बदहज़मी हो जाये। यह ठीक है कि कहानी तभी बनती है जब दिलोदिमाग झनझनाये रहें, नसों का तनाव, भावनाओं का उद्वेग, सब जरूरी हैं पर ''

फोन की घंटी अतिरिक्त जोर से बजी। जरूर नौ बजे होंगे। बजने दो। वह नहीं उठी। घंटी बजती रही। कट-कटकर बार-बार। क्या बचपना है, उसने सोचा। कौशल होगा तो साफ कह देगी आज, मुझसे रोज-रोज संपर्क करने की जरूरत नहीं है। हफ्ते-दस दिन में बात हो जाये तो ठीक है पर रोज नहीं।

"हलो," उसने बर्फीली आवाज में बात शुरू की।

"बधाई !" उधर गर्मजोशी की पिघलन थी।

"किस बात की ?" आवाज उसकी भी पिघल गयी।

"आपके उपन्यास को लखनऊ हिंदी संस्थान की तरफ से पुरस्कार मिला है, दो हजार का।"

"क्या !"

"राजेश्वर जी ने नहीं बतलाया ?"

"नहीं तो। आपको कैसे पता चला ?"

"अखबार से। आपने नहीं देखा ?"

"अभी नहीं।"

"तो जाइए, देखिए।"

"शुक्रिया," कहकर उसने फोन काट दिया। जल्दी से जाकर अखबार खोला। *चौथे पन्ने पर निहायत बेकार की खबरों के बीच बीसेक लेखकों के नाम छपे थे*

जिन्हें उस वर्ष उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान की तरफ से पुरस्कार मिले थे। उन्हीं के बीच उसका और उसके उपन्यास का नाम भी था। देखकर शरीर में बिजली का करंट-सा दौड़ गया। काश, राकेश घर पर होता! किसीके साथ खुशी बांटनी जरूरी लग रही थी।

तभी फोन बजा। क्या पता राकेश हो। झपटकर उठाया तो कौशल था।

"फोन काट क्यों दिया ?" उसने कहा।

"बात पूरी हो गयी थी, इसलिए।"

"वह तो मामूली बात थी। पुरस्कार आपको मिलते ही रहेंगे। असली बात यह है कि मैं आपके उपन्यास पर लेख लिख रहा हूं। पश्यन्ती पत्रिका ने मांगा है। उसके लिए उपन्यास की प्रति चाहिए।"

"आपके पास है नहीं ?"

"आपने दी कब ?"

"राजेश्वर जी ने नहीं दी ?"

"वे क्यों देंगे ! जलन के मारे तो मरे जाते हैं।"

"मुझसे क्यों जलेंगे ?" वह हँस पड़ी, "उन्होंने तो छापी है किताब।"

"छापना एक बात है, चर्चित कराना दूसरी। छापी है, क्योंकि जानते हैं बाजार में बिकेगी।"

"हो सकता है।"

"हो सकता है नहीं, है।"

"चलिए, है।" उसने सख्त स्वर में कहा। बेकार की बहस से मन खराब होने लगा था।

"खैर छोड़िए, मैं ग्यारह बजे आकर किताब ले लूं ?"

"आज ही चाहिए ?" उसने टालने की नीयत से कहा।

"बिल्कुल। अब एक मिनट भी बरबाद नहीं करना चाहता। लिखने का मूड तो कल ही बन गया था, किताब नहीं थी, इसीलिए नहीं लिख पाया। आप नहीं जानतीं, इतना समय भी कितनी मुश्किल से काटा है। मुझे मालूम है, ग्यारह बजे से पहले आपको फुर्सत नहीं होती सो अब तक रुका रहा वरना सुबह आठ बजे ही पहुंच जाता किताब लेने।"

"बहुत मेहरबानी की आपने कि बेवक्त नहीं आये," उसने तल्खी से कहा पर कौशल बेअसर रहा। बोला, "हां, आठ बजे तो आपके पति घर पर रहते होंगे।"

"तो ?"

"यही कि उस वक्त आप उन्हें खिलाने-पिलाने में व्यस्त रहती होंगी। गृहिणी हैं आखिर। क्या हुआ, आप नाराज क्यों हो गयीं ?"

माधवी लज्जित हो गयी। "नहीं तो," उसने कहा।

"तो ले लूं किताब ग्यारह बजे ?"

"हां," उसने कह दिया।

"और हां, खाली किताब लेकर लौटने वाला नहीं हूं। पुरस्कार मिला है आपको। मिठाई खाये बगैर नहीं आऊंगा। मंगाकर रखिएगा।"

उसके फौरन बाद राजेश्वर मिश्र का फोन आया।

"देखिए, दिलवा दिया न आपको पुरस्कार," छूटते ही वह चहका।

"आपने दिलवाया ?"

"बिल्कुल। निर्णायकों में हम भी थे बल्कि कहना चाहिए हम ही थे।"

"शुक्रिया।"

"बस ! इतना मरा-मरा-सा शुक्रिया ? खुशी नहीं हुई आपको ?"

"हुई तो थी पर···"

"पर ?"

"लग रहा है, ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात शायद है नहीं।"

"बिल्कुल नहीं है," वह उसी उत्साह के साथ बोला, "आप यह समझकर मत बैठ जाइएगा कि कृति की श्रेष्ठता देखकर पुरस्कार दिया जाता है। अरे भई, उन्हें तो सरकारी खजाने से पैसा बांटना है, सो बीस-पच्चीस लेखकों में बांट देते हैं।"

"फिर मुझे क्यों दिलवाया ?" उसने क्षुब्ध होकर कहा।

"अरे वाह, माया जो मिलेगी। पूरे दो हजार। दस प्रतिशत हमारा, क्यों ठीक है ?"

कोशिश करके वह हँसी, एक निहायत खोखली हँसी।

"आप भी क्या मुंह लटकाकर बैठ गयीं ! आइए, इधर निकल आइए, कुछ खुशी मनाई जाये। ग्यारह बजे तक पहुंच जाइए।"

"ग्यारह नहीं, बारह आऊंगी," उसने कह दिया। सोचा, घर पर बैठे रहने से अच्छा है, कुछ तो खुशी का माहौल बनेगा। कौशल कुमार आयेगा तो उसे भी वहीं ले जायेगी।

ग्यारह बजने के साथ-साथ दरवाजे की घंटी बजी। "एक बार फिर बधाई," हाथ का डिब्बा आगे बढाते हुए कौशल कुमार ने कहा।

"यह क्या है ?"

"मिठाई। साथ लेता आया हूं। सोचा, बडे आदमियों का क्या भरोसा, कह दें, मिठाई तो हम खिलाते नहीं, जिगर खराब हो जाता है। अब ले आया

हूं तो···"

"इतनी ढेर मिठाई क्यों ले आये ?" उसने सकुचाकर कहा।

"ढेर कहां है ? बच्चे नहीं खायेंगे ? मैं बच्चा था तो इतनी अकेले चट कर जाता था।"

"पर इतनी मिठाई···"

"बहुत दाम लगे होंगे। और मैं ठहरा गरीब आदमी। बात आपकी सही है पर परेशान होने की जरूरत नहीं है। आपके तीस रुपये हैं न मेरी तरफ, समझ लीजिए उन्हीं से लाया हूं। अब खिला तो दीजिए।"

माधवी संकोच से उभर नहीं पायी पर उसे साथ बैठक में ले आयी, चाय भी आ गयी। कौशल ने तबीयत से मिठाई खायी, चाय पीने लगा तो माधवी व्यस्त हो, उठ खड़ी हुई। "ठहरिए," उसने कहा, "नमकीन ले आऊं, मीठे के ऊपर चाय पीयेंगे तो···"

"नहीं, बिल्कुल नहीं," कौशल ने टोक दिया, "चाय फीकी नहीं लगेगी तो पता कैसे चलेगा मिठाई खायी है। दुख नहीं होगा तो सुख की प्रतीति कैसे होगी ?" कहकर वह हँस दिया, "देखा, यही तो विशिष्टता है हम भारत-वासियों की। मिठाई में भी साला दर्शन निकाल लिया।"

माधवी खिलखिलाकर हँस पड़ी। कुछ बुरा तो नहीं इसके साथ बैठना।

"अब बतला तो दीजिए अपने प्रकाशक महोदय को, आपके उपन्यास को पुरस्कार मिला है," दूसरा प्याला चाय पीते-पीते कौशल बोला।

"फोन आ गया था उनका, आपके बाद।"

"क्या कह रहे थे ?"

एक बार फिर माधवी खिलखिलाकर हँस पड़ी। राजेश्वर मिश्र की नकल करती हुई बोली, "दिलवा दिया न आपको पुरस्कार !"

कौशल नहीं हँसा। बेहद उत्तेजित होकर बोला, "उन्होंने दिलवाया ? वह कौन होते हैं दिलवाने वाले ! मरे हुए लेखक ! प्रकाशक बन गये तो क्या समझते हैं खुदा हो गये। आपकी जगह मैं होता तो कहता, पहले जोड़ का उपन्यास लिखकर दिखलाओ तब बात करना। किताब बढ़िया होगी तब न पुरस्कार मिलेगा, किसी साले के करम करने से···" कौशल कहता जा रहा था और माधवी को डर लग रहा था कि उसकी आंखों से निकल रही आक्रोश और नफरत की चिनगारियों से उसके चश्मे के मोटे शीशे चटख न जायें। साथ ही मन पुलक से भर उठा था; वाकई मेरे उपन्यास के बारे में इसकी इतनी ऊंची राय है। खुद इतना अच्छा लिखता है पर दूसरे के लेखन की इज्जत करना खूब जानता है। पुलक के साथ सम्मान और सहानुभूति की भावना भी उभर आयी।

"जरूरी तो नहीं, हर बढ़िया किताब को पुरस्कार मिले," मधुर स्वर में उसने कहा, "उस हिसाब से तो आपकी किताब को मिलना चाहिए था।"

कमरे में सन्नाटा छा गया। माधवी को लगा, कौशल की सांस रुक गयी है। एकदम निश्चल हो गया है, जैसे इन्सान नहीं, मोम का गढ़ा पुतला हो, पलक तक नहीं झपक रही। खुद उसके लिए सांस लेना दूभर हो गया, अज्ञात आशंका से दिल कांप उठा।

कौशल कुमार के बदन में हरकत हुई। झटके के साथ उसने अपना चश्मा उतारा और आंखें उसके चेहरे पर टिका दीं। माधवी सिर से पांव तक सिहर उठी। लगा, वह किसी संगीन जुर्म के लिए गिरफ्तार होकर अदालत के कठघरे में खड़ी है।

"मेरी जब कोई किताब नहीं है तो इस झूठी तसल्ली का फायदा ?" हर शब्द को चाकू की तरह इस्तेमाल करते हुए उसने कहा।

"किताब नहीं है ?" मंत्रविद्ध माधवी दुहरा गयी।

"जी नहीं। मेरी आज तक कोई किताब नहीं छपी।"

"क्यों ?"

"क्योंकि किताबें हमारे यहां लेखन के गुण देखकर नहीं, लेखक का रुतबा देखकर छपती हैं।" कौशल ने इस अंदाज में कहा कि माधवी को लगा उसने उसके कीमती कालीन पर उल्टी कर दी है।

उसके मुंह से आवाज नहीं निकली, वैसे याद आ रहा था कि पत्रिकाओं में छपी कहानियों की कतरनों के साथ कौशल ने उसे कितने ही आलोचकों-लेखकों के पत्र भी पढ़ने को दिये थे जिनमें उसकी भरपूर तारीफ लिखी थी, फिर क्यों नहीं छपी किताब ? पूछना चाहती थी पर हिम्मत नहीं हुई।

"दीपशंकर जी का पत्र पढ़ा था न ?" कौशल ने खुद ही पूछा।

"हां," माधवी ने कहा।

"महान् आलोचक हैं। निजी पत्र में कहानियों को आसमान पर चढ़ा देंगे पर प्रकाशक राय मांगेगा तो किताब छपने नहीं देंगे। जानती हैं क्यों ? लेखक को मारने की आला साजिश है। मुंह पर तारीफ कर दो, बेचारा शिकायत भी नहीं कर सकेगा पर सार्वजनिक रूप में चर्चा मत होने दो, संभव हो तो छपने ही न दो। बेचारा इंतजार करता-करता मर जायेगा। पर मैं इतनी आसानी से मरने वाला जीव नहीं हूं। सब सालों को मारकर मरूंगा। मैं खुद छापूंगा अपनी किताब, खुद बेचूंगा और देखूंगा कैसे नजर-अंदाज करते हैं मेरी किताब को। सिर्फ दो हजार रुपयों की बात है। कहीं-न-कहीं से उधार मिल ही जायेगा। छह महीने की तो कुल बात है। मय सूद पैसा लौटा दूंगा।"

"कैसे ?" अब माधवी के मुंह से बोल फूटा।

"भारत पुस्तक भंडार से मेरी बात हो चुकी है, किताब छपते ही पचास प्रतिशत कमीशन पर वे मुझसे खरीद लेंगे। पंद्रह रुपये भी दाम रखें तो एक हजार प्रतियों पर सीधे साढ़े सात हजार हाथ में आयेंगे। दो हजार खर्च, बाकी मुनाफा।"

"एक किताब पर इतना मुनाफा होता है ?"

"और क्या। सब साले बिचौलिये हजम कर जाते हैं, लेखक के हाथ क्या लगता है!"

"पर प्रकाशक तो यही कहते हैं कि किताब को बेच पाना इतना आसान नहीं है।" माधवी ने डरते-डरते आपत्ति प्रकट की।

"कौन कहते हैं ?" कौशल ने उत्तेजित होकर कहा, "राजेश्वर मिश्र ?"

"वे भी।"

"आदमी मेहनत करने से कतरायेगा तो कुछ भी आसान नहीं है। हुक्म चलाने के अलावा वे क्या कर सकते हैं! सारी-सारी रात बैठकर किताबें तो हम छपवाते रहे हैं उनकी।"

"ओह," माधवी की जैसे आंखें खुलीं, "आप उनके यहां काम करते हैं ?"

"मैं उनके यहां काम क्यों करूंगा," कौशल ने ऐसे भड़ककर कहा जैसे उस-पर चोरी का इल्जाम लगा दिया गया हो। "जब-तब आकर गिड़गिड़ाने लगते हैं, किताब फलां दिन सबमिट करनी है, तो देख लेता हूं।"

इस 'देख लेता हूं' का ठीक. क्या मतलब है, माधवी समझ नहीं पायी। महज दोस्ती निभायी जाती है 'देखकर,' या कमाई का साधन भी है, पूछने का सवाल नहीं था। उसे छोड़, असली मर्म को पकड़ा, "ऐसा है तो राजेश्वर मिश्र आपकी किताब क्यों नहीं छापते ?"

"क्यों छापेंगे ? मेरी किताब में वह सब मसाला कहां है जो बाजार में बिके।"

"फिर भी, जब आप उनके इतने काम आते हैं तो उन्हें भी…"

कौशल तमककर उठ खड़ा हुआ। "एहसान करके मेरी किताब छापेंगे और मैं छपवा लूंगा! समझ क्या रखा है आपने मुझे!" उसने इतनी तीखी भर्त्सना के साथ कहा कि माधवी शर्म से सिकुड़ गयी। और तभी जैसे चुम्बक से खिचकर उसे अपनी दृष्टि उठानी पड़ी, कौशल की आंखें उसके चेहरे पर गड़ी थीं और विलक्षण कौंध से लपलपा रही थीं।

वह थोड़ा-सा आगे को झुका और बोला, "आप मुझे दो हजार रुपया दे दीजिए।"

चौंककर माधवी ने पीछे हटना चाहा पर कौशल की दृष्टि ने आंखों को झुकने नहीं दिया।

"समझ लीजिए," वह कहता गया, "आपको पुरस्कार आज नहीं, छह महीने बाद मिला। अब नवम्बर है, मई तक किताब तैयार हो जायेगी और पैसा वापस मिल जायेगा। और हां, मुनाफे में आधा आपका होगा, ढाई हजार रुपया।"

"मुझे मुनाफा नहीं चाहिए," पता नहीं क्यों उसके मुंह से निकला।

"कैसे नहीं चाहिए? जायज कमाई है। पैसा आप लगायेंगी, मेहनत मैं करूंगा, दोनों का आधा-आधा हिस्सा होना चाहिए। नहीं, नहीं, आप मना नहीं करेंगी, मैं तय कर चुका, मुनाफे में हिस्सा आपको लेना ही होगा।" उसने ऐसे कहा जैसे उसपर बहुत बडा एहसान कर रहा हो।

माधवी हतप्रभ बैठी रही।

"मैं समझता हूं," वह बोला, "हम लोगों को महाजनी प्रकाशकों से कम दाम पर किताब बेचनी चाहिए। दो सौ चालीस पन्नों की किताब होगी, आपका क्या खयाल है, पंद्रह रुपये दाम ठीक रहेंगे?"

"पहले किताब छपे तो ···" माधवी को लगा अब बाधा देनी ही पड़ेगी पर कौशल ने बात काट दी, "निश्चित छपेगी! आठ मई को मेरा जन्मदिन है, उसी दिन विमोचन करायेंगे, किसी मंत्री-शत्री से नहीं, आप करेंगी मेरी किताब का विमोचन। क्यों ठीक है न। मैं फख्र के साथ ऐलान करूंगा, मेरी किताब छपवाने का पूरा श्रेय माधवी चौधरी को है। मुझे कोई शर्म नहीं है आपसे पैसा लेने में, आप मेरे लिए···"

अरे, यह कहां पहुंच गया! मैंने तो पैसा देने के लिए हामी नहीं भरी।

"अभी पुरस्कार का पैसा मिला कहां है?" उसने जल्दी से कहा।

"ऐलान हो गया है तो मिल भी जायेगा, अब नहीं तो महीना-भर बाद," वह बोला, "हां, मुझे आप पैसा अभी दे दीजिए, मैं अपने काम पर लगूं। मई तक किताब बाजार में आ जानी चाहिए, वही वक्त है आर्डर मिलने का। अच्छा, यह बतलाइए, 'अंधकूप का चिराग' नाम कैसा रहेगा? कल्पना कीजिए, एक गहरा अंधेरा कुआं है। आप किनारे खड़ी हैं। भीतर झांकने के खयाल से ही रूह फना होती है। पर कोई है जो पीठ पीछे खड़ा बार-बार कह रहा है, खड़ी क्यों हो, नीचे झुककर देखो, एकदम नीचे, कुएं के तल में। डर-झिझककर आप नीचे झुकती हैं और चकाचौंध रह जाती हैं। वहां एकदम नीचे, कुएं के तल में एक नन्हा चिराग टिमटिमा रहा है। इतना नन्हा कि अंधेरे को दूर नहीं कर सकता पर अंधेरा भी उसे निगल नहीं पा रहा। घुप अंधेरे में अकेले टिमटिमाते दीपक में ऐसी ताकत है कि आपको अंधेरा दीखना बंद हो जाता है। अब जिधर देखो, चिराग है, लौ है, रोशनी है, जरा सोचिए, अचानक एक दिन ऐसे चिराग दीख जाये तो कैसा लगेगा···सोचा?"

एक चिराग माधवी के भीतर जल उठा। पैरों के तलवों से शुरू होकर

ऊष्मा पूरे शरीर में व्याप गयी, स्नेहसिक्त सपने ने अंक में भर लिया हो जैसे।

हां, वह पैसे देगी। किताव छपेगी। अंधकूप का चिराग है वह। दो हजार रुपये क्या हैं उस रोशनी के सामने, जो किताव हर पढ़ने वाले को नजर करेगी।

माधवी को लगा, उसका कद लंबा होता जा रहा है। गरदन और कमर खिंचकर सीधी अकड़ गयी हैं। मस्तक कुछ ऐसी गरिमा से टिका है कि···याद करेंगे लोग, माधवी चौधरी ने पहला पुरस्कार मिलते ही सारा रुपया एक अन्य लेखक की रचना प्रकाशित करवाने के लिए खर्च कर दिया!

"हम सव चिराग हैं," उसने भावुक होकर कहा, "आप, मैं, हमारे जैसे सव लेखक। चिराग क्या चाहता है? यह कि वस जलता रहे। मेरे माध्यम से आपकी किताव छपे, एक दीप से दूसरा दीप प्रज्वलित हो, इससे बढ़कर खुशी मेरे लिए क्या हो सकती है। मैं पैसा दूंगी।"

कौशल ने मात्र सिर हिलाया जैसे पहले से जानता हो। फिर पूछा, "राकेश जी को आपत्ति तो नहीं होगी?"

"नहीं, मेरे पति आम हिन्दुस्तानी पति की तरह नहीं हैं। वे मेरी वात में दखल नहीं देते। और यह तो मेरा अपना रुपया है, वैंक में रखा है," वह एक दंभी हँसी हँस दी, "किसी आपातकालीन स्थिति के लिए।"

"कितना पैसा है?" कौशल ने पूछा।

"यही कोई साढ़े चार हजार रुपया।"

"तो लाइए, चैक दे दीजिए। मैं जाकर निकाल लाऊं," कौशल ने कहा।

"अभी?" माधवी जैसी धरती पर आ गिरी।

"और क्या! अभी दो नहीं वजे, वैंक खुला होगा। पैसा लेकर सीधा जाऊंगा प्रेस, फिर भारत पुस्तक भण्डार। अव एक मिनट भी वरवाद नहीं करना चाहता।"

अव? और अदा करो आदर्श दंपति की भूमिका! पति मेरी वात में दखल नहीं देते! तो निकालो रुपया!

"आह, आप एक दिन जरूर महान साहित्यकार वनेंगी। आपके पास सच्चे कलाकार का मन है," उसने सुना, कौशल कह रहा है।

उसकी दृष्टि उसपर जा टिकी।

"रौ में वहकर काम कर सके, वही कलाकार है, सर्जक है; सोच-विचार कर पैर वढ़ाने वाला तो व्यवसायी होता है।"

वह जाऊं मैं भी। उठाऊं कलम और लिख दूं चैक? माधवी का वदन रोमांच से सिहर गया। इसी रोमांच के लिए लोग पहाड़ों पर चढ़ते हैं, ग्लाइडर में उड़ते हैं···मैं भी उड़ रही हूं, भावना के पंखों पर, निर्वाध। तो उड़ूं, और ऊंचे उड़ूं···

उसने चैक-बुक निकाली और दो हजार का बेयरर चैक काट दिया। कौशल कुमार चला गया पर वह धरती पर नहीं उतरी, एक इंच ऊपर उठी रही।

तभी फोन बजा। राजेश्वर था। "क्या हुआ," उसने कहा, "आयी नहीं? हम तो इंतजार में आधे रह गये।"

"कोई आ गया था···"

"कौन ?"

"कोई था।"

"कौशल कुमार तो नहीं था ?" उसने ऐसे चटखारा लेकर पूछा कि वह तड़पकर कह उठी, "हां !"

"कितना मांगा ?"

"क्या ?"

"रुपया, और क्या ?"

यह कैसे जानता है ? सहसा वह लज्जित हो उठी और नासमझ बनती हुई बोली, "क्या मतलब ?"

'देखिए, रुपया मांगने के मामले में कौशल कुमार को खासी महारत हासिल है, बचकर रहिएगा। साले को पता चल ही गया होगा कि पुरस्कार मिला है। अब साहब, जहां शहद होगा वहां चीटियां जुटेंगी ही, और जब बर्तन इतना नफीस हो ?"

"क्या मतलब ?"

"लीजिए, अब मतलब भी हम समझायें !" वह ठठाकर हँसा। फिर गंभीर होकर बोला, "सिर्फ पैसे के मामले में नहीं, हर तरह उससे बचकर रहिएगा, खतरनाक आदमी है।"

"क्यों ख्वामख्वाह एक आदमी पर लांछन लगा रहे हैं ?"

राजेश्वर की सजीदगी गायब हो गयी। "लांछन ?" उसने अपनी खास चहक के साथ कहा, "बोलने लगी न उसकी भाषा ! जब आदमी को सच लांछन लगने लगे तो समझ लो वह कौशल कुमार हो गया।" अपनी बात पर खुद एक जबरदस्त ठहाका लगाकर राजेश्वर ने फोन काट दिया।

माधवी को दुविधा ने आ घेरा। यह कौशल कुमार की महारत तो नहीं कि उसने रुपया केवल दिया नहीं, ऐसे दिया जैसे दे नहीं ले रही हो। नहीं, रुपया उसने अपनी मर्जी से दिया है, उसकी भावुकता, कलात्मकता और उदारता पर किसी किस्म का शक नहीं किया जा सकता। न्यूटन ने अन्य वैज्ञानिकों की पुस्तकें छपवाने में अपना सर्वस्व दान कर दिया था, यहां तक कि जब उसकी अपनी पुस्तक छपने की बारी आयी तो दूसरों से पैसा मांगना पड़ा। ठीक न्यूटन की तरह माधवी चौधरी ने भी अपनी खुशी से एक लेखक की पुस्तक

ऊष्मा पूरे शरीर में व्याप गयी, स्नेहसिक्त सपने ने अंक में भर लिया हो जैसे।

हां, वह पैसे देगी। किताब छपेगी। अंधकूप का चिराग है वह। दो हजार रुपये क्या हैं उस रोशनी के सामने, जो किताब हर पढ़ने वाले को नजर करेगी।

माधवी को लगा, उसका कद लंबा होता जा रहा है। गरदन और कमर खिंचकर सीधी अकड़ गयी हैं। मस्तक कुछ ऐसी गरिमा से टिका है कि···याद करेंगे लोग, माधवी चौधरी ने पहला पुरस्कार मिलते ही सारा रुपया एक अन्य लेखक की रचना प्रकाशित करवाने के लिए खर्च कर दिया!

"हम सब चिराग हैं," उसने भावुक होकर कहा, "आप, मैं, हमारे जैसे सब लेखक। चिराग क्या चाहता है? यह कि बस जलता रहे। मेरे माध्यम से आपकी किताब छपे, एक दीप से दूसरा दीप प्रज्वलित हो, इससे बढ़कर खुशी मेरे लिए क्या हो सकती है। मैं पैसा दूंगी।"

कौशल ने मात्र सिर हिलाया जैसे पहले से जानता हो। फिर पूछा, "राकेश जी को आपत्ति तो नहीं होगी?"

"नहीं, मेरे पति आम हिन्दुस्तानी पति की तरह नहीं हैं। वे मेरी बात में दखल नहीं देते। और यह तो मेरा अपना रुपया है, बैंक में रखा है," वह एक दंभी हँसी हँस दी, "किसी आपातकालीन स्थिति के लिए।"

"कितना पैसा है?" कौशल ने पूछा।

"यही कोई साढ़े चार हजार रुपया।"

"तो लाइए, चैक दे दीजिए। मैं जाकर निकाल लाऊं," कौशल ने कहा।

"अभी?" माधवी जैसी धरती पर आ गिरी।

"और क्या! अभी दो नहीं बजे, बैंक खुला होगा। पैसा लेकर सीधा जाऊंगा प्रेस, फिर भारत पुस्तक भण्डार। अब एक मिनट भी बरबाद नहीं करना चाहता।"

अब? और अदा करो आदर्श दंपति की भूमिका! पति मेरी बात में दखल नहीं देते! तो निकालो रुपया!

"आह, आप एक दिन जरूर महान साहित्यकार बनेंगी। आपके पास सच्चे कलाकार का मन है," उसने सुना, कौशल कह रहा है।

उसकी दृष्टि उसपर जा टिकी।

"रौ में बहकर काम कर सके, वही कलाकार है, सर्जक है; सोच-विचार कर पैर बढ़ाने वाला तो व्यवसायी होता है।"

बह जाऊं मैं भी। उठाऊं कलम और लिख दूं चैक? माधवी का वदन रोमांच से सिहर गया। इसी रोमांच के लिए लोग पहाड़ों पर चढ़ते हैं, ग्लाइडर में उड़ते हैं···मैं भी उड़ रही हूं, भावना के पंखों पर, निर्बाध। तो उड़ूं, और ऊंचे उड़ूं···

उसने चैक-बुक निकाली और दो हज़ार का बेयरर चैक काट दिया। कौशल कुमार चला गया पर वह धरती पर नहीं उतरी, एक इंच ऊपर उठी रही।

तभी फोन बजा। राजेश्वर था। "क्या हुआ," उसने कहा, "आयीं नहीं? हम तो इंतजार में आधे रह गये।"

"कोई आ गया था···"

"कौन ?"

"कोई था।"

"कौशल कुमार तो नहीं था ?" उसने ऐसे चटखारा लेकर पूछा कि वह तड़फकर कह उठी, "हां !"

"कितना मांगा ?"

"क्या ?"

"रुपया, और क्या ?"

यह कैसे जानता है ? सहमा वह लज्जित हो उठी और नासमझ बनती हुई बोली, "क्या मतलब ?"

'देखिए, रुपया मांगने के मामले में कौशल कुमार को खासी महारत हासिल है, बचकर रहिएगा। साले को पता चल ही गया होगा कि पुरस्कार मिला है। अब साहब, जहां शहद होगा वहां चींटियां जुटेंगी ही, और जब बर्तन इतना नफीस हो ?"

"क्या मतलब ?"

"लीजिए, अब मतलब भी हम समझायें !" वह ठठाकर हँसा। फिर गंभीर होकर बोला, "सिर्फ पैसे के मामले में नहीं, हर तरह उससे बचकर रहिएगा, खतरनाक आदमी है।"

"क्यों ख्वामख्वाह एक आदमी पर लांछन लगा रहे हैं ?"

राजेश्वर की संजीदगी गायब हो गयी। "लांछन ?" उसने अपनी खास चहक के साथ कहा, "बोलने लगी न उसकी भाषा ! जब आदमी को सच लांछन लगने लगे तो समझ लो वह कौशल कुमार हो गया।" अपनी बात पर खुद एक जबरदस्त ठहाका लगाकर राजेश्वर ने फोन काट दिया।

माधवी को दुविधा ने आ घेरा। यह कौशल कुमार की महारत तो नहीं कि उसने रुपया केवल दिया नहीं, ऐसे दिया जैसे दे नहीं ले रही हो। नहीं, रुपया उसने अपनी मर्जी से दिया है, उसकी भावुकता, कलात्मकता और उदारता पर किसी किस्म का शक नहीं किया जा सकता। न्यूटन ने अन्य वैज्ञानिकों की पुस्तकें छपवाने में अपना सर्वस्व दान कर दिया था, यहां तक कि जब उसकी अपनी पुस्तक छपने की बारी आयी तो दूसरों से पैसा मांगना पड़ा। ठीक न्यूटन की तरह माधवी चौधरी ने भी अपनी खुशी से एक लेखक की पुस्तक

छपवाने के लिए पैसा दिया है और देने के बाद उसके मन में तनिक भी पछ-तावा नहीं है। उसने दृढ़ता से खुद से कहा और होंठों को खींचकर पहले वाली मुस्कराहट में फैला लिया।

स्थिर गति से कौशल उस घर की सीढ़ियां उतरा पर एक बार सड़क पर पहुंच गया तो कदम तेज हो गये, यहां तक कि चौड़ी सड़क के आने तक वह दौड़ने लगा। एक खौफ कलेजे को जकड़कर बैठ गया था कि अभी पीछे से कोई भयानक जीव झपट्टा मारेगा और जेब से चैक छीन लेगा।

बस-स्टैंड पर पहुंचकर रुकना पड़ा। उसने एक चौकन्नी नजर अपने चारों तरफ डाली और जेब को थपथपाकर देखा। हां, है। बाहर निकालकर देखने की हिम्मत नहीं हुई। दस-बीस रुपयों की बात और है पर एक मुश्त दो हजार रुपये। चैक को निकालकर उंगलियों की पोरों से महसूस भी करे तो वह रोमांच कहां जो नोटों को छूकर देखने में होता है। बैंक जायेगा चैक भुनाने, तो कहेगा एक-दम नये करारे नोट दो; फिर एक-एक नोट को हर उंगली की पोर से छुएगा जैसे प्रेमिका के बाल सहला रहा हो। सोचकर वह हँसा नहीं। इतनी घिसी-पिटी रोमानी बात। फिर भी वह नहीं हँसा।

एक बार फिर उसने जेब थपथपाई। कैसे हो गया सब-कुछ···विश्वास बार-बार टूट जाता है। यह सच है कि कहानियां उसके पास हैं और यह भी सच है कि कोई प्रकाशक उन्हें पुस्तक रूप में छापने को तैयार नहीं है। सच यह भी है कि उसकी लिखी प्रत्येक कहानी साहित्यिक उपलब्धि है। उसकी प्रतिभा मामूली नहीं है। और कोई माने न माने, कौशल जानता है वह एक जीनियस है। यह बात सोचते हुए वह कभी नहीं मुस्कराता, अब भी नहीं मुस्कराया। यही तो एक विश्वास है उसके पास जो कभी नहीं टूटता। अपनी साहित्यिक प्रतिभा पर···

सहसा रोमांचित होकर वह एक कदम पीछे हट गया। पास खड़े सह-यात्री से टकराया तो उसने धक्का देकर आगे कर दिया। उसका बदन पुलक से सिहर-सिहर जा रहा था। जैसे सौ का नोट बार-बार हथेली से रगड़ खा रहा हो। नहीं, उससे कहीं गहरी थी वह पुलक। लग रहा है, माधवी भी उसे जीनियस मान बैठी है। तभी न इतने मुग्ध भाव से दो हजार का चैक लिख मारा। भावुक औरत कुछ भी···

पर कहीं ऐसा तो नहीं है कि सिर्फ चैक लिख मारा हो, बैंक में रुपया-पैसा हो नहीं। नहीं, नहीं, अब कौशल हँस पड़ा। यह कौशल कुमार का दिया चैक नहीं है, उस घर की मालकिन ने लिखा है। बड़े आदमी भावुक होकर चैक

लिखते हैं तो परा, बडे आदमी जो ठहरे; भावुक होते कब-कब हैं। दरअसल आदमी भावना की री में बहकर काम करे और सच-झूठ का कलात्मक मिश्रण भी बनाये रखे, यह कोई जीनियस ही कर सकता है जैसे···

आधे को पूरा बना देना ही तो सृजनशील कल्पना का प्रमाण है। जो आदमी कल्पना का सूरज यथार्थ की धरती पर चमका नहीं सकता, वह अनुभवों के बिखरे बीज कृति-रूप में प्रस्फुटित भी नहीं कर सकता। एक यही तो रोशनी है जो कौशल कुमार जैसे लोगों को सहलाने से इन्कार नहीं करती। कहेगा कभी यह बात उस घर की मालकिन से। मंत्रमुग्ध होकर सुनेगी। खूब औरत है! बेवकूफ और खूबसूरत। बेहद प्यारी चीज। बेवकूफ और खूबसूरत औरत, तिसपर पैसे वाली और पैसे के मामले में भी बेवकूफ। इस प्यारे मिश्रण में संभावनाएं ही संभावनाएं हैं। किसी भी कोण से देखा जाये···अच्छा, अगर उस घर की मालकिन ने···नहीं, अब उसे घर की मालकिन कहकर नहीं पुकारना चाहिए। इतनी प्यारी चीज को प्यारे से नाम से···मधु···मधुलिका··· मधुली···धत्, नाम तो माधवी है। पुकार सकता है, उसके मुंह पर उसे माधवी? राजेश्वर मिश्र की तरह? नहीं, जबान हकलाकर कहेगी—माधवी जी! जी! गरीब आदमी भी साला एक ही चुगद होता है, चाहे हरामजादा कितना भी बड़ा जीनियस क्यों न हो। अपने को गाली देकर उसे अच्छा लगा। आदमी की जेब में दो हजार पड़े हों तो वह अपने को गाली दे सकता है।

रुपये नहीं, चैक। अच्छा अगर ऐसा हुआ कि यह केवल माधवी के हस्ताक्षरों का वाहक निकला, बैंक से रुपया पाने में असमर्थ, तो? बड़ा मजा आयेगा। कौशल सोचेगा, सच्चा साथी मिल गया। कितने लोग हैं जो इतनी साज-सज्जा के साथ ऐसा झूठ बोल सकते हैं जो घंटे-आधे घंटे के अंदर बेनकाब हो जाये। प्रतिभा के साथ हिम्मत चाहिए। प्रतिभा तो है माधवी जी में। साहित्यकारों की भीड़ में एक वही हैं जिनसे उसे ईर्ष्या हुई है, जिन्होंने उसके सूखे अंतःस्थल को छुआ है। देखें झूठ पर कितना इख्तियार है माधवी जी का।

काश चैक झूठा निकले, सहसा कौशल कामना कर उठा। तब वह दिखला देगा माधवी और उसके पति को, कि अपने प्रति बोले गये झूठ को वह किस बड़प्पन से ग्रहण करता है। जाकर माधवी के सिर पर हाथ रख देगा और कहेगा, तुमने देना चाहा, यही बहुत है। तुम तनिक दुःख न करो, देखो, मुझे जरा दुःख नहीं है। वह कर सकता है पर माधवी? मान लो पुस्तक की बिक्री घिसट-घिसटकर आगे बढ़ी और पैसा वापस मिलने में पांच-छह बरस लग गये? प्रकाशक ने अपना हिस्सा काटा, पुस्तक विक्रेता ने अपना और अंत में उसके हाथ आयी पुस्तक की कुल दस-बीस प्रतियां? राजेश्वर मिश्र कहता तो है, उन बेचारों के पास कमाई का और साधन भी क्या है? साला! ठीक है, ले

जाकर दे देगा एक प्रति माधवी जी को और कहेगा, किसीने आपको वेवकूफ नहीं वनाया, आप हैं ही वेवकूफ। पूंजीपति व्यवस्था में रहती हैं और इतना नहीं जानतीं कि यहां विना विचौलियों के कोई काम सिद्ध नहीं होता। मैंने कह दिया और आपने मान लिया! इतनी मासूम हैं तो···यह मासूमियत भी इन्हीं वड़े लोगों की वपौती है। मासूमियत नहीं, यह खुदगर्जी है, उदासीनता है, क्रूरता है। जिंदगी की जद्दोजहद से सिर्फ वही आदमी नावाकिफ रह सकता है जो अपने सोने के किले में महफूज वैठा रहे। ऊंची मंजिल के छज्जे पर खड़े होकर वाल सुखा लेने से ही आप सड़क के आदमी की हमसफर नहीं वन जातीं। आपको अपनी निस्संगता की सजा मिलनी ही चाहिए। आपको तो मेरा शुक्र-गुजार होना चाहिए। सच का सामना किये वगैर कोई वड़ा लेखक नहीं वन सकता। सच्चा लेखक आपको मैं वना रहा हूं, समझीं!

गरदन सीधी तानकर वह दौड़ा और अपने दुवले-पतले शरीर का फायदा उठाकर मुसाफिरों की कतार को धकियाता हुआ सवसे आगे पहुंच गया और ड्राइवर के केविन की दीवार का सहारा लेकर खड़ा हो गया। झटके के साथ हिचकोले खाती वस आगे वढ़ी तो उसका दिमाग भी हिचकोले खाने लगा।

दो हजार रुपया मिल गया तो किताव छपवानी पड़ेगी। उसका दिल उछलकर मुंह में आ गया। एक सपना, वहुत पुराना और वार-वार का देखा हुआ, जिसे पूरे होने की उम्मीद कभी की नहीं, सहसा पूरा हो गया तो? सपना देखना और वात है, पूरा होना···ववंडर से कम नहीं। अचानक जोर-दार व्रेक की मार खाकर वस झटके के साथ रुक गयी। पर कौशल गिरा नहीं, पीठ पर सहारा था। अव किताव को छपना ही होगा। वक्त आ गया है कि कौशल कुमार सीखे, सपने पूरे होने पर आदमी कैसे जीता है!

वैंक से वाहर निकलते ही उसने पब्लिक वूथ से माधवी को फोन मिलाया।

"कौशल हूं। यहीं कनाट-प्लेस से वोल रहा हूं, पैसा मिल गया!"

उधर आवाज नहीं हुई।

"अव सीधा जा रहा हूं प्रेस," वह कहता गया, "वहां से भारत पुस्तक भंडार जाऊंगा। वहीं से फोन करके वतलाऊंगा आपको।"

"क्या?"

"यही कि काम शुरू हो गया।"

"इसमें वतलाने को क्या है? इतनी वार फोन करने की जरूरत नहीं है।"

"कैसे नहीं है! आपने रुपया लगाया है तो आपको हर पल मालूम रहना चाहिए, काम कैसा चल रहा है।"

"वह जानकर मैं क्या करूंगी ? जब किताब छप जाये, बतला दीजिएगा।"

"इतना कृतघ्न मैं नहीं हूं। अब आप-हम साझेदार हैं। आपको बिना बतलाये मैं कुछ नहीं कर सकता। किताब की पाण्डुलिपि, कवर का डिजाइन, सब आपको दिखलाकर ही फाइनल करूंगा।"

"मेरे पास इतना वक्त नहीं होगा।"

"वक्त तो मेरा लगेगा। आपने लगाया है रुपया, तो मेहनत मेरी होगी। यही दस्तूर है हमारी व्यवस्था का। हां, सलाह आपको देनी पड़ेगी, पर वह भी मैं आपके घर आकर ले जाऊंगा। सच कहता हूं, आपने जिस भावुकता के साथ रुपया दिया, उसने उम्र-भर के लिए गुलाम बना लिया वरना इस दुनिया में कोई ऐसा पैदा नहीं हुआ जो हमसे चाकरी करा ले। अच्छा चलूं, पुस्तक-भण्डार में फोन करूंगा।"

हां, माधवी जी, फोन काटकर वह बुदबुदाया, अब हम और आप साझेदार हैं। जानती हैं, कितनी बड़ी बात है, कौशल कुमार जैसे जीनियस के सपनों की साझेदार हैं आप! पहले कभी भरी है इतनी ऊंची उड़ान ? नहीं भरी होगी। अब हमारा हाथ थामकर छलांग लगाइए तो देखिए कहां से कहां पहुंचती हैं!

गर्व से सीना तानकर, उसने सामने से आ रहे स्कूटर को हाथ देकर रोक लिया। चल बेटा, कमा ले आज दस रुपये तू भी।

चार

तीन-चार दिन से कौशल का फोन नहीं आया।

एक अजीब-सी बेचैनी माधवी के भीतर पनप रही है। नौ बजते हैं और अनायास नजर घड़ी पर अटक जाती है। फोन बजता है तो माथे पर बल डालकर तय करती है कि कौशल का होगा तो डपटकर कहेगी रोज-रोज फोन न किया करें। चोंगा उठाती है। कौशल नहीं होता। रिलीफ महसूस करती है पर बस क्षण-भर। फिर न जाने कैसा अपरिभाषित शून्य उसे खाली कर देता है। दिमाग खुराक मांगने लगता है, कुछ इस तरह कि घर के किसी काम में मन नहीं लगता ''कौशल कुमार ने कहा था, समाज दो भागों में बंटा हुआ है, एक कतार है और एक है हुजूम। जो सुरक्षा चाहते हैं, कतार में शामिल हो जाते हैं, औरों के पीछे खड़े होकर या अपने पीछे खड़े रहने की सुविधा

देकर। कतार से निकालकर आदमी हजूम में शामिल नहीं हो सकता। वहां पहले से मौजूद रहना पड़ता है। आप कहां हैं, उसने माधवी से सवाल किया था, आरक्षित अपराधियों की कतार में या बेसहारा हताहतों के हजूम में ? उस वक्त माधवी टाल गयी थी। पर दो दिन से यह सवाल उसे चैन नहीं लेने दे रहा है। बार-बार वह अपने से पूछती है, ऐसा आदमी भी तो हो सकता है जो कतार में हो पर रहना न चाहे ? क्या करेगा ऐसा आदमी, क्या होगी उसकी मनःस्थिति ? अपने से पूछ-पूछकर थक गयी है, मन है कौशल से पूछे। कौशल से बात होती है तो उसके सवालों के जवाब वह नहीं देता, वह स्वयं पा जाती है। वह एक सवाल पूछता है तो अनेक सवाल और जवाब माधवी के जेहन में उभरते चले जाते हैं।

आज फ़ोन आयेगा तो पूछेगी। पर··· फोन तो आया नहीं··· नौ कब के बज चुके··· छोड़ो···कहानी लिखी तो है··· देखा जायेगा··· चलने दो दिमाग को अपनी राह पर··· हाथों को कहीं और लगा लो। आज चलो खीर बनायी जाये। समीर का आग्रह तो रोज का है, आज दुपहर राकेश भी खाना खाने घर आयेगा, समीर की तरह ही शौकीन है खीर का। तो चलो, सूंघो अब कुछ देर, गाढ़ा होते दो लीटर दूध की खुशबू !

वह रसोई की तरफ मुड़ी कि फोन बज उठा। नजर घड़ी पर गयी। ग्यारह बज चुके। कौशल का नहीं होगा। उसने चोंगा उठा लिया।

"मुझे आपसे जरूरी बात करनी है। अभी आ रहा हूं, जिंदगी और मौत का सवाल है।" कौशल ने अपनी बात कही और फोन काट दिया।

पंद्रह मिनट भी नहीं गुजरे थे कि वह उसकी बैठक में था। पर आज कोने वाली कुर्सी पर ढेर नहीं हुआ, कालीन के बीचोबीच खड़ा रहा। जैसे ही माधवी भीतर घुसी, फटी आवाज में कहा, "मुझे एक हजार रुपया चाहिए।"

वह स्तब्ध खड़ी रही। आंखों के सामने एक धुंध-सी उठ आयी। उसी धुंध के बीच से उसने देखा, कौशल कुमार का चेहरा तमतमा रहा है, आंखों में बिजली कौंध रही है, माथे पर पसीने की बूंदें झिलमिला रही हैं, नथुने फड़क रहे हैं। दिमाग में अस्पष्ट-सा खयाल आया, पैसा मांगते हुए आदमी की आंखें शर्म से झुकी नहीं रहतीं ? कौशल कुमार की आंखें तो ऐसे चमक रही हैं जैसे प्रतिद्वंद्वी पर तलवार का वार तौल रही हों।

कौशल कुमार के होठों में स्पंदन हुआ। "घर खाली करने का नोटिस मिल गया है," चीख से अधिक प्रभावशाली फुसफुसाहट में उसने ऐसे कहा जैसे नोटिस माधवी ने भेजा हो। "साल-भर से किराया नहीं दिया गया। पैसा नहीं मिला तो वे लोग सामान उठाकर बाहर फेंक देंगे। मेरे बच्चे सड़क पर होंगे। नहीं, यह अन्याय मैं उन लोगों के साथ नहीं होने दूंगा।"

नजरें गड़ाकर उसने जड़ खड़ी माधवी को देखा, फिर बोला, "परसों तक दूसरा इंतजाम कर लूंगा। सूद पर रुपया मिल जाता है। सिर्फ दो दिन की बात है। अभी दे दीजिए, परसों लौटा दूंगा।"

"मेरे पास उतना रुपया नहीं है," माधवी ने कहा।

"चैक दे दीजिए, मैं निकलवा लूंगा बैंक से," कौशल ने तत्काल कहा।

"बैंक में भी नहीं है।"

"क्यों, उस दिन दो ही तो निकाला था, ढाई और होगा।"

तो ? बैंक में रखा तमाम रुपया इसके लिए है ? बेवकूफ तो वह है। पूरी रकम का ब्यौरा देने की जरूरत क्या थी !

"अपने पति से पूछे बगैर नहीं दे सकती," उसने कहा।

फिर गलत। "उस दिन तो कह रही थी, वे आपकी बात में दखल नहीं देते," वह नहीं चूका।

"नहीं देते, यह उनका बड़प्पन है," लाचारगी और गुस्से से फटकर उसने कहा, "मुझे तो पूछना होगा। वैसे भी रोज-रोज पैसा देना हमारे लिए संभव नहीं है। लोग समझते हैं, हमारे पास बहुत पैसा है पर हमारी जरूरतें ही मुश्किल से पूरी होती हैं..."

"जानता हूं। जितने पैसों में मेरा पूरा परिवार महीने-भर की रोटी खायेगा, उतने का तो आपकी गाड़ी में पेट्रोल डलेगा। इसीलिए तो कह रहा हूं, परसों लौटा दूंगा।"

माधवी की गर्दन झुक गयी।

कौशल उसके करीब खिसक आया।

"आज पैसा नहीं मिला तो," उसका स्वर कांप गया, "मेरी चौदह बरस की लड़की सड़क पर होगी। पड़ोस की कान्ता वेश्या कैसे बनी · ठीक इसी तरह...सच मानिए..."

सिहरकर माधवी इतनी तेजी से पीछे पलटी कि कुर्सी में गिर गयी। कौशल कुमार ने झुककर उसके पैर पकड़ लिये थे।

"प्लीज," वह कह रहा था, "आपके पांव छूकर मांग रहा हूं, बस आज दे दीजिए, परसों लौटा दूंगा।"

"देखिए, यह सब मत कीजिए। चार दिन पहले आपको दो हजार रुपया दिया है..."

"वह किताब के लिए है। उसे मैं हाथ नहीं लगाना चाहता। बेईमानी करनी होती तो उस रुपये में से किराया न दे देता।"

"दे दीजिए। परसों वापस मिल जायेंगे," परेशान होकर उसने कहा।

"नहीं, कभी नहीं। मरने दीजिए मेरे बच्चों को। हजारों जानवर रोज

देकर। कतार से निकालकर आदमी हजूम में शामिल नहीं हो सकता। वहां पहले से मौजूद रहना पड़ता है। आप कहां हैं, उसने माधवी से सवाल किया था, आरक्षित अपराधियों की कतार में या बेसहारा हताहतों के हजूम में ? उस वक्त माधवी टाल गयी थी। पर दो दिन से यह सवाल उसे चैन नहीं लेने दे रहा है। बार-बार वह अपने से पूछती है, ऐसा आदमी भी तो हो सकता है जो कतार में हो पर रहना न चाहे ? क्या करेगा ऐसा आदमी, क्या होगी उसकी मनःस्थिति ? अपने से पूछ-पूछकर थक गयी है, मन है कौशल से पूछे। कौशल से बात होती है तो उसके सवालों के जवाब वह नहीं देता, वह स्वयं पा जाती है। वह एक सवाल पूछता हैं तो अनेक सवाल और जवाब माधवी के जेहन में उभरते चले जाते हैं।

आज फ़ोन आयेगा तो पूछेगी। पर···फोन तो आया नहीं···नौ कब के बज चुके···छोड़ो···कहानी लिखी तो है···देखा जायेगा···चलने दो दिमाग को अपनी राह पर···हाथों को कहीं और लगा लो। आज चलो खीर बनायी जाये। समीर का आग्रह तो रोज का है, आज दुपहर राकेश भी खाना खाने घर आयेगा, समीर की तरह ही शौकीन है खीर का। तो चलो, सूंघो अब कुछ देर, गाढ़ा होते दो लीटर दूध की खुशबू !

वह रसोई की तरफ मुड़ी कि फोन बज उठा। नजर घड़ी पर गयी। ग्यारह बज चुके। कौशल का नहीं होगा। उसने चोंगा उठा लिया।

"मुझे आपसे जरूरी बात करनी है। अभी आ रहा हूं, जिंदगी और मौत का सवाल है।" कौशल ने अपनी बात कही और फोन काट दिया।

पंद्रह मिनट भी नहीं गुजरे थे कि वह उसकी बैठक में था। पर आज कोने वाली कुर्सी पर ढेर नहीं हुआ, कालीन के बीचोबीच खड़ा रहा। जैसे ही माधवी भीतर घुसी, फटी आवाज में कहा, "मुझे एक हजार रुपया चाहिए।"

वह स्तब्ध खड़ी रही। आंखों के सामने एक धुंध-सी उठ आयी। उसी धुंध के बीच से उसने देखा, कौशल कुमार का चेहरा तमतमा रहा है, आंखों में बिजली कौंध रही है, माथे पर पसीने की बूंदें झिलमिला रही हैं, नथुने फड़क रहे हैं। दिमाग में अस्पष्ट-सा खयाल आया, पैसा माँगते हुए आदमी की आंखें शर्म से झुकी नहीं रहतीं ? कौशल कुमार की आंखें तो ऐसे चमक रही हैं जैसे प्रतिद्वंद्वी पर तलवार का वार तौल रही हों।

कौशल कुमार के होठों में स्पंदन हुआ। "घर खाली करने का नोटिस मिल गया है," चीख से अधिक प्रभावशाली फुसफुसाहट में उसने ऐसे कहा जैसे नोटिस माधवी ने भेजा हो। "साल-भर से किराया नहीं दिया गया। पैसा नहीं मिला तो वे लोग सामान उठाकर बाहर फेंक देंगे। मेरे बच्चे सड़क पर होंगे। नहीं, यह अन्याय मैं उन लोगों के साथ नहीं होने दूंगा।"

नजरें गड़ाकर उसने जड़ खड़ी माधवी को देखा, फिर बोला, "परसों तक दूसरा इंतजाम कर लूगा। सूद पर रुपया मिल जाता है। सिर्फ दो दिन की बात है। अभी दे दीजिए, परसो लौटा दूगा।"

"मेरे पास उतना रुपया नही है," माधवी ने कहा।

"चैक दे दीजिए, मै निकलवा लूगा बैंक से," कौशल ने तत्काल कहा।

"बैंक में भी नही है।"

"क्यों, उस दिन दो ही तो निकाला था, ढाई और होगा।"

तो ? बैंक मे रखा तमाम रुपया इसके लिए है ? बेवकूफ तो वह है। पूरी रकम का ब्यौरा देने की जरूरत क्या थी!

"अपने पति से पूछे बगैर नही दे सकती," उसने कहा।

फिर गलत। "उस दिन तो कह रही थी, वे आपकी बात मे दखल नही देते," वह नही चूका।

"नही देते, यह उनका बड़प्पन है," लाचारगी और गुस्से से फटकर उसने कहा, "मुझे तो पूछना होगा। वैसे भी रोज-रोज पैसा देना हमारे लिए सभव नही है। लोग समझते हैं, हमारे पास बहुत पैसा है पर हमारी जरूरतें ही मुश्किल से पूरी होती हैं…"

"जानता हूं। जितने पैसो मे मेरा पूरा परिवार महीने-भर की रोटी खायेगा, उतने का तो आपकी गाडी मे पेट्रोल डलेगा। इसीलिए तो कह रहा हूं, परसो लौटा दूगा।"

माधवी की गर्दन झुक गयी।

कौशल उसके करीब खिसक आया।

"आज पैसा नही मिला तो," उसका स्वर कांप गया, "मेरी चौदह बरस की लडकी सडक पर होगी। पड़ोस की कान्ता वेश्या कैसे बनी…ठीक इसी तरह…सच मानिए…"

सिहरकर माधवी इतनी तेजी से पीछे पलटी कि कुर्सी मे गिर गयी। कौशल कुमार ने झुककर उसके पैर पकड़ लिये थे।

"प्लीज," वह कह रहा था, "आपके पाव छूकर माग रहा हूं, बस आज दे दीजिए, परसो लौटा दूगा।"

"देखिए, यह सब मत कीजिए। चार दिन पहले आपको दो हजार रुपया दिया है…"

"वह किताब के लिए है। उसे मैं हाथ नही लगाना चाहता। बेईमानी करनी होती तो उस रुपये मे से किराया न दे देता।"

"दे दीजिए। परसों वापस मिल जायेंगे," परेशान होकर उसने कहा।

"नही, कभी नही। मरने दीजिए मेरे बच्चों को। हजारों जानवर रोज

मरते हैं। इस देश में इन्सान की कीमत क्या है! मैं आपके पैर छूकर कसम खाता हूं, किताब के पैसों को हाथ नहीं लगाऊंगा," कहकर वह वहीं उसके पैरों के पास जमीन पर बैठ गया।

"प्लीज," घबराकर उसने कहा, "आप ऊपर कुर्सी पर बैठिए।"

"नहीं, आपके पैरों में बैठने में मुझे शर्म नहीं है। आपको बतलाना चाहता हूं, पैसा आप दें चाहें नहीं, मेरे लिए आप एक महान व्यक्ति रहेंगी। जिस तरह उस दिन आपने निर्द्वंद्व, दो हजार मुझे दे डाले···"

. "पहले आप ऊपर बैठिए। कोई देखेगा तो क्या सोचेगा।"

"सोचने दीजिए। मुझे किसीकी परवाह नहीं है। मैं आपकी इज्जत करता हूं, यह जाहिर करने में मुझे कोई शर्म नहीं है," उसने अपने दोनों हाथ उसके पैरों पर रख दिये, "मेरे सिर पर हाथ रखकर सिर्फ इतना कह दीजिए कि आप मुझसे नाराज नहीं हैं।"

कौशल का सिर अब उसके घुटनों के इतना करीब था कि दूर से देखने पर कोई यही सोचता कि उसकी गोदी में टिका है।

"इतना-सा भी नहीं करेंगी आप मेरे लिए?" वह कह रहा था, "न सही रुपया पर जरा-सी सहानुभूति? थोड़ी-सी मानवीय सहानुभूति मिल जाये तो मैं सब-कुछ झेल सकता हूं, बड़ी-से-बड़ी मुसीबत का सामना कर सकता हूं। इतना भी नहीं देंगी मुझे? बीमार समझकर मेरे सिर पर हाथ रख दीजिए, मैं और कुछ नहीं मांगूंगा।"

रख दे हाथ, माधवी ने सोचा। हर्ज क्या है? इतना-सा करने से अगर यह यहां से उठ गया और पैसों के लिए इसरार करना भी छोड़ दिया तो बुरा क्या है? मैं केवल स्त्री नहीं, एक व्यक्ति भी हूं, तब छूने-भर से इतना परहेज क्यों? वह भी बीमार आदमी को? हां, मनःसंताप से पीड़ित आदमी बीमार ही तो है।

"प्लीज," चेहरा उठाकर कौशल ने कातर स्वर में कहा।

माधवी का हाथ उठा और आश्वस्ति देता हुआ उसके सिर पर जा टिका।

तेल से सने चीकट बालों का स्पर्श सुखद नहीं था। हथेली विद्रोह करके हटने लगी। पर उसने डपटकर रोक दिया। यह उच्चवर्गीय दंभ है और कुछ नहीं। डाक्टर-नर्स तो कोढ़ के मरीजों तक को छूने से इन्कार नहीं करते। हाथ उसके सिर पर रखे रहकर वह वाकई एक बड़ा व्यक्ति महसूस कर उठी। गर्व से सिर उठाकर ऊपर ताका तो देखा, सामने राकेश खड़ा है।

माधवी के चेहरे का रंग उड़ गया पर उसने हाथ नहीं हटाया। राकेश को देखकर चौंककर हटा लेना बेहद भद्दा लगता।

तभी कौशल ने कहा, "आपकी गोदी में सिर रख दूं?"

"नहीं !" माधवी इतनी जोर से चीखी कि खुद दहल गयी। कौशल को धक्का देकर वह उठ खड़ी हुई।

आर्तनाद-सा उसके मुंह से निकला, "राकेश !"

अब जाकर कौशल कुमार की समझ में आया कि राकेश कमरे में है। धीरे से वह उठा, हाथ जोड़कर बोला, "राकेश जी को नमस्कार।"

ऐसा नहीं लगा कि वह जरा भी शर्मिंदा है। माधवी को अच्छा लगा।

"ये कौशल कुमार हैं, लेखक," उसने राकेश से कहा, "मैंने बतलाया था न, बड़ी मुसीबत में हैं, एक हजार रुपया मांग रहे हैं।"

"उधार," फौरन कौशल ने जोड़ा, "परसों लौटा दूंगा। इंतजाम करने में जरा वक्त लगेगा और सरकार को आज ही चाहिए वरना मकान खाली करवा लेगी। माधवी जी के मुंह से आपकी इतनी तारीफ सुनी है कि लगता है मैं आपको अच्छी तरह जानता हूं।" वह बिल्कुल सहज था।

"तारीफ तो मैंने भी आपकी सुनी है," राकेश ने कहा। सहज वह भी था।

"आपने पढ़ी मेरी कहानियां ?" कौशल ने पूछा।

"एक पढ़ी थी। बैठिए।" वह खुद कुर्सी पर बैठ गया।

कौशल उसके पास वाली कुर्सी पर बैठ गया।

"कौनसी ?" बैठते-बैठते उसने पूछा।

"क्या नाम था···हां, ऊपर की मंजिल।"

"कैसी लगी ?"

"याद रखने लायक है। इतनी गहरी उदासीनता होती है व्यक्ति के अंदर। तिलमिला गया था मैं पढ़कर।"

"वाह ! मैं नहीं जानता था, आपकी साहित्यिक रुचि इतनी परिपक्व है। सच कहता हूं, राकेश जी, आप जैसा मित्र मुझे मिल जाये तो और कुछ न मांगूं। माधवी जी वाकई भाग्यशाली हैं।"

राकेश हँस दिया, कहा, "और मैं ?"

"आप भी। माधवी जी खूब लिखती हैं।"

"बस ?"

"बहुत बढ़िया व्यक्ति भी हैं। मैं तो कहता हूं, बढ़िया व्यक्ति ही बढ़िया लिख सकता है।"

"जरूरी नहीं है," राकेश ने कहा, "घटिया-से-घटिया आदमी भी बढ़िया लेखक होता पाया गया है।"

कौशल कुमार का चेहरा भभक उठा। "आपका इशारा मेरी तरफ है ?" उसने कहा।

"नहीं, आपकी तरफ क्यों होगा ?"

"क्योंकि मैं यहां पैसा मांगने आया हूं। पहले भी ले चुका हूं और कर्जदार हमेशा घटिया आदमी होता है।"

"जरूरी नहीं है," राकेश ने कहा।

कौशल की उत्तेजना कम नहीं हुई। "रुपया आप बेशक मत दीजिए," उसने कहा, "मेरी निगाह में रुपये की कोई कीमत नहीं है। असली चीज है दोस्ती। आपकी दोस्ती खोकर रुपया पाऊंगा तो मेरे लिए डूब मरने की बात होगी। मुसीबत झेलने की मुझे आदत है। बचपन से लेकर अब तक और किया क्या है जीवन में! मकान खाली करना पड़ेगा, कर दूंगा। मेरे बच्चे सरदी-पाले में ठिठुरकर मर गये तो उफ तक नहीं करूंगा। यह मत समझिए···"

"रहने दीजिए," राकेश ने कहा, "आप बेकार परेशान हो रहे हैं। रुपया ले जाइए। कितना चाहिए?"

"एक हजार," तत्काल कौशल ने कहा।

माधवी को धक्का लगा। एक बार तनिक झिझका तक नहीं।

राकेश ने जेब से रुपये निकाले। सौ-सौ के नोटों की मोटी गड्डी।

माधवी ने देखा, कौशल की निगाह थूक-सनी जबान की तरह लार टपका रही है। होंठ गीले होकर खुल आये हैं जैसे बस लथपथ थक्के बाहर गिरने ही वाले हों। दोनों हाथ बेकाबू होकर कांपे जा रहे हैं जैसे पिछले एक ही क्षण में वह अचानक बूढ़ा हो गया। पर बदन चौकन्ना है, घात लगाती जवान लोमड़ी की तरह।

बहुत वीभत्स है।

क्या ज्यादा वीभत्स है?—राकेश के हाथ में सौ-सौ के नोटों की गड्डी या कौशल के मुंह में लार?

कौशल से बेखबर, राकेश एक-एक करके दस नोट गिन रहा है।

माधवी जानती है रुपया कारखाने का है और कारखाने के लिए दस-बीस हजार रुपया मामूली चीज है। पर कौशल नहीं जानता।

कितनी बार राकेश से कहा है, जेब में पड़े तमाम रुपये बाहर निकालकर गिनना असभ्य लगता है पर राकेश ध्यान नहीं देता।

उसने गिनकर दस नोट अलग किये, बाकी वापस जेब में डाले और उन्हें कौशल की तरफ बढ़ाकर बोला, "लीजिए।"

शब्द पूरा भी नहीं हुआ था कि कौशल ने लपककर रुपये झपट लिये और उठ खड़ा हुआ।

"परसों लौटा जरूर दीजिएगा," माधवी ने कहा।

"जरूर। आपको जरूरत होगी!" उसने तुर्श आवाज में कहा पर अपने व्यंग्य का असर जांचे बगैर घर से बाहर निकल गया।

माधवी सह न सकी। "तुम्हें इतने सारे रुपये उसके सामने बाहर नहीं निकालने चाहिए थे," उसने राकेश से कहा।

"क्यों ?" कौशल कुमार से भी तीखी आवाज में राकेश ने कहा, "इसलिए कि कौशल कुमार गरीब आदमी है और रुपया देखते ही गरीब आदमी की नीयत खराब हो जाती है ?"

माधवी हतप्रभ रह गयी। किसी तरह अपने को सभालकर कहा, "नही, पर इतना रुपया एकसाथ देखकर किसीको भी गलतफहमी हो सकती है कि हमारे पास बहुत रुपया है।"

"है नहीं तो दान देने का नाटक क्यो करती हो ?" उसी तुर्श आवाज मे राकेश ने कहा और फिर कहता ही गया।

"मैं भी गरीब घर का लडका हू। मेरे पिताजी मामूली क्लर्क थे। हमारे यहां भी तीन-तीन चार-चार महीनों तक किराया नही भरा जाता था। पिताजी अतिरिक्त कमाई के साधन खोजते इधर-उधर टक्कर मारते घूमते थे। पर इसका यह मतलब नही था कि रुपया देखते ही उनकी नीयत खराब हो जाती थी। तुम अमीर बाप की बेटी हो इसलिए समझती हो कि दरियादिली का नाटक करके गुलाम खरीद सकती हो और तोहमत यह कि रुपया देखते ही *उनकी नीयत बिगड जायेगी।*"

आहत, भौंचक माधवी उसको देख रही थी। बारह वर्ष के विवाहित जीवन मे जो प्रहार कभी नहीं किया, वह आज क्यो ?

"तुम लोगों की नाटकीय हमदर्दी से मैं अच्छी तरह वाकिफ हू।" राकेश कह रहा था, "जानवर समझकर आदमी के सिर पर हाथ रख दो और ··"

अब और नही ! अधे हाथ फैलाकर माधवी दौडी और पिस्तौल से निकली गोली की तरह राकेश की छाती से जा लगी।

"नही राकेश, नही।"

वह कुछ देर बिल्कुल स्थिर खड़ा रहा, फिर एक लबी सास भरी। माधवी ने महसूस किया कि उसमें सटे बदन का तनाव ढीला पड गया है।

धीरे से उसे अलग करके वह कुर्सी पर जा बैठा।

"यह आदमी ठीक नहीं है," बुदबुद करके उसने कहा।

माधवी ने चौंककर उसकी तरफ देखा, कहा, "मैं उसे यहा आने से मना कर दूगी।"

"नहीं," कहीं गहरे डूबे राकेश ने कहा, "मैं हारना नही चाहता।"

"पर हमारी उससे कोई लडाई नही है।"

"लडाई है। जिसके पास नही है और जिसके पास है, वे न लड़ें तो भी उनके बीच लडाई है।"

"पर हमारे पास जो है मेहनत की कमाई है, वेईमानी की नहीं। नम्वर दो का पैसा जिनके पास है, वे···" राकेश की आंखें अपने चेहरे पर महसूस करके माधवी सहसा चुप हो गयी। राकेश की नजरें नकावों को चीरकर असलीयत सामने लाने में माहिर हैं। अपना विजनेस है उनका, लघु उद्योग ही सही। नम्वर दो का पैसा तो पूरे व्यवसाय का अनिवार्य अंग वन चुका है।

"वह नौकरी क्यों नहीं करता!" अपने सिर से हटाकर भर्त्सना उसने कौशल के ऊपर उंड़ेल दी।

राकेश चुप रहा।

"मैं अच्छी तरह जानती हूं, वह रुपये कभी नहीं लौटायेगा," उसने कहा।

राकेश फिर भी चुप रहा और जव वोला तो उसका माधवी की वात से से कोई तअल्लुक न था।

"अच्छा," उसने कहा, "विद्रोह का यह भी तो रूप हो सकता है कि वैल की तरह जुआ ढोने के वजाय आदमी जोंक की तरह खून पीने लगे।"

"क्या मतलव?"

"जरूरी नहीं है कि जोंक आदमी का ही खून पिये, दूसरी जोंक का भी पी सकती है।"

यह कौन वोल रहा है, राकेश या कौशल कुमार?

"देना वह कहानी, ऊपर की मंजिल," राकेश ने कहा।

"नहीं, रहने दो। कोई जरूरत नहीं है उसकी कहानी पढ़ने की।"

"जरूरत है। वार-वार पढ़ने की जरूरत है।" राकेश ने कहा और खुद उठकर उसके कागजों में से कहानी निकाल लाया।

माधवी को लगा उसके हाथ में थमे कागजों की परछाई रेंगती हुई दरवाजे तक जा पहुंची है। वीच दुपहर कमरे में अंधेरे की पट्टियां खिंच गयी हैं, इस तरह कि अव शायद यहां सूरज का दखल कभी न हो।

·

धम से कौशल कुमार वस-स्टॉप के पास वाली पटरी पर वैठ गया। व्यंग्य करके चला तो आया पर अव लग रहा है, उस घर में दुवारा प्रवेश पाने के लिए आज लिया रुपया लौटाना ही पड़ेगा।

आज घर का मालिक मौके पर पहुंच न गया होता तो रुपया मिलना नहीं था। माधवी ने तो मना कर ही दिया था। लगता है, उतनी वेवकूफ नहीं है जितनी समझा था या शायद उतनी मालदार नहीं है। मालदार! सिर हाथों में थाम लेना पड़ा। चक्कर आ गया था।

आंखों के सामने सौ-सौ के वेहिसाव नोट घूम गये थे जिन्हें माधवी के

पति ने लापरवाही के साथ जेब में निकाला था। गिनकर दस नोट अलग करते हुए एक बार भी उसके हाथ नहीं कांपे, माथा नहीं पसीजा। और कौशल कुमार! याद करके ही मुह का स्वाद ऐसा हो गया जैसे सब खाया-पिया बाहर आ रहा हो। सिर से हटाकर उसने हाथ पेट पर बाध लिये। आखें पूरी तरह खोलकर सामने खिचे दृश्य पर जमा दी। हो सकता है कि सामने दीखता यथार्थ फरफराते नोटों से बने मायावी संसार को परे धकेल दे।

पर है क्या सामने? एक फटीचर चाय की दूकान जहां उसी जैसे फटीचर आदमी तिडके, मैले प्यालों में चाय पी रहे होगे। पास खडा फटेहाल खोमचे वाला, जिससे लेकर कुछ दिन पहले कुलचे-छोले खाये थे। अब सोचकर मतली आ रही है। और सडक की पटरी पर पसरा चेचक के दागों से गुदा बीडी-सिगरेट वाला छोकरा जो उसीका भाई दीख रहा है। जरा दूरी पर, कुछ हटकर, बगीचा जरूर है जिसमे रंग-बिरंगे गुलाब लहलहा रहे हैं। पर उसे देखने के लिए गरदन काफी मोडनी पडती है। यही तो विडवना है उस जैसे हर आदमी के जीवन की; जो सामने है इतना बदसूरत कि एकाग्र नही होने देता और जो सुदर है इतनी दूर कि गरदन सीधी नही रहने देता। पर नही, आज नहीं, आज टेढी गरदन के सहारे दीखते गुलाब उसे बाध नही सकते। फरफराते नोटो का ससार कही ज्यादा सजीव है, ऐसा यथार्थ जो सत्य है, शिव है और सुदर है। नोट आकाश मे उड़ान भरते, फरफराते पक्षी है; नोट सागर की छाती पर प्रवहमान पानी मे बगूले उठाते जहाज है; नोट बरसात से धुले पीपल के नये हरे पत्ते हैं। लहरा-लहराकर हर पल नयी तस्वीर बनाते हैं नोट। तस्वीर बनती है, नोट क्षण-भर थिर रहते है, फिर नाच उठते हैं, पैरो मे घुघरू बंधे हो जैसे। तस्वीर बिगडती है पर दूसरे ही क्षण नयी बनकर सामने आ जाती है। फिर वही खेल! बचपन मे आत्मविस्मृत होकर देखा करता था, छोटी-सी नली मे से रग-बिरगी चूडियो के टुकडो का हर पल बनता-बिगड़ता मनमोहक चित्र। आज जो खेल आखें देख रही हैं, उसके सम्मोहन के सामने वह क्या है, कुछ भी तो नही!

न जाने कितनी देर खुली आखो से वह सपनो की दुनिया का मायावी खेल देखता रहा। पता नही कितनी बसें आयी, ठहरी और निकल गयी। देखकर भी अनदेखा करता रहा, दौडकर पकडने की कोशिश नहो की। आज जेब मे पड़े नोटो को निकालकर उंगली की पोरो से भी नही छुआ।

जो हो, ये रुपये लौटाने ही होगे। ऐसे के ऐसे, दस नोट, जो जेब मे पडे हैं। सच तो यह है कि किताब के लिए मिले दो हजार रुपयो मे से एक हजार वह मकान के बकाया किराये के लिए कल ही जमा कर चुका। सोचा था, एक बार माधवी से मिल लेने पर···वाकई वह उतनी बेवकूफ नही है जितनी उसने सोचा

था। अच्छा है। इतनी आसानी से रुपये मिलते रहते तो उसमें और उन पर-जीवी सेठों में अंतर क्या रहता जिनके विरुद्ध उसका वर्ग-संघर्ष है। वर्ग-संघर्ष ! वह ठठाकर हंस पड़ा। कैसा वर्ग-संघर्ष ? सब अपने-अपने में गर्क हैं, अपने लिए लड़ रहे हैं; लड़ भी कहां रहे हैं, बस मौका देखकर एक-दूसरे को मार रहे हैं। वह भी···

रुपये मगर लौटाने होंगे। न लौटाये तो हो सकता है, माधवी उसे घर आने से रोक दे। कमजोर औरत नहीं है। पति के सामने उसके सिर पर हाथ रखे बैठी रही। क्यों रखा हाथ···हो सकता है ··उस दिन कहा, 'आप बदसूरत नहीं हैं, बिल्कुल नहीं' और अब···यह इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि मैं बदसूरत नहीं हूं वरना इतनी खूबसूरत, संभ्रांत और प्रबुद्ध महिला मेरे सिर पर हाथ रख ही नहीं सकती थी। हां, यह भी तो कहा था, आप बहुत डिस्टर्ब करते हैं। 'तुम नहीं, तुम्हारी कहानी', दिमाग के कोने में छिपे गुप्तचर ने टोका। कौशल ने पेट से हटाकर हाथ कानों पर रख लिये। एक स्त्री पहले कहे, तुम बदसूरत नहीं हो फिर···। 'तुमने पूछा था, उसने खुद नहीं कहा', गुप्तचर ने फिर टोका पर कौशल ने नजरअंदाज कर दिया। दिमाग के कोनों से आती बेमतलब आवाजों को न सुनना उसके जीनियस का हिस्सा है। हर आदमी के अंदर ऐसी आवाजें बुदबुद करती रहती हैं, जिन्हें हमने बूर्जुआ संस्कृति से विरासत में पाया है। उनका काम ही है, घिसे-पिटे तर्क पेश करके पेंग भरते आदमी को अड़ंगी मारकर नीचे पटक देना। कौशल कुमार उनसे टक्कर लेना खूब जानता है। एक बार ये रुपये लौटा देने पर···संभावनाएं ही संभावनाएं हैं।

किताब के लिए मिले दो हजार रुपयों में से एक हजार किराया हजम कर गया, दूसरा पत्नी और पुत्री निगलने की घात में हैं। जब से रुपया देखा है, बीवी को कब-कब के भूले-बिसरे सूदखोर याद आ रहे हैं जिनका असल तो क्या, ब्याज चुकाने की हालत में भी वह नहीं रहा। उधर लड़की नये सूट और स्वेटर के लिए भूख-हड़ताल किये पड़ी है। कहती है, फटी सलवार-कमीज पहनकर मैं स्कूल नहीं जा सकती। मत जाओ ! जरूरत क्या है पढ़ने-लिखने की ? जाओ, जाकर सड़क पर झल्ली ढोओ। और हमने क्या किया है ! झल्ली नहीं ढोई, प्रूफ पढ़े। एक ही बात है। सोलह बरस की लावारिस उम्र से लेकर अब तक···

गलती उसकी थी। उन फटेहाल जरूरतमंदों को रुपया दिखलाना ही नहीं चाहिए था। दो हजार देखकर उसकी अपनी आंखें फट गयी थीं, उन बेचारों का क्या कसूर ! कहा जरूर था डपटकर, यह तुम्हारे लिए नहीं, किताब के लिए है पर मकान का नोटिस आ जाने पर···नहीं, मुझमें हिम्मत नहीं है किरण को

सडक के हवाले करने की। पता नही मुकर्जी ने कैसे कांता को···

यह जरूर कर सकता था कि माधवी से लेकर किराये का रुपया चुका देता और बाकी संभालकर कही छुपा रखता। संभालकर! अपनी ही बात पर उसने पिच्च से सडक पर थूक दिया। कहां रखता संभालकर ? उस एक कमरे और रसोई मे, जिसका पूरा साजोसमान एक कुर्सी-मेज है, जिसकी दराज तभी से गायब है जब कबाडी से पाच रुपये मे खरीदी थी। पत्नी बहुत बिगडी थी पांच रुपयों की बरबादी पर। पर कौशल अपना प्यारा भ्रम पाले रखना चाहता था कि लिखने को मेज पर बैठते ही, उसके अंदर एक महान् लेखक की आत्मा जन्म लेती है, जो उसे हर कमीनगी से ऊपर उठाकर आला इन्सान बना देती है। लिख तो आदमी जमीन पर पसरकर भी सकता है पर तब कमीने आदमी से महान् चिन्तक मे कायापलट नही होती। कैसे होगी जब कमर सीधी तानकर बैठने की सुविधा न हो ? उसके कमरे मे एक वही कुर्सी-मेज है जो जमीन से ऊपर है, बाकी जमीन ही जमीन है। कुछ लोग जमीन पर घर बनाते हैं; उसके यहां घर के अदर जमीन है। और उसका पूरा परिवार···

एक बार साहित्यिक मित्रों के बीच उसने जुमला फेंका था, "हमारी आधुनिकता देखो, हमारा पूरा घर एक डबल-बैड है, जिस पर हम एक-दूसरे को गरम रखते हैं।"

मित्रो को जुमला पसद आया था। बलराज ठहाका लगाकर बोला था, "बुखार आने पर खासा आराम रहता होगा। गरम पानी की बोतल पास हो जैसे।"

उसके उजड्ड मजाक पर वह ठहाका लगा रहा था कि राजेश्वर मिश्र बोला था, "डबल-बैड पर केवल पति-पत्नी सोते है, पूरा-का-पूरा परिवार नही।"

मित्रो ने जोरदार ठहाका लगाया था और कौशल का ठहाका बीच गले थूक मे घुटकर रह गया था। साला···!

उस बारह गुणा दस फुट की जमीन के किस कोने मे छुपा रखता रुपया ? यह माधवी जी की कोठी नही है कि आदमी तक छुप सके। ऐसे भी घर होते हैं ! एक कमरे मे सोफे-कुर्सियां, मेजें, इस इतजार मे कभी कोई आये तो बैठे। पास के कमरे मे, सारा दिन बाट जोहता, एक लबा-चौडा डबल-बैड कि रात होने पर दो प्रणयी उसपर आकर लेटें। बच्चो के सोने का अलग कमरा। एक खाली कमरे में करीने से लगी किताबो के बीच एक खूबसूरत मेज और कुर्सी कि माधवी जी मे प्रेरणा का उद्भव हो तो वे बैठकर लिखें।

और एक वह है, कौशल, जिसके दिलोदिमाग मे कागज पर उलट आने के लिए शब्दो के कीड़े हरदम कुलबुलाते रहते है पर उसे उस घडी तक सब्र से उबकाइयां भरते रहना पड़ता है, जब घर के बाकी पांच प्राणी सो न जायें और

वह भीड़ के बीच अकेला होकर मेज पर बैठ सके। तब कमर तो सीधी तान लेता है पर पैर सालों को सिकोड़कर रखना पड़ता है। जरा फैलाये नहीं कि जमीन पर पड़ी मांस की गठरी से टकरा गये। मन करता है···

माधवी जी कहती हैं, बीमार पड़ती हूं तो एक तरह अच्छा लगता है। अकेले बिस्तर पर सपाट लेटकर बाहर के संसार से कटकर एकदम रचनाशील हो उठती हूं। एक बार उसके घर आकर बीमार पड़ें तो पता चले। खुरदुरी ठंडी जमीन के एक कोने में फटे कंबल में लिपटे पड़े कांपते रहो और बार-बार पास से गुजरते मैले, बिवाई-फटे पैरों को देखते रहो। पैर पास आकर ठिठकते भी तो नहीं, बस कोसकर निकल जाते हैं कि साला आधा कमरा घेरकर पड़ गया। कौशल बीमार पड़ता है तो धूप निकलते ही, किसी तरह घिसटता हुआ, म्यूनिसिपेलिटी के पार्क में पहुंच जाता है और शाम तक वहीं पड़ा कंपकंपाता-कराहता रहता है। हमारी सरकार बेचारी है बहुत रहमदिल। अस्पताल नहीं खोल पाती तो न सही, पार्क तो बना देती है। असली समाजवाद वहीं देखने को मिलता है। बड़े आदमियों के कुत्ते और छोटे आदमियों के बच्चे मिलकर पेशाब करते हैं, कोई मनाही नहीं है। अपनों की ठोकरों में पड़े रहने से अच्छा है, अजनबियों के मैले पर पड़े रहो। लिख सकती हैं माधवी जी, आप हमारे घर में बीमार पड़कर? दूसरों की ठोकरों में पड़ा आदमी क्या लिखेगा और कहां छुपाकर रखेगा अपनी निजी सम्पत्ति? एक अलमारी तक तो है नहीं। जरूरत भी नहीं है। दिन में कपड़े देह पर टंगे रहते हैं, जिस रात धुले, रसोई में रस्सी पर लटक जाते हैं। किताबें हैं तो मेज पर लदी रहती हैं या कमरे के एक कोने में।

हां, दर्शन की किसी सेहतमंद किताब में छुपाकर रख देता तो रुपये उनकी नजरों से बच सकते थे पर यह भी हो सकता था कि पत्नी वही किताब उठाकर कबाड़ी को बेच डालती। जरूरत पड़ने पर, और जरूरत उनके घर में पड़ती ही रहती है, पत्नी उसकी कोई भी, अपनी या मांगकर लायी हुई, किताब ऐसे ही कबाड़ी को बेच दिया करती है। तभी तो···नहीं, यह बात गलत है। छिपाकर न रख पाने की मजबूरी की वजह से नहीं, खबर पचा न पाने के कारण उसने उन लोगों को रुपये दिखलाये थे। मन कर रहा था, घर की छत पर खड़ा होकर जोर-जोर से चिल्लाये, अब समझ में आया, हम कितने बड़े लेखक हैं। शहर के धनी-मानी हमारा आदर करते हैं। हजार-दो हजार रुपया तो यूंही इसरार करके हाथ में पकड़ा देते हैं कि आपकी किताब छपेगी तो कृत-कृत्य हम होंगे। जानते हो, शहर की सबसे खूबसूरत और धनाढ्य महिला ने ये दो हजार रुपये हमारी नजर किये हैं। छत पर तो खैर चढ़ नहीं सकता था, दूसरी मंजिल पर भी किरायेदार रहते हैं, पर बीवी-बच्चों पर खब रोब

झाड़ा था। उसीकी कीमत तो···

उस कुत्ते के पिल्ले मकानमालिक को अभी बकाया किराया वसूल करना था! एक साल रुका रहा, और महीना-भर नहीं रुक सकता था!

एक बस आयी और किकियाकर ठीक उसके सामने रुक गयी। ढेर सारी धूल उड़कर उसके चश्मे के शीशों पर जम गयी। किर-किर करती आंखों में घुल गयी। फिर भी वह उठा नहीं, वहीं पटरी पर पसरा रहा। चश्मा उतारकर शीशे भी साफ नहीं किये, न आखें मलीं। पास की दुनिया की तस्वीर पर पड़ी धूल की परत साफ करके क्या मिलेगा और धूल सिर्फ आंखों में नहीं, उसके पूरे अस्तित्व में घुली हुई है। बसें और भी आयीं और निकल गयीं। वह बिना देखे देखता रहा, बिना सोचे सोचता रहा। इस बार रुपये लौटाने ही होंगे। फिर देखेंगे क्या होता है। आज रात स्पिनोजा के मोटे ग्रंथ में छुपाकर वह दस नोट रख देगा। सबके सो जाने के बाद तक पढ़ता रहेगा और सुबह वही किताब हाथ में लेकर जल्दी से जल्दी घर से निकल जायेगा। योजना बनाकर काम करने की आदत नहीं है पर रात-भर के लिए निभा ले जायेगा।

जाने दो सामने से मुसाफिरों से लदी बसों को। उसे कोई जल्दी नहीं है। रात घिर आने पर पकड़ेगा और खूब देर करके घर में घुसेगा। सब सो चुके होंगे। तब डर नहीं रहेगा। सिर्फ बड़ी मछलियां ही छोटी मछलियों को नहीं खातीं। कभी-कभी कमजोर और मासूम दीखने वाली छोटी मछलियां भी मिलकर बड़ी मछली को खा जाती हैं। घात लगाकर नहीं। बस अपने होने के वजूद से।

पांच

अगली सुबह दस बजे दरवाजे की घंटी बजी। माधवी ने खुद आकर दरवाजा खोल दिया।

सामने कौशल खड़ा था। उसके माथे पर बल पड़ गये।

"कहिए ?" उसने कहा और भीतर जाने के लिए नहीं पलटी।

"भीतर आने को नहीं कहेंगी ?"

"आइए," उसने अनिच्छा से कहा और पूरी तरह उसपर जाहिर करने के खयाल से क्षण-भर और वहीं खड़ी रही।

फिर मुड़ी तो वह उसके पीछे आकर अपनी कुर्सी में धंस गया।

माधवी उसके सामने खड़ी हो गयी। पूछा, "कुछ खास बात है क्या ? मुझे अभी वाहर जाना है।"

"चाय नहीं पिलाएंगी ?" उसने वात काटकर कहा।

क्या मुसीवत है !

वह मुड़ी और रसोईघर में जाकर एक प्याला चाय वनाने लगी। जितनी देर पानी खौला, बुदवुद करके कौशल को एक-से-एक वाहियात गाली देती रही। फिर प्याला लाकर उसे पकड़ा दिया और दुवारा पूछा, "क्या बात थी ?"

"आप चाय नहीं ले रहीं ?" उसने पूछा।

"नहीं। मैं वहुत जल्दी में हूं। आप अपना काम वतलाइए।"

"वस, चाय खत्म कर लूं तो वतलाता हूं। दो मिनट लगेंगे। एकदम गरम चाय पीने की आदत है। पत्नी वेचारी वहुत परेशान रहती है। जरा-सी ठंडी हो जाये तो दुवारा गरम करवाता हूं, और पीता भी एक नहीं, तीन-चार प्याले हूं।"

माधवी कमरे में घूमकर सामान ठीक करने लगी, वैठी नहीं।

"एक प्याला आप भी लेतीं तो···" कौशल ने कहा।

"नहीं !" उसने इतनी शुष्कता से कहा कि अचरज था कौशल के प्याले की चाय सूख न गयी। दो मिनट के अंदर उसने चाय खत्म कर ली पर उतनी देर में माधवी ने असंख्य गालियां उसे और दे डालीं।

इत्मीनान से खाली प्याला पास पड़ी मेज पर रखकर कौशल ने कहा, "आपके रुपये लौटाने आया हूं। माफ कीजिएगा, कल आपको वहुत असमंजस में डाला।"

कहकर उसने जेव से रुपया निकाल भी लिया।

"मैं अच्छी तरह समझ रहा था, आपने मुझे मांगने वालों की कतार में ले जाकर खड़ा कर दिया है, "कौशल ने कहा और रुपये आगे वढ़ा दिये।

"इंतजाम हो गया ?" लज्जित, भौंचक माधवी के मुंह से निकल गया, "न हुआ हो तो अभी रख लीजिए।"

कहकर वह घवरा गयी। कहीं वह सच न मान ले।

"जरूरत होगी तो फिर मांग लूंगा, अभी तो रखिए," कौशल ने स्निग्ध उदारता के साथ कहा, "आपसे मांगने में मुझे कोई शर्म नहीं है। जिस अपनेपन के साथ उस दिन आपने रुपये मुझे पकड़ा दिये थे, मैं समझ गया था, आपके मन में मेरे लिए जगह जरूर है।"

"नहीं, नहीं," रुपये थामते हुए माधवी अपना वचाव कर उठी, "मैंने रुपये इस विश्वास पर दिये थे कि अप्रैल-मई तक वापस मिल जायेंगे।"

"आप कुछ भी कहें, मुझे धोखा नहीं दे सकती। व्यवसायी सूझ-बूझ में अपनी मानवीयता और उदारता को कितना भी लपेटें, मेरा विश्वास नहीं हिला सकती, कभी नहीं; आप जैसी उदारमना नारी इस युग मे और नहीं मिलेगी।"

माधवी ने प्रतिवाद करना चाहा पर मन कहीं खुशी से नाच उठा। सच तो कह रहा है। उस जैसी उदार और संवेदनशील स्त्री क्या आसानी से मिल सकती है? कोई व्यक्ति हमारा ठीक मूल्य जाने तो···

"और चाय लेंगे?" उसने कहा।

"ले लेंगे। जो देंगी ले लेंगे।"

"कुछ खायेंगे?" उसने पूछा, खयाल आ गया था कि हो सकता है यह बिना कुछ खाये घर से चला हो।

"खिलायेंगी तो खा भी लेंगे।"

वह प्लेट मे नमकीन निकाल लायी और इस बार एक के बजाय दो प्यालों मे चाय डालकर, उसके पास आ बैठी।

"कुछ और लिखा आपने?" कौशल कुमार ने पूछा।

"एक कहानी लिखी तो है पर अभी··"

"दिखलाइए न," बात पूरी होने से पहले ही कौशल ने किलककर कहा, "आपकी रचना देखने को मिले, ऐसा दिन बहुत ही शुभ है।

माधवी ने कहानी लाकर उसे दे दी।

कौशल कुमार ने पूरी तन्मयता से कहानी पढ़ी। चाय पास पड़ी ठंडी होती रही।

माधवी उसके चेहरे के भाव पढ़ने की कोशिश करती रही। तल्लीनता के अलावा कुछ नजर नहीं आया। कैसी लग रही है, जानने के लिए उसकी देह की हर शिरा तन गयी। उसने गहराई से कौशल कुमार को महसूस किया। उन कुछ क्षणों के लिए उनके बीच एक घनिष्ठ आत्मीयता स्थापित हो गयी। अंतिम पृष्ठ पढ़कर उसने कागज नीचे किये तो माधवी की आंखें उसीपर टिकी हुई थीं। धनुषकमान की तरह तनी देह केवल प्रश्न बनी हुई थी।

कौशल ने प्याला उठाकर घूंट भरा और बोला, "एकदम ठंडी हो गयी। गरम चाय नहीं पिलवायेंगी?"

माधवी शालीन नहीं रह सकी। पूछ ही बैठी, "कहानी कैसी लगी?"

"इसीलिए तो चाय मांग रहा हूं," कौशल ने कहा, "इतनी बढ़िया कहानी है कि मन हो रहा है लेखक के हाथ चूम लूं, पर जानता हूं आप इजाजत नहीं देंगी इसलिए चाय पर संतोष कर रहा हूं।"

कहानी की प्रशंसा सुनकर माधवी प्रसन्न हुई और हाथ चूमने की बात

सुनकर क्षुब्ध।

"प्लीज, इस तरह मत बोला कीजिए," उसने कहा।

"किस तरह ? कहानी अच्छी लगे तो प्रशंसा न करूं ?"

"प्रशंसा कीजिए पर इस तरह के शब्द…"

"किस तरह के ?"

माधवी चुप रही। कुछ शब्द दुहराये नहीं जा सकते।

"देखिए," कौशल ने ही कहा, "मेरी कोई बात आपको बुरी लगी है तो माफ कर दीजिए। मुझे भद्र समाज के तौर-तरीकों और बोलचाल का ज्ञान नहीं है। एक बात का विश्वास रखिएगा, प्राणों की रक्षा करने के लिए भी मैं आपके अपमान की बात मन में नहीं ला सकता।"

"अच्छा, अच्छा, जाने दीजिए, मैं चाय लाती हूं," वह उठी और एक प्याला चाय बना लायी।

"एक दिन आपने कहा था न," सामने बैठकर उसने कहा, "आदमी या कतार में होता है या हजूम में। इसीको लेकर मैंने यह कहानी लिखी है। ऐसा भी तो हो सकता है कि आदमी कतार में हो पर रहना न चाहे…तब ?"

"तब उसे इस बात के लिए तैयार रहना चाहिए कि हजूम उसे कंधों पर नहीं उठायेगा, उसे रौंदता हुआ आगे बढ़ जायेगा, उसकी मैयत पर थूकेंगा, फब्तियां कसेगा और इस बहादुरी का सेहरा अपने सिर बांधेगा कि कतार से बाहर खींचकर कम-से-कम एक आदमी को उसने खत्म कर दिया।"

माधवी का पूरा बदन रोमांच से सिहर उठा।

"आह," आनंदित होकर उसने कहा, "वही तो…ठीक वही तो है कहानी में।"

"यानी कहानी में कहीं हम भी हैं," कौशल ने ठसक के साथ कहा।

माधवी हँस पड़ी। "और क्या," उसने कहा, "आपसे बात करके कोई आदमी चैन से बैठ सकता है भला !"

कौशल क्षण-भर उसे देखता रहा फिर उसकी आंखों में बिजली-सी कौंध गयी।

"कहानी मुझे पसंद आयी पर…" उसने कहा।

"पर ?" अधीर होकर माधवी ने पूछा।

"एक बात जरा-सी खटकी। बतलाऊं ?"

"हां, हां, बतलाइए न।"

"अंत जरा क्षिप्र है। अंग्रेजी में जिसे कहते हैं, एबरप्ट। एक दृश्य और आना चाहिए जिससे स्पष्ट हो कि नायिका की मनःस्थिति में परिवर्तन आया कैसे, क्यों कतार से निकल भागने की छटपटाहट मन में जागी। तब देखिएगा

कहानी एकदम क्लासिक बन जायेगी।"

"अच्छा…" वह सोच मे पड़ गयी, "पढ़कर देखूंगी एक बार। अच्छी लगी तो लिख दूंगी।"

"आप कहें तो मैं लिख दू ?" कौशल ने लापरवाही के साथ कहा, इतनी लापरवाही से कि कहानी मे डूबी माधवी को समझने में वक्त लगा। जब समझी तो तड़प उठी। क्या कह रहा है यह आदमी; उसकी अस्मिता को नकार रहा है और इस लापरवाही के साथ जैसे दूसरा प्याला चाय माग रहा हो।

"आप क्यो लिखेंगे ! मैं खुद लिख लूगी," उसने कहा।

"आप तो लिख ही लेंगी," कौशल तुरंत बोला, "पर हमे भी ऐसी महारत हासिल है कि बिल्कुल आपकी तरह लिखकर दिखला दें।"

"तो ?" माधवी ने इतनी कड़ी भर्त्सना के साथ कहा कि कौशल पर असर हुए बगैर न रहा। पल-भर उसे देखकर वह बच्चो की तरह बेधड़क हँस दिया, "अरे मैं तो मजाक कर रहा था, आप परेशान क्यो हो गयीं। अब देखिए न, और कोई तो हमारी तारीफ करता नही, हम खुद ही करके खुश हो लेते हैं।"

माधवी सहज नही हो पायी। "नहीं," उसने कहा, "यह मजाक नही है। मेरी कहानी मेरी अपनी है, उसमे किसीका दखल मैं बर्दाश्त नही कर सकती। हो सकता है, आप मुझसे अच्छा लिखते हों, आपका जीनियस मुझसे बड़ा हो पर मेरी कहानी आप नहीं सुधार सकते। अगर मुझे लगा कि आपके कुछ जोड़ने से मेरी कहानी सुधर गयी तो लिखना छोड़ दूगी। हमेशा के लिए।" अंतिम बात तक आते-आते उसकी आवाज रुध गयी, आखों में आसू छलछला आये।

कौशल कुमार प्याला छोड़कर उसके पास चला आया। "मेरी बात का दुख न करें, मैं आपसे माफी…" कहकर वह नीचे झुका ही था कि माधवी जोर से चीख पड़ी, "दूर रहिए आप !"

कौशल दूर नही हटा बल्कि उसके और करीब आ गया।

"मतलब क्या है आपका !" वह चीखती गयी, "पैर छूने के बहाने बार-बार मेरे करीब किसलिए चले आते हैं ! मैं किसीका हाथ-पांव छूना बर्दाश्त नहीं कर सकती।"

कौशल भौंचक उसे देख रहा था। माधवी का चेहरा, तुरत दहकी अंगीठी की तरह तमतमा रहा था, छाती खौखियाती बिल्ली की तरह ऊपर-नीचे हो रही थी।

"मैं जा रहा हूं," कौशल कुमार ने कहा।

"जाइए ! जाना ही चाहिए ! आप क्या समझते हैं, मेरी कहानी सुधारकर आप…" उसके होंठ इतनी बुरी तरह कांप रहे थे कि आगे बोल नहीं पायी। 'जा रहा हू' कहकर भी कौशल वहीं उससे सटा खड़ा था।

"प्लीज, ... सू घोंटकर वह जोर से चिल्लायी।

"कि ... उससे भी ऊंची आवाज में चिल्लाकर कौशल

... र्सी में धंस गयी। सिर पीछे डालकर आंखें मूंद लीं। ... र क्षण-भर बाद महसूस किया कि थकान के बावजूद ... जा है. जैसा लम्बी सैर के बाद होता है। मन हो रहा ... दिमाग का चाकू की धार की तरह इस्तेमाल करे। आंखें ... कुर्सी से उठ खड़ी हुई और देखा सामने कौशल खड़ा है।

कुछ कह ... ती, उससे पहले ही वह ऊंची आवाज में बोला, "यह पूछने के लिए लौट आया हूं कि आपके पैसों का क्या करना है ?"

"क्या मतलब ?"

"अपना रुपया अब शायद आप वापस लेना चाहें। कुछ रकम प्रेस को दी जा चुकी है। उसके लिए क्या करना होगा, बतला दीजिए।" उसकी आवाज और ऊंची उठी तो माधवी ने अनायास कहा, "जरा धीरे बोलिए।"

"क्यों ? क्यों धीरे बोलूं ? मैं आपका नौकर हूं ?" वह जोर से चीखा पर आवाज में इतनी ताक़त नहीं थी कि ऊंचाइयों को संभाल सकती, बीच रास्ते फटे बांस-सी जवाब दे गयी।

माधवी ने देखा; एक दुबला-पतला आदमी, जो मर्दानगी दिखलाने की कोशिश में बेहद जनाना लग रहा है, चार्ली चैपलिन के ट्रेम्प से ज्यादा हास्यास्पद।

"आपने शरच्चंद्र पढ़ा है ?" उसने चुपके से पूछा।

"जी ! क्या मतलब ?"

"मतलब कुछ नहीं। मैं जानना चाहती हूं, आपने शरच्चंद्र पढ़ा है ?"

"हां," रबर के खिलौने की तरह सिर हिलाकर कौशल ने कहा।

"तभी !"

"जी ?"

"आपकी बोलचाल से लगता है आपने शरच्चंद्र पढ़ा है।" कहकर वह चुप हो गयी। पल दो पल चुप्पी में घिसटे।

"पैसों का क्या करना है ?" चुप्पी से परेशान कौशल ने कहा।

"किताब छपेगी और क्या।"

"नहीं, मैं ऐसे आदमी से पैसा क्यों लूं जिसके मन में मेरे लिए इज्जत नहीं।"

"फिर शरच्चंद्र !" कहकर वह खिलखिलाकर हँस पड़ी।

तभी बाहर दरवाजे की घंटी तीन बार बजी। बच्चे ! हरिचरण दरवाजा खोलने लपका। अब दृश्य को खत्म करना होगा। कुछ ऐसा कहे कि बहस की गुंजाइश न रहे।

"आप समझती हैं, गरीब आदमी का मजाक उड़ाकर आप···" दाहिने हाथ को दो बार हवा में उछालकर कौशल ने अपनी कंकरीली आवाज में कहना शुरू किया कि माधवी बोल पड़ी "देखिए, आपके मन में मेरे लिए जरा भी जगह है तो वहम मत कीजिए। मेरी इच्छा है कि आपकी किताब छपी हुई देखूं। अब जाइए किताब छपवाने का इंतजाम कीजिए।"

"आपका हुक्म मैं नहीं टाल सकता," कौशल ने फौरन भीगी आवाज में कहा।

"अब जाइए, बच्चे आ गये," जल्दबाजी में माधवी ने इतना ही कहा।

"आपका यह हुक्म भी सिर आंखों पर," कहकर वह बच्चों से टकराता हुआ बाहर निकल गया।

"इडियट !" पीठ पीछे आलोक ने गाली उछाली। माधवी ने सुनी पर एत-राज नहीं किया।

खाना खत्म हुआ तो कहानी लेकर बैठ गयी। एक बार पूरी पढ़ डाली तो लगा, कौशल ने ठीक कहा था। दुबारा पढ़ी और यहां-वहां कलम चलानी शुरू कर दी। लगा, उसकी कलम की धार पहले से कहीं तेज हो गयी है। तो क्या उसे कौशल का शुक्रगुजार होना चाहिए ?

आपने शरच्चंद्र पढ़ा है ? खिल-खिल। पढ़ा है शरच्चंद्र ? एक खिलखिलाहट कौशल का पीछा करती रही। माथे पर त्यौरियां चढ़ाए, कड़वे-तीते मुंह बनाता वह बस-स्टॉप तक आया और पटरी पर बैठे पनवाड़ी से एकसाथ दो पैकेट सिगरेट खरीद लिये। एक हजार हैं न घर पर। पानी की तरह बहाये जा सकते हैं। बहती गंगा में वह भी हाथ धो ले। आज रात जमकर पियेगा। दारू। अभी सिगरेट चलने दो।

धुएं के छल्ले अठखेलियां करते चेहरे के सामने थिरके और खिलखिलाहट में तब्दील हो गये। आपने शरच्चंद्र पढ़ा है ? कौशल ने कई बार सड़क पर थूका पर खिलखिलाहट ने पीछा नहीं छोड़ा। जहरीला मुंह बनाकर वह धुआं बाहर फेंकता और फौरन वह खिलखिलाहट में बदल जाता।

हर सिगरेट के साथ मुंह का स्वाद पहले से ज्यादा कड़वा होता चला गया। आमतौर पर जब ऐसा होता है, मुंह की कड़वाहट मन के जहर से होड़ लगाने लगती है तो सुकून महसूस होता है। पर आज मन की तिक्तता की सीमा नहीं है। सिगरेट का धुआं उससे टक्कर नहीं ले सकता। तेज शराब मिले तो चैन आये।

सहसा सिगरेट का टोटा दूर फेंककर वह सीधा खड़ा हो गया।

वापस चले माधवी के घर और उससे कहे, आपके घर में ह्विस्की तो होगी, हमें पिलवा दीजिए। तकल्लुफ की जरूरत नहीं है, बस बोतल पकड़ा दीजिए···

आठ-दस घूंट गले से नीचे उतार लूंगा; तबीयत बिगड़ गयी है, संभल जायेगी। माधवी की आंखों से चिनगारियां फूट पड़ेंगी, देह से नफरत के भभके उठने लगेंगे और···!

नफरत के मोम से मढ़ी देह को समर्पण की आग में झोंक देने में जो आत्म-पीड़न है, आत्मपीड़न में जो आध्यात्मिक परितृप्ति है, स्त्री ही जान सकती है। पुरुष तो पर-पीड़न में आनंद लेता है। कौशल की बात और है। वह है तो पुरुष भी और स्त्री भी; नहीं है तो न स्त्री न पुरुष। आत्मपीड़न और पर-पीड़न को एकसाथ भोगने की सामर्थ्य है तो केवल कौशल कुमार में। इसीलिए तो जा रहा है लौटकर माधवी के पास कि नफरत की आग में उसे झुलसाये और खुद भी झुलसे। जैसे-जैसे आग फैलेगी, शालीनता, तटस्थता और आत्म-नियंत्रण के मुखौटे चेहरे पर से उतरते चले जायेंगे और उस सभ्य-शिष्ट देह में कैद आदिम औरत जंजीरें तोड़कर बाहर निकल आयेगी। और तब···कुछ भी हो सकता है! माधवी के घर की तरफ बढ़ते कौशल कुमार के कदम तेज हो गये। मैंने सिर्फ शरच्चंद्र नहीं पढ़ा, माधवी जी, आप कहिए, आपने जैनेन्द्र पढ़ा है?

कौशल कुमार ने घंटी बजायी तो दरवाजा समीर ने खोला। उसे देखकर चिल्लाकर कहा, "मम्मी, वह आये हैं।"

"कौन?" अंदर कमरे से माधवी की आवाज आयी।

"वही जो अभी गये थे!" वह फिर चिल्लाया।

"अंदर भेज दो।"

तभी आलोक बाहर निकला और उसके ठीक सामने आकर ठिठक गया। एक भरपूर नजर उसपर डाली। कौशल सिहर उठा। यह लड़का उसे एकदम ठीक पहचान गया है। उससे बचने के लिए लगभग दौड़कर वह अंदर कमरे में पहुंच गया।

हाथ में कागज थामे माधवी तल्लीन होकर अपना लिखा पढ़ रही थी।

कौशल उसके सामने जा खड़ा हुआ। माधवी ने सिर ऊपर उठाकर देखा और नहीं देखा। एक सरसरी नजर उसपर डाल, बिना कुछ कहे हाथ के कागज पढ़ती रही।

"आपके घर में ह्विस्की तो जरूर होगी, हमें पिलवा दीजिए। तकल्लुफ की जरूरत नहीं है। बस बोतल पकड़ा दीजिए···" कौशल ने अनकही कह पाने के ठसके के साथ शुरू किया पर माधवी ने बात काट दी।

"ह्विस्की हमारे यहां नहीं है। मेरे पति पीते नहीं हैं। वैसे भी एक महिला से इस तरह शराब मांगना अशोभन है," उसने सहज स्वर में कहा।

हल्के तिरस्कार का पुट स्वर में जरूर था पर क्रोध या घृणा का नहीं। कौशल कुमार चाबुक खाने आया था, नकार की शिष्ट मार से हकला गया। "तबीयत बिगड़ गयी थी···संभल जाती···" जो सोचा था बाहर उगल दिया पर आवाज मे दम नहीं था।

"चाय बना देती हूं, पी लीजिए," माधवी ने कहा, "संभलनी होगी तो उसी से सभल जायेगी," इस बार उसके स्वर में दबी हँसी की खनक थी। "जब तक चाय बने, आप मेरी कहानी देखिए। दुबारा पढ़ी तो आपकी बात ठीक लगी, कुछ सशोधन किया है, देखिए, अब तो कोई कमी नहीं रही।" आखिरी बात कहते हुए माधवी का स्वर असतुलित हो गया। कौशल समझ गया कहानी उसके लिए बहुत मानी रखती है। "चाय के साथ कुछ खाने को भी लाइएगा, भूख लगी है," फौरन उसने कहा।

माधवी चाय और टोस्ट लेकर लौटी तब तक उसने कहानी पढ़ ली थी।

"बढ़िया। एकदम त्रुटिहीन। अब बनी न बात।" उसे देखते ही बोला।

"आपको दिखलाने का नतीजा है," माधवी ने मुस्कराकर कहा।

"नहीं, दुबारा पढ़ने पर आप स्वयं उसी नतीजे पर पहुंचतीं जिसपर मैंने पहुंचाया। आपकी रचना-प्रक्रिया को मैं आपसे ज्यादा अच्छी तरह जानता हूं।"

"आत्मप्रशसा बहुत करते हैं आप!"

"उतनी नही जितनी आपकी करता हूं," कौशल ने उमग के साथ कहा और माधवी का जायजा लिया, खुश हुई या खिन्न? देखा, खुश है। कहानी वाकई इसके लिए बहुत मानी रखती है। ऐसा है तो कौशल को एकदम से काटकर अलग नही किया जा सकेगा। पोली दीवार में सेंध लगाकर सुरग बना लेने में वह माहिर है। तरह-तरह के औजार हैं उसके पास, पैने पर धागे से महीन, जिन्हें नग्न आखों से देखना भी मुश्किल है।

"आपकी कहानियों में मुझे जैनेंद्र जैसा भाव-सवेग और चिंतन मिला। छोटी बात नहीं है," उसने कहा।

माधवी मुस्करायी।

"माधवी जी, आपने जैनेंद्र पढ़ा है?" उसने कहा और कुर्सी की पीठ का सहारा छोड़, आगे को झुक आया।

छह महीने वीत गये।

नवंवर सर्दी-पाले में ठिठुरकर जनवरी वन गया; तेज हवाओं पर सरसराकर मार्च महीने में प्रवेश किया और फिर गरमाता ही चला गया। अव तो सूरज उद्दंड वालक की तरह सिरदर्द वन चुका है।

मई का महीना है।

माधवी को गरमी वर्दाश्त नहीं है। धूप-लू में घर से वाहर नहीं निकलती। कूलर चलाकर सुवह-सुवह कमरे में कैद हो जाती है और सुखद एकांत में कागज रंगा करती है। आजकल उपन्यास लिख रही है। मन करता है दुपहर वाद जव वच्चे स्कूल से लौटें तव तक वरावर लिखती रहे पर···

दस वजे के वाद कूलर वंद कर देना पड़ता है। कौशल के आ जाने पर चलाये नहीं रख सकती। लगता है, अभाव से उत्पन्न व्यथा का रुक्ष संगीत ही उसके लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि है; सुख की हल्की-सी झंकार भी लय विगाड़ देगी। त्रासदी की पवित्रता को कलुषित कर देगी। वह आता है, गंधाते पसीने के भभकारे उड़ाता, धूप से झुलसा काला चेहरा लिये। तव गरमी से वच पाने का सुख इतना वड़ा हो जाता है कि किसी तरह वर्दाश्त नहीं किया जाता।

माधवी उसके आने से दस मिनट पहले कूलर वंद कर देती है।

तव तक वह कोशिश करती है कि दस-वारह पन्ने लिख लिये जायें जिन्हें उसे दिखला सके। पता नहीं क्यों उसे दिखलाये विना उपन्यास आगे वढ़ाने को मन नहीं होता। चंद पन्ने पढ़कर वह कह देता है—वढ़िया है—तो मन की थकान मिट जाती है। हाथ दुवारा कलम थामने को वेकरार हो जाते हैं। आगे के पन्ने एक-एक करके आंखों के सामने खुलने लगते हैं। ऐसा न होता तो उस गरमी को क्यों वर्दाश्त करती जो उसे झेलने की जरूरत नहीं है। कौशल को घर आने से रोक न देती?

माधवी नहीं चाहती कौशल पास आये। फिर भी उसके सामीप्य को वर्दाश्त करती जा रही है। क्यों? क्या सिर्फ इसलिए कि उपन्यास लिख रही है? माधवी ने आत्मविश्लेपण स्थगित न कर रखा होता तो कहती, नहीं, वार-वार परे धकेलने पर भी जो आदमी लौट-लौटकर पास आता है, उसे परे धकेलने में एक आनंद है, जिसकी चाहत, आकर्षण-विकर्षण के खेल की हर पारी के वाद वढ़ती ही जाती है। परे धकेलने में आनंद है तो धकेले जाने में भी एक रोमांच है जो आदमी को वार-वार वापस लौटा लाता है। इस खेल में···

माधवी ने घड़ी पर नजर डाली और उठकर कूलर वंद कर दिया। दस वज-

कर बीम मिनट। साढ़े दस तक कौशल पहुंच जायेगा। कूलर बंद कर देने पर भी कुछ देर ठंडक बनी रही। माधवी का चेहरा पसीने से नहीं भीगा। सामने का दरवाजा खोल दे तो कमरा फौरन गरम हो जायेगा। लू के थपेड़ों का सामना करने से वह कतरा गयी। बैठी रही। पर जैसे ही बाहर दरवाजे पर घंटी घन-घनाई, कूदकर दरवाजा खोल डाला। बाहर का दरवाजा हरिचरण खोल चुका था। कौशल कुमार और लू के थपेड़े ने एकसाथ कमरे में प्रवेश किया।

"आपने त्यागपत्र पढ़ा है?" दरवाजे से ही उसने उत्तेजना से लड़खड़ाती आवाज में पूछा और एक पतली-सी किताब उसके सामने मेज पर उछाल दी।

माधवी की समझ में नहीं आया इसमें उत्तेजित होने की क्या बात है। "हां," उसने कहा, "बहुत दिन पहले पढ़ा था। आपने अभी पढ़ा क्या?"

"पहले पढ़ चुका हूं। अब एक बार फिर रास्ते में पढ़ता चला आ रहा हूं।"

"बस में?"

"और क्या। जिंदगी का इतना बड़ा हिस्सा बसों में गुजारना पड़ता है कि वहां न पढ़ें तो अनपढ़ रह जायें। वैसे भी अनपढ़ हूं। तालीम हमारे यहां बड़े लोगों की बपौती है।"

जानती है माधवी। कितनी बार सुन चुकी है! कौशल के मां-बाप बचपन में गुजर गये, इसलिए वह आगे पढ़ न सका। उस तरफ से उसका ध्यान हटाने के खयाल से उसने कहा, "क्या कह रहे थे त्यागपत्र के बारे में?"

"मृणाल के चरित्र की विशालता से अभिभूत चला आ रहा हूं। [illegible] है वह एक कोयले वाले के साथ भाग गयी थी।" आखिरी [illegible] इतने उत्तप्त स्वर में कहा कि माधवी को ताजे खून की बास आने लगी। जैसे शेर शिकार खेलकर चुका हो या खेलने की तैयारी में हो।

माधवी ने अपने सूखे होठों पर जबान फेरी। वह कहना चाहती थी, आपको जो कुछ कहना है, सामने कुर्सी पर बैठकर कहिए। पर मुंह से एक 'हां' तक न निकला। कौशल उसके उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना कहता गया।

"एक कुण्ठाग्रस्त, मनोग्रंथि से पीड़ित पुरुष को किस आस्था के साथ स्वीकार कर लिया। विश्वास हो तो अंधा! प्रश्न पूछे ही नहीं। इसी आस्था के कारण तो सुनीता विजयी हो सकी। पुरुष को पराजित करके नहीं, उसे विजयी बनाकर। उससे विद्रोह करके नहीं, उसके प्रति पूर्ण समर्पित होकर। मुझे भी एक मृणाल की तलाश है, एक सुनीता की जरूरत है। आपमें वह विशालता है जो आपको मृणाल बना सकती है, सुनीता बना सकती है।" कहकर कौशल वहीं जमीन पर उसके सामने बैठ गया। अब माधवी के घुटनों को उसकी छाती छू रही थी। कांख से पसीने की बू का एक जबरदस्त भभका उठा और माधवी को बुरी तरह झिंझोड़ गया।

"नहीं!" उसने चीखकर कहा, "मैं सुनीता नहीं हूं। स्त्री बेजान यंत्र नहीं है कि पुरुष की मनोग्रंथियां सुलझाने के लिए उसका उपयोग किया जाये। मैं ऐसी बातें..."

"नहीं," कौशल बात के बीच में बोल पड़ा, "आप उनसे भी महान् हैं। मेरे लिए आप ही ईश्वर हैं, आप ही गुरु! मैं आपके सामने कन्फेस करना चाहता हूं। मैं कुरूप ही नहीं, अपराधी भी हूं। आपके सामने अपना अपराध स्वीकार कर लूं, आप मुझे क्षमा कर दें तो एक भयानक आत्मदाह से छुटकारा पा सकता हूं। इतनी दया भी मुझपर नहीं करेंगी?"

अचंभित माधवी उसे देखती रह गयी। क्या कह रहा है कौशल! वह तो न जाने क्या सोचकर भयाकुल हो गयी थी। उसके कानों ने कौशल की आवाज की कातरता को सुना और अब अपनी सुरक्षा के प्रति आश्वस्त हो जाने पर, उसके मन में करुणा का जामा पहने कौतूहल ने जन्म लिया। पूछा, "क्या कहना चाहते हैं?"

"मैंने एक आदमी की हत्या की है," कौशल ने फुसफुसाकर कहा।

क्या! यह मेरे घर शरण लेने तो नहीं आया। इसका पीछा करती हुई पुलिस ...माधवी बुरी तरह घबरा गयी। "कब?" बमुश्किल उसके मुंह से निकला।

"तब मैं पंद्रह बरस का रहा हूंगा। एक मुसलमान लड़के के पेट में चाकू भोंककर मैंने उसे मार डाला।" कौशल फिल्मी अंदाज में बुदबुदाया।

माधवी ने राहत महसूस की। पच्चीस साल पहले किया गया अपराध...नहीं, उसके लिए पुलिस इसका पीछा नहीं कर रही होगी। कौतूहल ने आशंका की जगह ली और माधवी ने प्रश्न किया, "क्यों?"

"क्योंकि वह असुंदर का प्रतीक था," कौशल ने आत्म-धिक्कार के स्वर में कहा।

"क्या मतलब!"

"मतलब यह है कि वह कुरूप था और पुरुष कुरूप को समूल नष्ट कर सकता

है, उसे स्वीकार करके असुंदर को सुंदर में तब्दील नहीं कर सकता," कौशल ने कहा।

लफ्फाजी इस वक्त माधवी को रास नही आयी। अपने सामने बैठे कुरूपता के प्रतिमान के मुंह से यह विस्मयकारी तर्क सुनकर वह बेहद खीज उठी।

"यह तो कोई बात नहीं हुई," उसने कहा कि कौशल उसी नाटकीय अंदाज मे बोला, "नहीं, वह कुरूप नहीं था। बस हमें सिखलाया गया था कि हर मुसलमान आदमी कुरूप है और इसीलिए उसे नष्ट कर देना चाहिए। हिंदू-मुस्लिम दगों के दौरान मैंने उसका कत्ल कर दिया।"

"ओह, तब!" कह माधवी सहसा जोर से हँस पडी। एक बेमतलब हँसी। हँस चुकने पर उसे शर्म महसूस हुई। कत्ल कत्ल है, किसी समय भी किया गया हो। पर नाटक मे एटी-क्लाइमेक्स के आकस्मिक प्रवेश ने हँसा दिया।

"आप हँस रही हैं?" आशंका के अनुसार कौशल ने तीखे स्वर में कहा। "दंगों के दौरान किया गया कत्ल आपके लिए कत्ल नही है। मुझे ऐसे लोगों से नफरत है जो सामाजिक अपराधो को अपराध नही मानते। जानती हैं, सामूहिक रूप से किया गया अपराध कहीं ज्यादा संगीन होता है, कहीं अधिक अमानवीय। पर आपके वर्ग के लोग ऐसा नही समझते। कैसे समझेंगे! समाज का पैसा बटोरकर लाखो लोगों को भूखा मरने के लिए मजबूर करते हैं पर उसे चोरी नही मानते। हा, उनके अपने घर से कोई दो रोटी उठा ले जाये तो चोर-चोर की चीखोपुकार से आसमान सिर पर उठा लेते हैं। नफरत है मुझे आपके वर्ग के लोगों से···"

"वर्ग की आड क्यो लेते हैं," माधवी ने तिलमिलाकर कहा, "जो कहना है सीधे मेरा नाम लेकर कहिए। आपके हिसाब से मैं चोर हू!"

"नही, नही, आपके वर्ग की बात कह रहा हू, आपके सामने, क्योकि आपको वर्ग से अलग मानता हूं। आपका कोई वर्ग नहीं है, जाति नहीं है, सूबा नहीं है। मैं क्या जानता नही, आप सिर्फ इन्सान हैं; इन्सान क्यों, आप नारी हैं, पूर्णरूपेण नारी। मन-मस्तिष्क-चेतना से। आपमे क्षमा करने की अपार शक्ति है। मुझे क्षमा कर सकेंगी?"

"मैं? मेरी क्षमा की क्या सार्थकता है? उस लडके के संबंधियो से मांगिए।"

"नही, नही, मेरे लिए आप ही सबकुछ हैं। मेरे कुरूप जीवन में एकमात्र सुंदर आप हैं। पच्चीस बरस से मैं सौंदर्यविहीन ससार में जीता रहा हू। प्रकृति तक का सौंदर्य मुझे दिखलाई नही देता और जब दिखलाई दे जाता तो तोष नही, त्रास पहुंचाता। स्त्री-पुरुष मेरे लिए मात्र यंत्र-औजार थे। आपने मेरी कहानियां पढी हैं न। मेरे पात्र मनुष्य नही, मशीनो के कल-पुर्जे हैं, स्त्री-पुरुष के बीच का

प्रगाढ़ आत्मीय संबंध एक यांत्रिक क्रिया। रोलर पर कागज चढ़ाने की तरह, जो दो पुर्जों को पास लाकर भी उनके बीच संबंध स्थापित नहीं करती। मैं सुंदर को नकार चुका था, मेरी चेतना सुप्त थी, इसलिए मेरा अपराधबोध भी अशक्त पड़ा था। पर अब ! मेरा सौंदर्यबोध मुझे मिल गया, मेरी सोई चेतना जाग्रत हो गयी तो मेरा अपराधबोध भी जाग उठा। मेरा गिल्ट मेरी सौंदर्यचेतना को कुंठित कर रहा है। ऐसा मत होने दीजिए। मैं एक भयानक शून्य से उबरने की कोशिश कर रहा हूं। मेरी मदद कीजिए। मेरा हाथ थाम लीजिए। मुझे क्षमा कर दीजिए।"

इस आवेग के सामने माधवी चकित-स्तब्ध बैठी रही। समझ में नहीं आ रहा था, इस आवेश को बांधे, रोके या अपने सहज प्रवाह में बह जाने दे।

असमंजस से बिना उबरे उसने कह डाला, "मेरी क्षमा आपके लिए इतनी महत्त्वपूर्ण है तो मैंने आपको क्षमा किया।"

"आपने मुझे स्वीकार कर लिया ! कौशल ने आह्लादित स्वर में कहा और उसके दोनों हाथ अपने हाथों में जकड़कर बेतहाशा चूमने लगा।

"क्या कर रहे हैं ! नौकर देखेगा तो क्या सोचेगा !" घबराकर माधवी ने कहा।

"दरवाजा बंद कर लेते हैं," गहरे इत्मीनान के साथ कौशल ने कहा।

माधवी को लगा, घर की छत टूटकर उसके सिर पर आ गिरी। जोर से धक्का देकर उसने कौशल को परे फेंक दिया और उठ खड़ी हुई। उस क्षण एक असामान्य शारीरिक बल उसकी दुबली-पतली देह में भर गया था पर अधिक देर उसने साथ नहीं दिया। "निकल जाइए मेरे घर से !" चीखकर कहा और हांफ गयी। हाथ से छूटी जा रही शक्ति को संजोकर उसने सख्त स्वर में जोड़ा, "याद रखिए, मैं सुनीता नहीं हूं।"

जमीन पर उठंगा गिरा कौशल कुछ देर वहीं पड़ा उसे देखता रहा, फिर धीरे-धीरे खड़ा हुआ और बोला, "नहीं, आप सुनीता नहीं हैं। पर माधवी तो हैं। आप माधवी बनी रहेंगी, इसी विश्वास को लेकर जा रहा हूं।"

इससे पहले कि माधवी कुछ कहती, वह घर से बाहर निकल गया।

व्याकुल माधवी ने फूटती रुलाई को रोकने की कोशिश में हाथों से मुंह ढांप लिया। सीलन-भरी बासी रजाई की दुर्गंध ने उसे झकझोर दिया और वह गुसलखाने की तरफ दौड़ गयी। मल-मलकर साबुन से हाथ धोये और सूखने तक तौलिये से रगड़ती रही। फिर नाक के पास ले जाकर हाथों को सूंघा। अब तक बास नहीं गयी !' खूंटी से उतारकर तौलिया सूंघा। उसमें भी वही बास। एक बार फिर उसने साबुन से हाथ धोये, गीला तौलिया मैले कपड़ों में डाला और आलमारी से सूखा तौलिया निकालने लगी।

तभी सुना आलोक चीख रहा है, "कूलर क्यों बंद कर रखा है ?"

उसके साथ ही राकेश की आवाज आयी, "दरवाजा खुला पड़ा है। तमाम लू आ रही है। हरिचरण। हरिचरण !"

तो आज राकेश भी आ गया है दुपहर के भोजन के समय। तौलिये से हाथ रगड़ती माधवी बैठक की तरफ भागी; कूलर चलाया और दरवाजा बंद कर दिया।

'दरवाजा खोल क्यों रखा था ?" आलोक ने तीखी आवाज में कहा।

"कूलर बंद क्यों कर देती हो, हम आते हैं तो इतनी गरमी होती है," समीर ने रुआसे स्वर मे जोड़ा।

अब वे लोग खाने की मेज पर बैठे थे।

"तुम क्या रोज कूलर बंद कर देती हो ?" राकेश ने पूछा।

"नही तो।"

"और क्या ! रोज ही तो बंद किये रहती हो," आलोक ने उसी तीखेपन से कहा, "जब भी वह आता है···"

"कौन ?" राकेश ने पूछा।

"वही कौशल कुमार !" आलोक ने थूकने के अंदाज मे कहा।

"वह क्या रोज आता है ?" राकेश ने पूछा। उसका स्वर सहज था पर आलोक और माधवी, दोनो में से कोई सहज भाव से उत्तर नही दे पाया।

"अब नहीं आयेंगे," माधवी ने अपराधी भाव से कहा और आलोक ने हठ करके पूछा, "अब तक क्यों आते थे ?"

माधवी ने जवाब नहीं दिया। कुछ देर चुप्पी रही। फिर राकेश ने तनिक हँसकर कहा, "जवाब दो न।"

"आलोक पूछ रहा है या तुम ?" माधवी ने दृष्टि उसपर जमाकर पूछा।

क्षण-भर के लिए राकेश झिझका फिर बोला, "हर्ज क्या है ?"

"किसमे ? तुम्हारे पूछने मे या उसके आने मे ?"

"मेरा पूछना तुम्हें बुरा क्यों लग रहा है ?"

"बुरा क्यों लगेगा ? वह आता था क्योंकि मैं उपन्यास लिख रही हूं और पाडुलिपि उसे दिखलाती चल रही हूं।"

"उपन्यास पूरा हो गया ?"

"नही तो," माधवी जैसे सोते से जाग उठी।

"तो अब क्यों नही आयेगा ?"

माधवी जवाब न दे पायी। परेशान-सी राकेश को देखती रही। आज से पहले कभी पति के सामने इस तरह छोटा महसूस नही किया। कभी जवाब देने के लिए शब्द ढूंढने नही पड़े। भरसक कोशिश कर लेने पर भी इस तरह नि:शब्द

रह जाना नहीं पड़ा। बच्चे साथ न होते तो वह फफककर रो ही देती।

रात घिर आने पर माधवी और चुप न रह पायी। जैसे ही राकेश ने सोने के कमरे में प्रवेश किया, वह रोते-रोते कह उठी, "तुम्हें कौशल का यहां आना अच्छा नहीं लगता ?"

राकेश बिस्तर पर सपाट लेट गया, उसकी बात का जवाब नहीं दिया। उसके 'नहीं' न कहने ने माधवी को बुरी तरह हिला दिया। उसके बराबर में बैठकर उसने कहा, "तुम्हें पसंद नहीं है तो मैं मना कर दूंगी।"

"दुपहर तुमने कहा, वह अब नहीं आयेगा, फिर यह सवाल क्यों ?"

यह राकेश को क्या हो गया ! वकीलों की तरह जिरह करना उसने कब सीखा !

"तुम चाहते हो वह न आये ?" उसने कहा।

"तुम क्या चाहती हो ?"

तड़पकर माधवी ने राकेश के दोनों हाथ अपने हाथों में जकड़ लिये। "हमें हो क्या गया है राकेश ! हम प्रश्न के उत्तर में प्रश्न क्यों पूछ रहे हैं ? ऐसा तब होता है जब आदमी मन की बात कहने से डरे। ऐसा नहीं है। मैं तुमसे सच्ची बात कह देती हूं। कौशल मेरे लेखन के लिए अनिवार्य हो गया है। उसे दिखलाये बिना उपन्यास आगे नहीं चला पाती। इसीलिए यहां आने से उसे रोक भी नहीं पाती···"

तो यही है सच !

पूरा सच क्या है, कौन जानता है। अपने को झुठलाये रखना जिंदा रहने की अनिवार्य शर्त है और सच ही की खोज करनी है तो जिंदगी से बड़ा सच और क्या है ? वाह, सहसा वह हँस पड़ी। क्या तर्क खोजकर निकाला है, माधवी ! लेखिका हो आखिर ! अपने पर हँस लेने से माधवी की शर्मिंदगी कम हो गयी। सुना, राकेश कह रहा है, "इसमें हँसने लायक क्या है ?" तो सहज भाव से बोली, " है। आज क्या हुआ, तुम्हें बतलाती हूं।"

उस दिन की कहानी उसने राकेश को सुना दी। बस एक बात बचा ले गयी। वह जुमला जो कौशल ने बोला था—दरवाजा बंद कर लेते हैं। दुहराने की जरूरत नहीं थी। वह खुद उसे भूल जाना चाहती थी।

"उसके मन में मेरे लिए बहुत श्रद्धा है," बात खत्म करके उसने कहा।

"श्रद्धा नहीं, आकर्षण। उससे पूछोगी तो वह उसे प्रेम का नाम देगा।"

"मेरे लिए वह केवल लेखक है। पुरुष की तरह, तुम जानते हो, मैंने उसे कभी नहीं देखा।"

"मैं जानता हूं, ठीक है । सवाल यह है कि वह जानता है या नही !"

"जरूर जानता है," माधवी ने दृढ़ स्वर में कहा ।

"फिर यहां क्यों आता है ?"

माधवी के पास जवाब नही था ।

"एक जगह पहुचकर प्यादा भी वजीर बन जाता है," कुछ देर चुप रहकर राकेश ने कहा ।

"यानी ?"

"तुम्हारे पास पैसा है इससे तुम्हें यह अधिकार नही मिल जाता कि आदमी का मोहरे की तरह इस्तेमाल करो ।" अब राकेश का लहजा तल्ख था ।

"वह भी तो हमें इस्तेमाल कर रहा है । किताब के लिए पैसा नही ले गया था ? दो हजार पहले ले गया । एक हजार जो बाद में तुमसे लिया था, अगले दिन वापस कर गया पर कुछ ही दिन बाद फिर, मुझसे यह कहकर कि किताब *की छपाई मे खर्च ज्यादा आ रहा है, हजार और ले गया । कह रहा था'''अरे हां,* अब तक तो किताब छप जानी चाहिए थी । पूछूगी अगली बार ।"

राकेश होठ टेढे करके मुस्करा दिया ।

"तुम नही चाहते तो नही मिलूगी अगली बार," तिलमिलाकर माधवी ने कहा ।

"और उपन्यास ?"

"तुम्हारी खुशी पहले है । नही लिखा जायेगा तो न सही ।"

राकेश उठकर बैठ गया । उसके दोनो कधे हाथों से दबाकर बोला, "मुझसे झूठ मत बोलो, माधवी । मैं तुम्हारी बिसात का मोहरा नही हू ।"

"फिर तुम आदेश क्यों नही देते ?" माधवी ने रुआंसे स्वर मे कहा ।

"मेरे आदेश का सहारा लेकर तुम त्यागमयी नही बन पाओगी । उतना महान् भारतीय पति मैं नही हू ।"

"तुम बहुत क्रूर हो," माधवी कह उठी ।

"हा, झूठ मे मेरा विश्वास नही है ।"

"और प्रेम में ? जिसे प्रेम करो उसकी रक्षा करनी चाहिए ।"

"जो स्त्री को रक्षिता मानते हैं, वे करते होगे । मैं नही मानता ।"

ईश्वर और गुरु भी नही मानते होगे, हठात् माधवी के मन में बजा ।

"मानती तुम भी नही," राकेश कहता गया, "और इतनी कमजोर नही हो कि इस पुराने जंग लगे हथियार को अपनाना पड़े ।"

ठीक तो कह रहा है राकेश । साफ, सच्ची, सुसंगत बात कहने मे राकेश का जवाद नही है । तर्क द्वारा उसकी बातें काटी नहीं जा सकती और तर्कहीन बात सुनने को वह इस वक्त तैयार नहीं है । होता तो माधवी रूठकर कहती, नही, तुम

कुछ कहने की जल्दी में उसने पूछा।

उसकी बात का जवाब न देकर कौशल बोला, "चाय के लिए कह दीजिए··· या कॉफी लेंगी ?"

खुद न कहकर उससे कहने को क्यों कह रहा है, माधवी को अटपटा लगा पर तब तक छोकरा मैले झाड़न से मेज रगड़ता हुआ पूछ रहा था, "क्या···?"

"दो कॉफी। गरम। प्याले जरा अच्छी तरह साफ कर लेना," माधवी ने यंत्रवत् संवाद बोल दिया। मोटर के सफर के दौरान सड़क के किनारे खुली सस्ती चाय की दूकानों से लेकर चाय पीनी पड़ जाती है तो वह यही सब कहती है। उसकी बात पूरी होने से पहले ही छोकरे के माथे पर शिकन पड़नी शुरू हो गयी थी, इसलिए उसने एक मोहक मुस्कराहट के साथ जोड़ दिया, "प्लीज !" वह जानती है, शिष्टता से जरा-सा आगे बढ़ती मुस्कराहटें बड़ी कारगर होती हैं। छोकरे के माथे से शिकन मिट गयी। वह भी कम समझदार नहीं है। जरूरत से ज्यादा टिप देने वाली औरतें ही ऐसे बेमतलब शब्द बोला करती हैं, अच्छी तरह जानता है।

वह हटा तो माधवी वापस कौशल कुमार की तरफ मुड़ी, देखा वह व्यंग्य से होंठ टेढ़े करके मुस्करा रहा है। "किताब छप गयी ?" तिलमिलाकर उसने पूछा।

"कॉफी तो आने दीजिए," उसने कहा।

"आ जायेगी। उसका इससे क्या तअल्लुक है ?"

"सहारा रहेगा।"

"यानी छपी नहीं। पर आपने कहा था, मई तक जरूर छप जायेगी ?"

"हां। और यह भी कहा था कि आपका पैसा लौटा दूंगा।"

"बिल्कुल। फिर छपी क्यों नहीं ?"

"छापकर होता क्या ? भारत पुस्तक भंडार ने तो लेने से इन्कार कर दिया।" कौशल ने आराम से कहा।

"पर आप कह रहे थे उनसे बात हो चुकी।"

"अब मुझे क्या पता था वे जबान देकर मुकर जायेंगे।"

"आपने बतलाया क्यों नहीं ? अभी कुछ दिन पहले आप मुझसे हजार रुपया और ले गये हैं। किताब छपनी नहीं थी तो···"

"किसने कहा नहीं छपनी ?" बात काटकर कौशल बोला, "संभावना प्रकाशन से मेरी बात हो चुकी है। अगले महीने किताब आ जायेगी।"

"नाम अच्छा है, संभावना !" तल्ख हंसी के साथ माधवी ने कहा।

कौशल हँस पड़ा। "आप बहुत जल्दी नाराज हो जाती हैं। भारत पुस्तक भंडार वाले बिना प्रकाशक के ठप्पे के किताब लेने को तैयार नहीं थे तो संभावना से बात करनी पड़ी। क्या करें, इस पूंजीपति-व्यवस्था में बिचौलियों की रोटी

चले बिना कुछ हो नही सकता। कितना चाहा आपका रुपया दुगुना करके लौटाऊ पर व्यवस्था के आगे घुटने टेकने पड़े। जो लगाया है वही वापस मिलेगा। मैं आपका अपराधी हूं, जो सजा चाहें दे लें।"

"छोड़िये, किताब छप जाये वही बहुत है," माधवी ने कहा। लग रहा था अपराधी कौशल नही वह स्वयं है; इस व्यवस्था का पोषण करने वाले उस जैसे लोग ही तो हैं।

छोकरा कॉफी के प्याले लाकर मेज पर पटक रहा था। प्याले साफ नहो तो ज्यादा गदे भी नही थे। एक प्याला तिड़का हुआ जरूर था। हालांकि वह दूसरे प्याले की निस्बत माधवी के ज्यादा करीब था पर उसने उसे परे सरकाकर साबुत प्याला अपनी तरफ कर लिया।

कौशल कुमार मुस्करा दिया। "प्याले तो साफ है," उसने कहा।

माधवी के कान गर्म हो गये। "मुझे सफाई का खब्त है," हकलाकर उसने कहा, "राकेश इसे बडे लोगों की सनक बतलाते हैं।"

"गरीब आदमी गदगी ही पसद करता हो, जरूरी नही है। मैं खुद बहुत सफाई-पसद हूँ। राकेश जी···"

"तो क्या राकेश को गंदगी पसंद है? आप खामख्वाह उनपर आरोप क्यों···" तीखी आवाज मे कहते-कहते वह रुककर हँस पडी, "सच, मुझे गुस्सा बहुत जल्दी आ जाता है, आपने तो कोई आरोप नहीं लगाया। चलिए मान लेते हैं कि हम सब निहायत सफाई-पसंद हैं पर एक-दूसरे पर हँसने की हिम्मत रखते हैं। किस्सा कोताह यह कि भाड़ में डालिए यह चरचा और हमारा उपन्यास पढ़िए।" कागज उसके सामने करके वह फिर खिलखिला उठी।

ठगा-सा कौशल उसे देखता रह गया।

"क्या हुआ?" दिप-दिप करती आखों से उसने पूछा।

"कुछ नही, बस यह आपकी···पल-पल बदलती मूड···"

"मूड शब्द स्त्रीलिंग नही, पुल्लिग है", माधवी ने बात को मोडा।

"आपको कैसे मालूम? शब्द अंग्रेजी का है और उसमे लिंग नही होता।"

"क्या! अंग्रेजो के लिंग नही होता!" भौहें ऊपर चढ़ाकर माधवी ने कहा।

कौशल ही-ही करके हँस दिया और···हँसता ही रहा।

"उपन्यास नही पढना?" माधवी ने बाधा दी।

"क्यो नही! ऐसा विट इसमे भी है? वाह-वाह, अंग्रेजों के लिंग नही होता!"

गलत आदमी के सामने जुमला उछाल दिया। राजेश्वर मिश्र होता तो जवाब मे कोई शैतानी भरी बात कहता और दोनो मिलकर मजा लेते। पर कौशल ·· एक बात को पकड़कर लटक क्यो जाता है! लिखने मे एक शब्द फालतू नही

लिखेगा; यही शिकायत है लोगों को कि इतने कम शब्दों में वात कहता है कि समझ नहीं आती और आपसी वोलचाल में···उफ ! हो सकता है, रोजमर्रा की जिंदगी में मन की सारी कटुता वाहर उगलते रहने की वजह से इसकी अंतरात्मा इतनी निष्पाप और अखंडित हो गयी हो कि जव लिखने वैठता है तो हिंसा की जरूरत नहीं रहती और न भावुकता की। कौशल तूफान का जिक्र नहीं करता, पाठक स्वयं झंझा का आविष्कार करता है और दूर तक फैला सुकूत तूफान की आशंका वन उसे झिझोड़ देता है। हम लोगों को हमारा आभिजात्य ऐसे सन्नाटे गढ़ने नहीं देता। जीवन में आदिम प्रवृत्तियों का गला घोंटते हैं; आक्रोश को हँसकर टाल देते हैं; चीख को वक्र मुस्कराहट पर झेल लेते हैं; तभी कहानी-उपन्यास में इतने मुखर हो उठते हैं। अतिभावुक। अतिनाटकीय।

उसके दायरे में कौशल ही एक ऐसा आदमी है जिसके सामने आवेश को वांधकर रखने की जरूरत नहीं है। हो सकता है, उसके ऊपर मन का गुवार निकाल लेने पर वह भी कुछ अभूतपूर्व लिख सके। कला के निर्दोष स्वरूप को प्राप्त करने के लिए कुछ जोखिम तो उठानी ही पड़ेगी। वुरा क्या है ?

अपने स्वार्थ के लिए जीते-जागते इन्सान को वस्तु की तरह इस्तेमाल करना वुरा नहीं है ? 'ओपफोह, यह न्यायवुद्धि, पता नहीं, कहां से मेरे हिस्से आ गयी !' मां न्यायाधीश की वेटी थीं, इसीसे···? याद करके वह धीमे से हँस दी। मां जव-तव नाना का हवाला देकर कहा करती हैं, हमारी वेटी अन्याय नहीं कर सकती, आखिर एक न्यायाधीश का खून है उसकी रगों में। मां चाहती थीं, वह कानून पढ़े और देश की पहली महिला-जज वने। और वह वन गयी लेखिका। वेचारी मां ! पर लेखक भी तो एक तरह का न्यायाधीश होता है। स्याह-सफेद अलग करता है; वस उसके फैसलों का असर रफ्ता-रफ्ता होता है, और फैसलों के साथ घुलमिलकर, ऐसे कि पता नहीं चलता क्या किसका असर है।

तो जव उसके भीतर के न्यायाधीश ने पूछा, अपनी कलात्मक प्रगति के लिए व्यक्ति का उपयोग अन्याय नहीं तो क्या है, उसने कंधे झटककर कहा, मानवीय संवंधों में कुछ-न-कुछ अन्याय तो होता ही है। कौशल कुमार ने ही एक दिन कहा था, मानवीय संवंध न्याय-अन्याय की कसौटी पर नहीं परखे जा सकते; भावना का चुंवक जिधर घूमेगा, उसके आकर्षण से वंधा संवंध भी उधर घूम जायेगा। जो प्रेम करता है उसका अन्याय करना भी एक तरह का न्याय है। पर जो न प्रेम करे न न्याय ?—माधवी एक कड़ुवी हँसी हँस दी।

"वढ़िया है," तभी कौशल ने कापी वंद करके कहा, "हँसी क्यों ?"

"यूंही। ठीक लगा यह अध्याय ?"

"विल्कुल। अव तो उपन्यास क्लाइमैक्स पर पहुंच रहा है। हँस क्यों रही थीं ?"

"ललिता वाला प्रसंग ठीक लगा ? अतिनाटकीय तो नहीं है ?"

"बिल्कुल नहीं। स्थिति के अनुकूल आवेश तो होना ही चाहिए। प्रियजन में सहानुभूति का न होना खलता है, स्वयं हम चाहे कितने भी तटस्थ क्यों न हों। पर यह तो बतलाइए कि आप हँस क्यों रही थीं ?"

"ऐसे ही कुछ याद आ गया था। आपसे संबंधित बात नहीं है।"

"फिर भी। है क्या ? हम भी हँस लें।"

"मैंने कहा न, आपसे सबंधित बात नहीं है।" माधवी ने सख्त पड़कर कहा।

"उससे क्या ? जो भी हो, बतलाइए तो सही।"

"निजी बात है।"

"मैं किसीसे नहीं कहूंगा।"

"वाह ! यानी आपसे निजी बात कहने में हर्ज नहीं है, हर्ज है तो बात दूसरों तक पहुंचने में !"

"आप इतनी आसानी से मेरा अपमान कैसे कर लेती हैं ?" कौशल ने कहा।

माधवी स्तब्ध-चुप रही। खुद उसे अपना स्वर काफी अपमानजनक लगा था पर···"एक बात जाननी चाहिए," कौशल कहता गया, "अपमान सिर्फ उसका करना चाहिए जिससे प्रेम करो।"

थर-थर कांपती माधवी उठकर खड़ी हो गयी।

"आप मुझसे प्रेम नहीं करतीं न ?"

"मुझे लेकर यह शब्द आपके जेहन में आया कैसे ?"

"तो मेरा अपमान करने का अधिकार भी आपको नहीं है," कौशल ने कहा। माधवी वापस कुर्सी में ढह गयी।

"सॉरी," उसने कहा, "पर आपको भी इस तरह निजी सवाल पूछने का अधिकार नहीं है।"

क्षण-भर चुप रहकर कौशल खिलखिलाकर हँस पड़ा और बोला, "अब आप पूछिए, मैं क्यों हँसा और मैं बिल्कुल बुरा नहीं मानूंगा, फौरन बतला दूंगा। पूछिए।"

"नहीं।"

"मैं इसे निजी सवाल नहीं मानता।"

"मैं मानती हूं," वह उठ खड़ी हुई, "अब चलूंगी।"

"ऐसे नहीं। उपन्यास बढ़िया चल रहा है, इस खुशी में पहले एक कप कॉफी और पिलवाइए, फिर कहिए कि आपने मुझे निजी सवाल करने के लिए माफ कर दिया, तब जाइएगा।"

माधवी झिझकी तो वह बोला, "अभी तो मुझे उपन्यास पर बहुत-कुछ कहना है।"

तब वह नहीं झिझकी। दो कप कॉफी का आदेश दुहरा दिया। बिल आने पर यह भी समझ में आ गया कि कौशल ने उसे आर्डर देने को क्यों कहा था। जैसे ही बैरे ने बिल लाकर कौशल कुमार के सामने रखा, उसने बिना हिचक माधवी की तरफ इशारा कर दिया। माधवी ने पैसे दिये तो लगा, अच्छा हुआ, कौशल देता तो वह संकुचित महसूस करती। बाहर आने का सुझाव माधवी का था। वैसे भी···अच्छा है, कौशल पैसों के मामले में संकोच नहीं करता। अच्छा है? वाकई? एक बार फिर उसके होठों से तल्ख हँसी फूटने को हुई पर उसने अपने को रोक लिया। फिर वही सवाल सुनने को वह तैयार नहीं थी।

कौशल के मुंह से वह केवल उपन्यास के बारे में सुनना चाहती थी। प्रशंसा, विश्लेषण, आलोचना, सब-कुछ। एक बार उसने उस विषय पर बोलना शुरू किया तो वह तन्मय होकर सुनती रही। फिर भी डेढ़ बजने से पहले घर के लिए रवाना हो गयी।

स्कूटर में वापस जाते हुए वह बराबर सोच रही थी, कुल मिलाकर आज का दिन बुरा नहीं बीता। जितनी ब्यौरेवार प्रशंसा कौशल ने आज उसके उपन्यास की की, पहले कभी नहीं की थी। हां, इस बात के लिए बहुत इसरार किया था कि उसके साथ स्कूटर में उसके घर तक चले। कहता रहा था, घर आने से पहले बस-स्टॉप पर उतर जायेगा और बस पकड़कर लौट आयेगा, उसे कोई असुविधा नहीं होगी। इस प्रस्ताव से उसे बेहद कोफ्त महसूस हुई थी। स्कूटर के शोर के साथ किसीका ऊंची आवाज में बोलते रहना बहुत नागवार गुजरता है। वैसे भी कहने-सुनने को कुछ बाकी नहीं था। मन शांत था और और शरीर श्रांत। बदन परितुष्ट तंद्रा में झोंके खा रहा था, आंखें बंद हुई जा रही थीं। वह अकेले रहना चाहती थी। और किसीका साथ बर्दाश्त कर भी लिया जाता पर कौशल! वह बोलता है तो लगता है डिस्को संगीत बज रहा है। एक बार शुरू हो जाये तो सिर पर हथौड़ों की तरह बरसता जाता है; मौके-बेमौके; श्रोता से तटस्थ, अपने में मग्न, अपनी गति से स्वयं उत्तेजित, सम्मोहित और स्वचालित। इतने सारे शब्द! नहीं, कौशल के बारे में सोचने के लिए भी वह अतिश्रांत है। घर पहुंचकर ठंडे कमरे में बंद होकर सिर्फ अपने बारे में सोचेगी।

पैर पटकता कौशल त्रिवेणी के पास के बस-स्टॉप की तरफ चल दिया। इतना कहा, स्कूटर में साथ चलने दो, घर पर नहीं उतरेगा, उससे पहले वाले बस-स्टॉप पर उतरकर वापस चला आयेगा पर नहीं मानी। ज्यादा तूल उसने भी नहीं दिया। हर नयी बात मनवाने में वक्त लगता है। रोज, बार-बार, एक बात

दुहराते रहने से दूसरे का आत्मबल टूटने लगता है, अपने ही तर्क बेमानी लगने लगते हैं और आखिर कमजोरी का वह क्षण आ पहुंचता है जब निरानंद भाव से आदमी ठीक वही कर बैठता है जो नहीं चाहता।

एक बार कौशल उसके साथ स्कूटर में घर तक चला गया तो हर बार जायेगा। एक बार की पुनरावृत्ति से ही वह नियम गढ़ लेता है और फिर दूसरे पर उसे थोपने के लिए हर मुमकिन हथियार का इस्तेमाल करता है। उसके चंगुल से बच निकलना आसान नहीं है। कोई नहीं निकला आज तक।

आज सुझाव-भर दिया था, मामूली-सा इसरार भी किया। इतने में ही सफलता मिल जाती तो. .!

उसके बदन के रोंगटे खड़े हो गये। लकड़ी-सी बाहें सूखी छाती पर बंध गयीं; काले पपड़ीदार होंठ हवा खींचकर कस गये तो पिचके गालों वाला दागी चेहरा इतना सिकुड़ गया कि···

कामोत्तेजना में बदन झनझनाया तभी वह समझ गया, इस वक्त किस कदर बदसूरत लग रहा होगा। उसके सिर की शिराएं धू-धूकर जल उठीं, आंखों से चिनगारियां निकलने लगीं, हाथों की मुट्ठियां भिंच गयीं और चमड़े की नयी चप्पल के जबरदस्त प्रहार से उसने सामने सड़क पर रेंग रहे तिलचट्टे का कचूमर निकाल दिया।

फाहश गालियों का गंदा नाला उसकी जबान से बह निकला; काश तिल-चट्टे की जगह पैरों के नीचे कोई खूबसूरत औरत होती। ठोकर मार-मारकर बेहोश कर देता और तब···हूं! हूंगा मैं बदसूरत! जगाता हूंगा आपके मन में वितृष्णा! फिर भी मैं मर्द हूं। लकड़ी-सी सूखी देह में खड़खड़ करती छाती भले हो, जिस्मानी ताकत इतनी कम नहीं कि···। मरे हुए तिलचट्टे पर दो-चार प्रहार और करके उसने महसूस किया कि उसके जिस्म का उफान धीरे-धीरे कम हो रहा है।

बस-स्टॉप से जरा दूर खड़े ऊंचे पेड़ के तने का सहारा लेकर उसने आंखें मूंद लीं। माधवी! चुंबन की तरह उसने नाम को होंठों से पुचकारा। लगा, उसका हाथ हाथ में है। कैसे बेहिचक बीच सड़क अपना हाथ उसके हाथ पर रख दिया था। स्कूटर में साथ रहा होता तो···तंग जगह में हाथ का हाथ से छू जाना, कंधे का कंधे से भिड़ जाना, पैरों का आपस में टकरा जाना सहज संभव है। हिचकोले खाते स्कूटर के छोटे-से झूले में सवार प्राणी झटका खाकर गिरेंगे तो एक ही दिशा में न?

कौशल ने बाहें ऊपर उठाकर पेड़ के तने को घेर लिया। आह, वह स्पर्श! गुनगुने पानी की बूंदों से पैदा हुई गरमाई और तरावट उसकी पूरी देह में फैलने लगी; आहिस्ता-आहिस्ता। सब चीजों के बावजूद। कितना कुछ हुआ

था आज, जिसे याद करके उसका करखनदारी मन क्षोभ से भर रहा था। आप सड़क पर क्यों खड़े थे (गंदे कपड़ों में) ? उसने कहा था। किताव क्यों नहीं छपी ? (पैसा आप हजम कर गये) उसने कहा था। फिर भी उसके हाथ का स्पर्श, उसका दिया उपहार, प्यार से उसे सहलाये जा रहा था।

किताव अवश्य छपेगी माधवी, पर तुम्हारा रुपया वापस नहीं मिलेगा। यह तो मेरा ही दम है कि किताव छप रही है वरना तुम जैसे दस-वीस आदमी भी जोर लगाते तो छप नहीं सकती थी। भारत पुस्तक भंडार ने नामी प्रकाशक के संरक्षण के विना वेचने के लिए किताव लेने से साफ इन्कार कर दिया। दौड़-धूप करके एक उदीयमान प्रकाशक को राजी किया तो हरामजादे ने पूरे संस्करण के कुल एक हजार रुपये पकड़ाकर सर्वाधिकार डकार लिये। एक हजार यह और एक हजार वह जो तुमने वाद में दिये, इन्हींसे तो छह महीनों से मेरा घर-खर्च चल रहा है। आपका तो, माधवी जी, एक हफ्ते काम न चले।

ठीक है, किताव छपेगी तो एक प्रति दे जाऊंगा, वाकी खरीद लीजिएगा संभावना प्रकाशन से। आपको क्या कमी है ! कह रही थीं न, किताव छप जाये यही वहुत है। तो ठीक है, देखिए किताव और हँसिए अपनी वह निजी हँसी जिसका कारण आप मुझे नहीं वतला सकतीं। इन वड़े आदमियों की साली हँसी भी निजी होती है जैसे कोई यौन क्रिया हो !

खिल-खिल ! खिल-खिल ! न चाहते हुए भी कौशल का शरीर स्फूर्त आनंद से सिहर गया। कहां गया मेरा वर्गजन्य आक्रोश ? माधवी की वह तेजी से वदलती हुई मूड···वदलता···वदलती···अंग्रेजों के लिंग नहीं होता ! माधवी का वह मासूमियत से मढ़ा शोख शरारती चेहरा ! मूड पुंल्लिग है या स्त्रीलिंग ? खिल-खिल ! खिल-खिल ! और हँसी ? स्त्रीलिंग है या पुंल्लिग ? सव तुम हो माधवी। देखो तो, कितना छिछोरा वाक्य भी मैं वोल लेता हूं। मुझसे खेलो, माधवी। अपनी वदलती मूड का वजन मेरी पीठ पर रखो। मेरा इस्तेमाल करो। खूव करो। एक विंदु पर पहुंचकर तुम्हारा जमीर तुम्हें वेचैन कर देगा। तुम प्रायश्चित्त करना चाहोगी और तव, माधवी, तुम्हें पीड़ा मैं नहीं दूंगा, तुम खुद दोगी। मैं चाहता हूं, तुम अपने भीतर छिपी हर क्रूर प्रवृत्ति को जगा लो। मेरा इस्तेमाल करो और करके सोचो, गलत किया। तुम यह न जानो तो ही अच्छा है कि वितृष्णा से ठुकराये जाने से कहीं वेहतर है कि आदमी का उपयोग किया जाये। तुम नहीं जानती क्योंकि तुम पीड़ा के सूक्ष्म शेड पकड़ सकती हो, उसके आधारभूत स्थूल रंग को नहीं। मैं जानता हूं स्थूल पीड़ा को। जव वासी रोटी को कच्ची प्याज से खाने के लिए आदमी तरस जाता है; जव घर के भीतर वच्चा जन्म ले रहा होता है और वाहर मकान की कुर्की हो रही होती है; जव घर का सामान उठाकर वाहर फेंक

दिया जाता है और तेज बुखार से कपकंपाते बच्चे को खुली सड़क के हवाले कर देना पड़ता है; जब···छोड़ो। समाज ने जो अन्याय मेरे साथ हमेशा किया, उसके सामने तुम्हारा किया अन्याय कुछ भी नहीं है। करो, तुम अन्याय करो और पश्चात्ताप की आग में जलो। तुम्हारा दिया सब-कुछ मुझे स्वीकार है, लांछन, तिरस्कार, अपमान, वेदना। जितना मैं कहूंगा, दो, पीड़ा पहुंचाना उतना ही तुम्हारे लिए दुष्कर होता जायेगा। तुम पर-पीड़न में नहीं, आत्मपीड़न में विश्वास करती हो और मैं···!

सिर झटककर उसने आंखें खोलीं, ऐसे जैसे तीसरा नेत्र खोल रहा हो। आसमान रूठे बच्चे की तरह गुमसुम था। हवा न जाने किस डर से पृथ्वी के तल में जा घुसी थी। वातावरण में प्रतीक्षा का बोझिल सन्नाटा था। दूर क्षितिज में लेटी गोधूलि की ईमानदार रोशनी, काली-पीली धूल के मुखौटे में छिप गयी थी। पेड़ों में दुबके परिंदे बेआवाज थे और बस-स्टॉप पर खड़ा हर आदमी आसमान की तरफ आंख उठाये था।

आंधी आने वाली थी। मई की काली-पीली-लाल आंधी!

वाह! चारों तरफ के मातमी सन्नाटे को चीरकर कौशल की हँसी गूंजी। वाह, बढ़िया है! आये आंधी। सब-कुछ उड़ जाये, मिट जाये, ध्वंस हो जाये। काश, आंधी नहीं, जलजला आ जाये। आसमान से उतनी आशा बेकार है, पृथ्वी विद्रोह करेगी, खुद अपना पेट फाड़ लेगी तभी ध्वंस का लावा उठेगा, तभी ये भव्य अट्टालिकाएं और सदियों से उन्हें छांव देते पुराने पेड़ जड़ से उखड़कर गिरेंगे; आग और पानी मिलकर तांडव-नृत्य करेंगे और कौशल हँसेगा। अपने बदन को चिंदी-चिंदी होते देखेगा और हँसेगा; मरो, सब मरो। मैं अकेला नहीं हूं, सब मेरे साथ हैं, मरो, मेरे साथ सब मरो!

आठ

ठंडे कमरे की पनाह में दाखिल होते ही फोन बजा। "अब कौन है," कहकर माधवी ने उठाया।

"अच्छा किया जो आपने चेले को किताब छपवाने के लिए रुपया नहीं दिया," भारी आवाज ने कहा। राजेश्वर मिश्र!

"मतलब ?" उसने कहा।

"मेरे पास आया था कहानियों पर एडवांस मांगने। मैंने कहा, एडवांस तो

तब दूं जब कहानियां छापने का मेरा इरादा हो। अब शायद संभावना प्रकाशन से सौदा पटा है।"

"यह कैसे हो सकता है!" माधवी के मुंह से निकला तो उसने फौरन बात पकड़ ली।

"तो पैसा आपसे ले चुका।"

"नहीं, मैंने नहीं दिया," वह साफ इन्कार कर गयी पर राजेश्वर मिश्र इतना भोला नहीं कि शीशे में उतर जाये।

"फिर क्या नहीं हो सकता और क्यों?" दृढ़ता से उसने पूछा।

माधवी तब तक संभल चुकी थी। "यही कि आपने कहानियां छापने से इन्कार कर दिया," उसने कहा।

"क्यों?"

"आप खुद लेखक हैं। शब्द प्रकाशन की स्थापना आपने यही सोचकर की थी कि जिन शुद्ध साहित्यिक स्तर की किताबों को बनिया टाइप प्रकाशक नहीं छापते, उन्हें आप छापेंगे। आपके शब्द हैं, मेरे नहीं। पहली बार मिली थी तब आपने कहे थे, याद हैं?"

"अच्छी तरह। क्या लग रही थीं आप उस दिन! मैंने देखते ही तय कर लिया था इस औरत से प्रेम करना ही पड़ेगा।"

वाह, किस सफाई से बात उलटाई गयी है! दाद देनी ही चाहिए।

"फिर इरादा क्यों बदल लिया?" माधवी ने कहा।

"बदला कहां?"

"तो? क्या कर रहे हैं उसके बारे में?"

"जो चाहें कर दें। अभी चली आइए।"

"शब्द प्रकाशन के दफ्तर में!"

"जहां आप चाहें।"

"छोड़िए," वह हँस दी, "इस उम्र में कहां खटते फिरेंगे। बहुत झंझट का काम है। मेरे पास भी वक्त नहीं है। आजकल उपन्यास लिख रही हूं।"

"तो खत्म होने पर बतलाइएगा।"

"दूसरा शुरू नहीं किया तो।"

"चेले पर तो कृपादृष्टि नहीं है आजकल?" राजेश्वर मिश्र ने पूछा तो उसकी हँसी एकदम बुझ गयी।

फुंकारकर उसने कहा, "मुझे ऐसी भद्दी बातें पसन्द नहीं हैं!"

राजेश्वर मिश्र देर तक हो-हो करके हँसता रहा।

"इसमें इतना हँसने की क्या बात है?" चिढ़कर उसने कहा।

"इससे पहले जो बात हो रही थी, वह भद्दी नहीं थी?"

"वह मजाक की बात थी," माधवी ने कहा।

"और यह मजाक नहीं है ? क्यों ?"

माधवी को जवाब नहीं सूझा। क्यों नहीं है मजाक ? इसलिए क्योंकि खुद कौशल इसे मजाक नहीं समझता ? कुछ अदृश्य रेखाएं होती हैं जो व्यक्तियों के बीच, चाहने, कहने और करने के बीच खिंची रहती हैं। जो लोग उन्हें देखे बिना महसूस कर लेते हैं यानी जो सचेत, सामाजिक प्राणी हैं, उनसे मजाक किया जा सकता है पर समाज से कटे, अपने में लिप्त, अपने तक सीमित लोगों के साथ नहीं।

"जवाब नहीं सूझ रहा ?" राजेश्वर जीत की खुशी में चहका।

"पहले आप मेरी बात का जवाब दीजिए। आपने कौशल कुमार की किताब छापने से इन्कार क्यों किया ?"

"मुझे उसकी कहानियां पसन्द नहीं हैं।"

"यह झूठ है। आप स्वीकार कर चुके हैं कि साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि की हैं।"

"हां, पर सम्प्रेषित नहीं होतीं। पाठक जो सम्प्रेषित न कर पाये···"

"कौन पाठक ?"

"आम पाठक।"

"यानी आप भी बिकने वाली किताब छापते हैं, साहित्य से आपको कुछ लेना-देना नहीं है।"

"बड़ी जबरदस्त पैरवी हो रही है !"

"गंभीर बात है, मजाक में मत उड़ाइए।"

"मैं पाठक को नकारकर लिखे गये साहित्य को बड़ा नहीं मानता।"

"कौन पाठक ? वही तो पूछ रही हूं। नये ढंग के साहित्य के पाठक धीरे-धीरे बनते हैं। आप छापेंगे नहीं तो पाठक बनेंगे कैसे ?"

"चलिए आपकी बात रख ली। चेले से कहिए उपन्यास लिखकर दे, छाप देंगे।"

"फिर मजाक ! आप इसपर गंभीरता से बात क्यों नहीं करना चाहते ?"

"हद है यार, मुझे भी कौशल कुमार समझ लिया है ? हर वक्त साहित्य को लेकर चेहरे पर मुर्दनी बिछाये रखना मेरे बस का रोग नहीं है। उसे देखो तो लगता है, साहित्य का जनाजा अकेले एक कंधे पर उठाये चला जा रहा है।"

माधवी को हँसी आ ही गयी। "उपमा बढ़िया है पर···" उसने कहा।

"पर यह कि संभावना प्रकाशन उसका कहानी-संकलन छाप रहा है। एक हजार में खरीदकर। उपन्यास हम छाप देंगे, रॉयल्टी पर। बस काफी भला हो गया साहित्य का। अब यह बतलाइए, हमारा क्या होगा ?"

एक हजार पर खरीदा है कहानी-संकलन संभावना प्रकाशन ने ? तव तो रॉयल्टी तक नहीं मिलेगी। फिर उसका पैसा···? कौशल उससे तीन हजार ले चुका, यह कहकर कि किताव उसके पैसों से छपेगी और विक्री होते ही पैसा वापस मिल जायेगा। इतना झूठ !

"हलो-हलो !" उधर राजेश्वर चीख रहा था।

"हलो···हां।"

"कहां चली गयी थीं ?"

"सोच रही थी।"

"क्या ?"

"यही कि आपका क्या होगा ?"

"सोचा ?"

"हां।"

"क्या ?"

"कोशिश करते रहिए। आदमी का काम है कोशिश करना।"

"सफलता कब मिलेगी ?"

"किसी वढ़िया ज्योतिषी से मालूम कीजिए।"

"आ जाइए लेकर !" उसने तत्काल कहा।

"क्या, ज्योतिषी ?" माधवी हँस पड़ी।

"और क्या ! अब, कुछ तो वहाना चाहिए आपको बुलाने का।"

"कल आऊंगी विना वहाने। ज्योतिषी आप तलाश कीजिए। गरज आपकी है।" एक वार फिर हँसकर उसने फोन काट दिया पर अकेले होते ही मन को पुनः दुविधा ने आ घेरा। पूरा दिन वड़ी छटपटाहट में कटा।

अगले दिन के नौ वजे के फ़ोन के लिए वह पहले से तैयार थी। छूटते ही पूछा, "संभावना प्रकाशन ने आपका कहानी-संकलन एक हजार में खरीदा है ?"

"किसने कहा ?" उसने जवाव में सवाल किया।

"राजेश्वर मिश्र ने," उसने फौरन कह दिया। इधर-उधर मुंह मारकर असली वात से मुंह फेरने की सुविधा वह कौशल को नहीं देना चाहती थी।

"वह साला—!" एक भद्दी गाली उसने दी।

"देखिए," उसने कहा, "ऐसी भाषा मेरे सामने मत वोलिए। जो पूछ रही हूं उसका जवाव दीजिए।"

"हां !" उसने कहा।

"जो रुपये मैंने दिये थे उनका क्या हुआ ?"

"घर में खर्च हो गये !" उसने करीव-करीव चीखकर कहा।

"अव तक मुझसे झूठ क्यों वोलते रहे ?"

"कैसे कहता ?"

"कभी-न-कभी तो कहना ही पड़ता।"

"मैं कोशिश कर रहा था, किताब रॉयल्टी पर छप जाये; रॉयल्टी मिलते ही मैं आपका रुपया लौटा देता। पर नहीं छपने दी गयी।"

"क्या मतलब ?"

"आपके आदरणीय राजेश्वर मिश्र जी को गाली न दूं तो क्या करूं ?"

"उन्होंने क्या किया ?"

"खुद किताब छापने से इन्कार कर दिया···"

यह बात तो सच है, माधवी ने नोट किया, आगे ?

"सम्भावना प्रकाशन के मालिक को अलग उकसाया कि रॉयल्टी देकर किताब मत छापो। इस आदमी को पैसे की सख्त जरूरत है, जितनी खींच सको, खाल खींच लो।"

यह भी सच हो सकता है, माधवी ने फिर नोट किया।

"भारत पुस्तक भंडार किताब लेने को बिल्कुल तैयार था, उसके मालिक महेन्द्रनाथ को भी वरगलाया।"

"वे उनकी बात क्यों सुनेंगे ?"

"क्यों, उनके लड़के की नौकरी इसीने तो लगवाकर दी है।"

इस बात का झूठ होना भी जरूरी नहीं है। पर···

"पैसे खर्च हो चुके थे तो आप किताब छापते कैसे ?" एक प्रश्न और उठता था।

"तब कहां हुए थे ? यह राजेश्वर मिश्र मुझे बरबाद करने पर तुला है।"

"फिर एक हजार रुपया और आपने मुझसे क्यों लिया ?" माधवी ने दुखी स्वर में कहा।

"क्या करता, बड़ा लड़का सख्त बीमार था।"

"फिर झूठ क्यों बोला ?" माधवी का सिर चकराने लगा था, जैसे मकड़ी के जाले में फंसने पर हाथ-पांव मारकर अपने को और फंसाती जा रही हो। बार-बार वही सवाल ! "आपने कहा था, किताब छप रही है," बेदम-सी आवाज में उसने बात पूरी की।

"मैं बराबर कोशिश कर रहा था, पूरी उम्मीद थी किताब छप जायेगी। आपको ख्वामख्वाह तकलीफ नहीं देना चाहता था। आप चिंता न करें, इतनी आसानी से हारने वाला जीव मैं नहीं हूं। राजेश्वर मिश्र जानता नहीं, किससे लोहा ले रहा है। अगली किताब के छपते ही सारी रॉयल्टी आपको दे जाऊंगा बल्कि मैं उसे पत्र लिख भी चुका कि रॉयल्टी मेरे पास नहीं, सीधी आपके पास भेजे।"

"किस किताब की बात कर रहे हैं आप ?"

"शब्द प्रकाशन मेरा नया उपन्यास छाप रहा है न, उसीकी।"

बिल्कुल सच ! यह बात तो खुद राजेश्वर मिश्र ने बतलायी थी।

"आपने कभी बतलाया नहीं, आप उपन्यास लिख रहे हैं !" उसने कहा।

"आपने पूछा कब ?"

"पूछा नहीं पर···"

"बिना पूछे हम क्यों बतलायें ? रोज मिलते हैं, आपके उपन्यास पर लंबी बातचीत होती है। आपने कभी पूछा, कौशल, तुम क्या लिख रहे हो ?"

माधवी लज्जित हुई। वाकई कौशल से कम आत्मकेन्द्रित नहीं है वह !

"कितना हो गया ?" उसने मधुर स्वर में पूछा।

"बस खत्म होने को है।"

"नाम क्या रखा ?"

"सिफर पर सिफर। कैसा है ?"

"बढ़िया। बहुत बढ़िया ! उपन्यास कब दिखला रहे हैं ?"

"जब आप कहें। अगले सोमवार तक खत्म हो जायेगा।"

"ठीक है। तभी देखूंगी।"

"और आज ? अच्छी खबर सुनाने के उपलक्ष्य में कॉफी नहीं पिलाएंगी ?"

"अच्छी खबर, कौनसी?" चकित माधवी ने कहा।

"क्यों, हिंदी साहित्य की अनुपम उपलब्धि हमारा उपन्यास अच्छी खबरों में नहीं आता ?"

माधवी फिर लज्जित हुई, स्वर और मधुर।

"आज नहीं," उसने कहा, "कहीं जाना है।"

इसके बाद करीब पांच मिनट कौशल ने बहस की, कहां, क्यों, कब जाना है, प्रश्नों ने माधवी के स्वर की मिठास सोख ली, तब उसने कहा, 'इधर का कोई काम हो तो बतलाइए, मैं शब्द प्रकाशन के दफ्तर जा रहा हूं।"

"वहीं तो मैं जा रही हूं," उसके मुंह से निकल गया।

"मेरा वहां आना आपको बुरा तो नहीं लगेगा ?" कौशल ने पूछा तो माधवी ने चिढ़कर कहा, "मुझे बुरा क्यों लगेगा ?" पर साथ ही महसूस किया कि कौशल के साथ वहां जाने की उसकी बिल्कुल इच्छा नहीं है। अकेले उसका साथ झेला जा सकता है पर तीसरे आदमी की मौजूदगी में न जाने उसे क्या हो जाता है कि···आक्षेप, आरोप, आक्रोश का सिद्धहस्त शिल्पी है कौशल। आखेट मिला चाहिए, उसकी जबान अनथक यूं चलती है कि लगता है वह उसके मुनहने शरीर की तुलना में कहीं ज्यादा लंबी और ताकतवर है और पहलवान से पहलवान आदमी को पटकनी दे सकती है। तो न जाये ? कह देगी राजेश्वर मिश्र से जरूरी

काम पड़ गया, दो-चार लंबी आहें भरकर वह बात खत्म कर देगा। पर कौशल ? वहां नहीं मिली तो फोन करेगा और बार-बार करेगा। जुमलों पर जुमले छोड़ेगा। क्यों नहीं आयी ? खैरियत तो है ? मैं तो घबरा ही गया, कहीं दुर्घटना न हो गयी हो। तबीयत ठीक है न ? सच-सच बतलाइए। आवाज धीमी क्यों है ? मुझसे छिपाइए नहीं। तबीयत बिल्कुल ठीक है न ? ठीक है ? अच्छा-अच्छा, ठीक है तो आइए न त्रिवेणी। देखे बिना मुझे यकीन नहीं होगा। क्या करूं, फिक्र किये बगैर रहा नहीं जाता। आदत है। भली-बुरी जो आप समझें। क्यों नहीं आ सकती त्रिवेणी ? आप ठीक से बतला नहीं रहीं। जरूर कोई बात है। तबीयत ठीक है न ? बिल्कुल ?

"उफ !" उसके मुंह से निकल गया।

"क्या हुआ ?" उधर से घबराहट-भरी आवाज गूंजी, "मैं कितनी देर से हलो-हलो कर रहा हूं, आप जवाब नहीं दे रहीं। तबीयत तो ठीक···"

माधवी के हाथ से फोन छूट गया या उसने छोड़ दिया। इससे तो अच्छा है, शब्द प्रकाशन चली जाये।

राजेश्वर मिश्र बहुत गर्मजोशी से मिला। तपाक से हाथ आगे बढ़ाया। माधवी को अपना हाथ उसके हाथ में देना पड़ा। मिलाने को तैयार खड़े आदमी के सामने से हाथ खींच लेने की अभद्रता, या कहना चाहिए हिम्मत, वह नहीं कर सकती। उसके संस्कार···! संस्कार या दंभ ! कौशल कुमार के रहते···वह पहले से मौजूद था। राजेश्वर से हाथ मिलाते हुए नजर उसपर चली गयी। अजीब लपलपाती दृष्टि से उनकी तरफ देख रहा था। जैसे वे दोनों, हाथ न मिलाकर कोई बेहूदा हरकत कर रहे हों। माधवी के बदन में आग लग गयी। जानबूझकर वह जरूरत से ज्यादा देर तक राजेश्वर का हाथ पकड़े रही। यही नहीं, मधुर स्वर में यह भी कहा, "बहुत दिन बाद मुलाकात हुई आपसे !"

"हां, तरस गये !" राजेश्वर ने जुमले को फिल्मी जुंबिश देकर कहा।

कौशल कुमार का चेहरा पसीज गया और होंठ हल्के-हल्के कांपने लगे। माधवी डर गयी। क्या हुआ इसे ? हाथ झटके से छोड़कर वह पीछे हट गयी और सोफे पर बैठ गयी।

"अंगरक्षक को साथ लाने की क्या जरूरत थी ?" तभी राजेश्वर ने अदा के साथ कहा।

"क्या मतलब ?" चौंककर माधवी ने मुंह ऊपर उठाया।

राजेश्वर की चमकीली आंखें कौशल के ऊपर से होती हुई माधवी की आंखों से आ टकरायीं और वह ठठाकर हंस दिया। माधवी अप्रतिभ हो गयी और कौशल कुमार का मुंह तमतमा गया।

माधवी ने उसकी बात का प्रतिवाद करना चाहा, कुछ कहने को मुंह खोला

और समझा कि कुछ नहीं कहा जा सकता। चाहे जो कहे, बात बिगड़ेगी, बनेगी नहीं। कुछ न कह पाने की मजबूरी में उसके होंठ एक लाचार-सी मुस्कराहट में फैल गये जिसका मतलब शायद कौशल ने ठीक उल्टा लगाया क्योंकि माधवी ने देखा, उसका चेहरा और तमतमा उठा है।

राजेश्वर ने नजरें फिर एक से दूसरे पर घुमायीं और जोरदार ठहाका लगाया। हँसी की गूंज खत्म होने से पहले वह कौशल की तरफ मुड़ा और बोला, "कहो भई, तुम्हारी किताब का क्या हो रहा है?"

"पूरी होते ही आपको दे जाऊंगा," उसने कहा।

"मुझे क्यों?"

"कहा नहीं था, उपन्यास दो, हम छापेंगे।"

"हां-हां, उपन्यास। मैं दूसरी किताब की बात कर रहा था, वह जो संभावना प्रकाशन छाप रहा है। कितना पैसा मिला है तुम्हें, एक हजार?"

कौशल कुछ कहता, इससे पहले ही वह दांत से जबान पकड़कर फुसफुसाया, "च्च-च्च! इस वक्त नहीं कहना चाहिए था न!"

कौशल की आंखों से विक्षिप्त-सी लपट उठी और माधवी बेहद संकुचित होकर बोल पड़ी, "मुझे मालूम है।"

"क्या मालूम है?" राजेश्वर ने पूछा।

"यही कि संभावना प्रकाशन ने एक हजार रुपया दिया है।"

"ओह!" राजेश्वर ने 'ओह' को इतना अर्थपूर्ण बना दिया कि कौशल की बिलबिलाहट माधवी ने अपनी रंगों में महसूस की।

"आपको इसमें इतनी दिलचस्पी क्यों है?" तड़पकर कौशल ने कहा।

"होगी क्यों नहीं? किताब लेकर पहले तुम मेरे पास आये थे।"

"मना तो कर दिया आपने!"

"मुझे मालूम था माधवी जी रुपया दे चुकीं, किताब छपे बगैर नहीं रह सकती।"

"पर मैंने तो आपसे नहीं कहा!" संकोच से जमीन में गड़ते हुए माधवी ने कहा।

"तो मैंने कहा होगा!" कौशल कुमार ने कड़ुवे स्वर में कहा। "कहने में मुझे शर्म नहीं है। उधार लिये हैं, चोरी नहीं की। आरामकुर्सियों में जमे आप जैसे परजीवी क्या जानेंगे, हम लोगों के घरों के हालात क्या होते हैं। आपके मुकाबले तो सूद पर रुपया उठाने वाला महाजन भी समाजसेवक है। मुसीबत के वक्त काम तो आता है। आपकी तरह जोंक वह भी है पर वह काम आकर खून चूसता है; आप काम लेकर चूसते हैं। रुपया लेकर मैं किसीका एहसानमंद नहीं हो जाता। जब होगा ले जाकर उनके मुंह पर मार दूंगा कि लो अपना रुपया और

डूब मरो कहीं जाकर…"

कौशल कहता जा रहा था और माधवी लज्जा, संकोच और अपराध-बोध से मरी जा रही थी। अचकचाकर उसने राजेश्वर की तरफ निगाह घुमायी तो अचरज के साथ देखा कि उसके चेहरे पर अपार तृप्ति का भाव है। सिगार मुंह से लगाये वह छोटे-छोटे कश खींच रहा है और हर कश एक मजेदार नाटक देखने का आनंद प्रकट कर रहा है।

माधवी की पीठ पर जैसे किसीने सरमराकर चाबुक बरसा दिया।

यह कैसा उत्पीड़क आनंद है !

"मुझे रुपये वापस नहीं चाहिए," सहमा उसके मुंह से निकल गया।

राजेश्वर ने सिगार का एक लंबा कश खींचा, ढेर सारा धुआं बाहर उगला और हर शब्द को चखकर बोला, "चाहिए हो भी तो कौनसे मिले जा रहे हैं !"

एक जबरदस्त ठहाका कमरे में गूंजा और करीब-करीब उसी सांस में एक दोस्ताना आवाज उभरी, "भई बिहारी, चाय नहीं पिलायेंगे आज !"

"जरूर पिलायेंगे," बिहारी नाम के चपरासी ने खुश होकर कहा और कौशल झटके से उठ खड़ा हुआ।

"मेरा अपमान करने की हिम्मत कैसे हुई तुम्हारी !" तनकर उसने राजेश्वर से कहा।

"अपमान ?" राजेश्वर हँसा, "चाय पिलवा रहा हूं, इसमें अपमान क्या है ?"

"तुम्हें कैसे मालूम, मैं रुपया वापस नहीं करूंगा ?"

"करो तो ठीक, न करो तो ठीक। मेरे बाप का क्या जाता है ?" वह हँसा, "चाय बन रही है, पिओ। खामख्वाह नाराज क्यों होते हो ?"

"मुझे नहीं पीनी तुम्हारी चाय !" पैर पटकता कौशल कमरे से बाहर हो गया।

राजेश्वर ने उसे रोकने का प्रयास नहीं किया। मुंह से सिगार निकालकर धुआं फैलाता हुआ बोला, "आयेगा। लौटकर आयेगा। हमेशा के लिए जा सके, वैसा जीव नहीं है।"

माधवी सुन्न-निर्वाक् बैठी रही।

"आपको क्या हुआ ?" राजेश्वर ने कहा।

"चलूंगी," माधवी ने कहा और उठ खड़ी हुई।

"और चाय ?" सहज भाव से राजेश्वर ने पूछा।

और बिहारी चाय लिये आ पहुंचा।

"चाय पीकर चलूंगी," माधवी ने सहजता के नाटक को आगे बढ़ाया और वापस बैठ गयी। प्याले पर मुंह झुकाये चुस्कियां लेते हुए, वह बराबर महसूस कर

रही थी कि राजेश्वर की पैनी नजरें उसपर टिकी हुई हैं।

कुछ पल बेमुरव्वत चुप्पी रही। फिर राजेश्वर मिश्र ने कहा, "कुछ करना है तो डूबते हुए आदमी को बाकायदा कंधे पर ढोकर बाहर निकालिए। किनारे खड़े रहकर हाथ हिला-हिलाकर बाहर आने की हिदायतें देने से कुछ नहीं होगा।"

माधवी चौंकी, कहा कुछ नहीं।

"उसे पैसे देने बंद कीजिए," उसने कहा।

"दे कौन रहा है?" माधवी ने आंखें ऊपर उठाये बिना कहा।

"बनिए मत।"

"एक बार दिये थे। बस। अब नहीं दे रही।"

"जो आदमी काम-लिप्सा से मरा जा रहा हो, उसे पैसे देकर नहीं बहलाया जा सकता," उसने कहा।

अवमानना से थर-थर कांपती माधवी उठकर खड़ी हो गयी। "आप···!" उसके मुंह से इतना ही निकला।

"नाराज होने की जरूरत नहीं है।" राजेश्वर मिश्र ने कहा, "मैं कौशल कुमार नहीं हूं। और न आप 'गुनाहों के देवता' की नायिका हैं। वह जानवर किस बीमारी से मर रहा है, हम अच्छी तरह जानते हैं!" कहते-कहते उसका स्वर इतना क्रूर हो गया कि माधवी धक् से रह गयी।

"आपको उससे इतनी नफरत क्यों है?" अनायास उसने कहा।

"साला! लिखता खूब है और अब आप मिल गयी हैं, प्रेरणास्रोत!" राजेश्वर मिश्र ने कहा और कहते ही संभल गया। हो-हो करके हँसते हुए जोड़ा, "भई, हम लोग ठहरे प्रतिद्वंद्वी! इश्क और जंग में सब-कुछ जायज है।"

माधवी और वहां नहीं ठहर पायी। बोली, "चलूंगी।"

"चलिए, आपको स्कूटर दिलवा दें," कहकर राजेश्वर साथ हो लिया।

गली से बाहर निकलकर चौड़ी सड़क पर आये तो देखा दूसरी तरफ कौशल खड़ा है। माधवी को देखते ही उसकी तरफ लपका पर राजेश्वर को साथ देखकर ठिठक गया और नुक्कड़ पर सजी पान वाले की दूकान की तरफ मुड़ गया।

"साला, उल्लू का चरखा!" राजेश्वर ने जायका लेकर कहा तो माधवी समझ गयी, वह जानता था कौशल बाहर खड़ा होगा।

इस समय राजेश्वर का साथ उसे अत्यंत अप्रिय है, फिर भी कौशल के साथ से अधिक सह्य है। अकेली होती तो वह आकर घेर लेता और फिर वह होती और होते अबाध गति से छूटते उसके जहरबुझे शब्द-बाण!

उसने महसूस किया उसके सिर में भयंकर पीड़ा हो रही है। वह जल्दी से स्कूटर में चढ़ गयी और तय किया कि घर पहुंचते ही टेलीफोन का चोंगा उतारकर नीचे रख देगी।

पान वाले की दूकान से पलटकर कौशल कुमार ने देखा, कनपटियों को हाथों से दबाये, बद पंख फड़फड़ाती माधवी स्कूटर में उड़ी चली जा रही है। मुंह से धुआ उगलता राजेश्वर मिश्र किसी मायावी जंतु की तरह, शिकार पर हाथ साफ करके, मूंछें चूसता, अपनी खोह में वापस लौट रहा है। पान की जुगाली करता कौशल कुमार बछिया की तरह उदास खड़ा है। वह जानता है, उसके अदर कितना भी गुस्सा क्यों न उफने, वह शेर या आग उगलते ड्रैगन की तरह नहीं दीख सकता। उसका व्यक्तित्व उस मरियल भैंस जैसा है, जो ज्यादा-से-ज्यादा, मौका मिलने पर सींग मार सकती है, और रहेगा; किताबें चाहे वह जितनी लिख मारे।

उपन्यास अभी शुरू नहीं हुआ। सुबह नाम सूझ गया तो माधवी से कह दिया, पूरा होने वाला है। राजेश्वर से भी यही कहकर सौ रुपये एडवांस लिये हैं। बड़ा घाघ बनता है साला, उपन्यास पूरा होने का झांसा तो एकदम निगल गया। समझता क्या है हरामजादा अपने को, त्रिकालदर्शी? कैसे लार में लपेट-कर शब्द टपका रहा था, 'चाहिए हो तो भी कौनसे मिले जा रहे हैं!' और वह उसका बुलंद ठहाका! नीली नसों के मकड़जाल से बुने अपने हाथ को कौशल ने देखा। उठाकर घुसेड़ देता भीतर गले तक और कहता, ले अब लगा कहकहा। हिम्मत हो तो हँस अपने हाल पर। नहीं हटाऊंगा हाथ जब तक दम घुटकर आखें बाहर न आ जायें, तब मैं हँसूंगा। ठहाके पर ठहाका लगाकर। गला खखारकर उसने ठहाका लगाने को मुंह खोला और मिमियाकर रह गया।

जबान के नीचे ढेर सारा पित्त जमा हो गया था। आंतों में आग सुलग उठी थी। जब भी वह हँसने की तैयारी करता है, पेट से उठकर यही खट्टा पित्त मुंह में जमा हो जाता है। उसने पिच्च से सड़क पर थूक दिया। पान की पीक से सना बलगम का थक्का, खून के धब्बे-सा निखर आया। ऐसे ही खून की उल्टियां करता मर जाये यह कमबख्त राजेश्वर मिश्र। और कौशल सामने खड़ा ठहाके···काश वह उसकी तरह ठहाके लगा सकता। पर बदन में इतनी ताकत कहां है? उसका खून भी बहेगा तो सफेद; यह लाली भी साली पान की अमानत है! क्या है उसके अंदर नफरत के सिवाय जो उसे ताकत दे सके। जितने रुपयों के ये लोग फल-फूट खा जाते हैं, उतने में तो उसने महीने-भर की रोटी-दाल का इंतजाम किया है। अब वापस पाने के लिए ऐसे मरे जा रहे हैं जैसे···चाहिए हो भी तो कौनसे मिले जा रहे हैं; साला, बदजात! तू कैसे जानता है, वापस नहीं दूंगा!

उसका रोम-रोम घृणा से सिकुड़ गया। जो मैं कहता हूं, उसका सही-सही अर्थ उस रंडी की औलाद तक कैसे पहुंच जाता है। क्यों दूं मैं किसीका रुपया वापस? चोरों के समाज में अकेला मैं साहूकार क्यों बना रहूं? कौन है हमारे भ्रष्ट समाज में जो चोरी नहीं करता, बेईमान नहीं है, दूसरों को झांसा देकर पैसा नहीं बनाता। यह माधवी जी के आदरणीय पतिदेव! कहां से आते है।

इतना रुपया इनके पास ? व्यापार चलाते हैं तो क्या विना धोखाधड़ी किये। और फिर यह जानकर कि उनके पास है और मेरे पास नहीं है, साले खुद तो मुझे देने आयेंगे नहीं। जोर-जवरदस्ती करके जो छीन लूंगा, वही मेरा होगा न। मुझे अधिकार है छीनने का। जिंदगी में कभी न रुपया मिला, न प्यार। सच तो यह है; यह साला सच भी उसके अंदर से वाहर आये विना नहीं मानता; आदमी का मूल्यांकन इससे नहीं होता कि उसे जीवन में धन-दौलत कितनी मिली वल्कि इससे कि प्यार कितना मिला। मुझे कभी नहीं मिला। जव मिली, नफरत, हिकारत, उदासीनता। मुझे अधिकार है कि अपने हिस्से आयी नफरत दुनिया में वांट दूं। मूल-दर-सूद। पास में जो होगा वही तो औरों को दे सकता है आदमी।

मैं सबसे कहता फिरता हूं, मेरी मां वहुत वदसूरत थी। काले आवनूसी चेहरे पर गुदे चेचक के गहरे दाग। इसीसे मैं उसे प्यार नहीं कर सका। सच यह है कि प्यार उसने कभी मुझसे नहीं किया। तेरह साल का था तभी दगा दे गयी वरना···पर तेरह साल काफी हैं उस ममत्वहीन मां की कर्त्तव्य-परायणता की चोट याद रखने के लिए। काश मेरे पैदा होते ही वह मर गयी होती !

जिसे मां ने प्यार नहीं दिया, उसे और साली कोई औरत क्या देती ! वह वदकिस्मत सलमा ··खूव काइयां निकली। उन्नीस सौ सैंतालीस के दंगों में जैसे ही कौशल को अपने साथियों से पता चला था कि हिंदू नौजवानों की भीड़ उसके घर धावा वोलने वाली है, वह भागकर वहां जा पहुंचा था और सलमा को खवर कर दी थी। भीड़ के आने से पहले वह भाग निकली थी। भीड़ में वह भी शामिल था और किसीको उस जैसे पिद्दी पर ऐसी दिलेरी का शुवहा नहीं हुआ था। सलमा एक वूढ़े समाज-सेवक के घर जा छिपी थी। कुछ दिन वाद वह उससे मिला था। सोचा था, जान वचाने की खातिर वह उसकी इस कदर एहसानमंद होगी कि···पर वाकई वह वहुत काइयां निकली।

"आपने जान वख्शी है, आपकी एहसानमंद हूं, जो हुक्म देंगे वजा लाऊंगी पर इश्क···वह हर किसीसे नहीं होता।"

हर किसीसे ! मन हुआ था गुप्ती के एक वार में सीना चाक कर दे पर···

वह ठहरा भैंस प्रकृति का आदमी। खौफनाक से खौफनाक लम्हे में भी उसकी फितरत शेर का रुख इख्तियार नहीं कर सकती।

उसने चुपचाप जाकर साथियों को वतला दिया था, सलमा कहां छिपी वैठी है और···याद करके उसके रोंगटे खड़े हो गये। सलमा···! इससे तो कौशल ने अपनी गुप्ती से उसका सीना चाक कर दिया होता ! उन लोगों ने···मांस का वह लोथड़ा···धज्जी-धज्जी औरत !

दृश्य आंखों के सामने खुलता गया तो खड़े रहना मुश्किल हो गया। वह धम् से वहीं फुटपाथ पर वैठ गया और मुंह आगे करके सड़क पर क़ै करने लगा।

नौ

सुबह नौ बजे से पहले माधवी ने राकेश से कहा, "मेरा फोन आये तो कह देना, घर पर नहीं हूं।"

"किसका आयेगा, कौशल कुमार का ?"

"शायद।"

"किसी और का हो तब भी मना कर दूं या सिर्फ कौशल कुमार को ?" कहते-कहते उसके स्वर में व्यंग्य उभर आया और उसके उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वह टेलीफोन समेत गुसलखाने में जा घुसा।

इससे पहले कि दरवाजा बंद होता, माधवी उसके पीछे अंदर आ गयी। राकेश शीशे के सामने खड़ा हजामत बना रहा था।

"पूछोगे नहीं क्या हुआ ?" माधवी ने शीशे में उससे नजरें मिलाकर पूछा।

"क्यों, बिना पूछे नहीं बतलाओगी ?" राकेश ने कहा। साबुन के झाग के पीछे छिपे चेहरे के बीच से आंखें कुछ ज्यादा ही तीखी रोशनी लिये चमक रही थीं। माधवी ने नजरें झुका लीं, अपनी दुबली-पतली देह उसके लंबे शरीर के पीछे छिपा ली। फिर कहा, "किताब के लिए जो तीन हजार रुपये मुझसे लिये थे, घर में खर्च कर दिये। अब किताब प्रकाशक के पैसों से छप रही है पर उससे भी रॉयल्टी के बजाय एडवांस पैसा ले लिया है। हमारा पैसा वापस मिलने की उम्मीद नहीं है।"

"पहले थी ?" राकेश ने पूछा।

"कुछ तो थी।"

"मुझे नहीं थी।"

"कहता है, दूसरी किताब की रॉयल्टी में से पैसा चुका देगा। तुम क्या सोचते हो, दे सकेगा ?"

"नहीं।"

माधवी चुपचाप खड़ी रही।

राकेश हजामत बनाता रहा।

"रुपयों को लेकर तुम परेशान हो क्या ?" कुछ ठहरकर माधवी ने कहा।

"मैं क्यों हूंगा ? मैंने तो दिये नहीं।"

"दिये नहीं, पर थे तो तुम्हारे।"

"नहीं, तुम्हारे थे।"

"मेरे-तुम्हारे अलग थोड़ा ही है..." कहकर माधवी उसकी पीठ से सटकर

खड़ी हो गयी। अपना मुंह उसके कंधे में छुपाकर बोली, "मेरी मदद करो।"

"क्या ?"

"उससे कह दो, मुझे फोन न करे और न मुझे खत लिखे। तुम्हें पसंद नहीं है। प्लीज !"

राकेश निस्पंद खड़ा रहा। कुछ क्षण ऐसे ही बीते। फिर उसने कहा, "और तुम्हारा उपन्यास ? पूरा हो गया ?"

उपन्यास ! माधवी के शरीर में करंट दौड़ गया। पूरा कहां हुआ। कौशल ने कहा था क्लाइमैक्स पर पहुंच रहा है, यही तो वक्त है जोखिम का; बने या बनता-बनता बिगड़ जाये !

उसकी देह की सिहरन को राकेश ने महसूस किया और हँस पड़ा। राजेश्वर मिश्र की तरह ठहाका लगाकर नहीं; धीमे से, इतने धीमे कि नकार की तरह वह हँसी माधवी के पूरे शरीर को हिला गयी। मन हुआ कोई आदिम शक्ति उसे खींच-कर राकेश से अलग कर दे।

राकेश ने खुद बांह पीछे करके उसे हटा दिया।

"बाहर जाओ," उसने कहा, "मुझे नहाना है।"

"प्लीज···!" बंद होंठों से आर्तनाद की तरह एक शब्द फूटते-फूटते फुस-फुसाहट में बदल गया। प्लीज क्या, वह खुद नहीं जानती थी। शायद राकेश जान गया।

"फोन लेती जाओ," उसने कहा, "चोंगा नीचे रख देना। आज-भर निर्णय नहीं लेना होगा।"

एक हाथ में फोन का यंत्र और दूसरे हाथ में अलग उसका चोंगा पकड़े वह बाहर निकल आयी। लगा राकेश ने उसके सिर पर हाथ रख दिया है। बारह बजे तक जमकर उपन्यास लिखा। कापी बंद करके उठी तो दिलोदिमाग रुई के फाये से हल्के हो रहे थे। फोन से अलग लावारिस पड़े चोंगे को देखा तो हँसी आ गयी। उठाकर वापस रख दिया और···रखते ही वह बज उठा।

कुछ क्षण वह झिझकी फिर आदत ने जोर मारा और चोंगा उसके हाथ में था।

मां के घर से छोटी बहिन ममता बोल रही थी।

"यह कौशल कुमार कौन है ?" छूटते ही उसने कहा।

"क्यों, क्या हुआ ?"

आत्महत्या तो नहीं कर ली !

"सुबह से दस बार फोन कर चुका है। कहता है, तुम्हारा फोन खराब है···"

"वहां फोन आया था ?" गहरे आश्चर्य से माधवी ने पूछा।

"एक नहीं, दस बार। कह दिया यहां नहीं हैं, आने का कोई इरादा नहीं है

और फोन खराब है तो हमारे मिलाने से ठीक नही हो जायेगा पर अजीब वेहूदा आदमी है, बात समझ मे ही नही आती। कौन है यह नामाकूल ?"

"है एक पागल।"

"तुम्हारा ?"

"ममता !"

"आवाज में जरा कशिश नही है। मैं नही समझती, दीवाना बनाकर रखने लायक है।"

"उस तरह नही। पागल लेखक है।"

"तुमने भी, जीजी, यह लिखने का अच्छा रोग पाल रखा है।"

"छोड़। यह बतला, मां कैसी है ?"

"ठीक नही हैं।"

"आज दर्द उठा था ?"

"हा, तभी तो मैं आयी। उसपर यह फोन···"

"जानती हूं। अब नही आयेगा।"

उसकी मा हृदय रोग से पीडित हैं। जब-तब दर्द उठता है। बार-बार फोन की कर्कश घटी का वजना कतई बर्दाश्त नही कर सकतो। उफ, यह वेशर्म कौशल ! वहां का नंबर मिलाने की हिम्मत कैसे हुई ! सामने होता तो दो झापड़ मुह पर रसीद करती अभी !

फोन काटते ही दुबारा वजा। इस बार कौशल था।

"मेरी मा के घर फोन क्यों किया ?" गुस्से से फटकर उसने कहा।

"आपका खराब था।"

"तो ? आपकी हिम्मत कैसे हुई वहां फोन करने की !"

"इसमे क्या हो गया ? मैंने सोचा, हो सकता है आप वहा हो।"

"क्यों सोचा आपने ! मेरे पीछे-पीछे फोन मिलाते फिरने का हक क्या है आपको !"

"हुआ क्या ?"

"आप जासूस लगे हैं मेरे पीछे ? मेरी मा को दिल की बीमारी है। बार-बार उन्हें परेशान करने का मतलब जानते है ! ऐसी क्या मुसीबत आ गयी थी ?"

"मैंने तो यह कहने को फोन किया था कि राजेश्वर मिश्र की बातों का विश्वास मत कीजिएगा। आपका रुपया मैं जरूर लौटाऊंगा।"

"तो ? एक दिन इंतजार नही कर सकते थे। आज दे रहे हैं रुपया ?"

"नही, आज नही, पर दूगा जरूर।"

"जब आज नही दे रहे तो दस बार वहां फोन करने की क्या जरूरत थी ?"

"दस बार ? मैंने तो सिर्फ दो बार किया था।"

हो सकता है, ममता व्यंजना में 'दस' कह गयी हो।

"एक वार भी क्यों किया," माधवी ने कहा।

"ऐसा फोन करने में हर्ज क्या है!"

"हर्ज है। वहुत हर्ज है। मां वीमार रहती हैं। उन्हें जव-तव फोन करके परेशान नहीं किया जा सकता। आगे से याद रखिएगा, आप मर रहे हों तव भी वहां फोन नहीं करेंगे, समझे!"

"ठीक है।"

"और रोज-रोज मुझे फोन करने की भी जरूरत नहीं है," कहकर उसने चोंगा फोन पर पटक दिया।

फोन फौरन दुवारा वजा।

कौशल था।

"राजेश्वर मिश्र ने मेरे वारे में आपसे क्या कहा है?" उसने पूछा।

"उससे इसका क्या तअल्लुक है?"

"जरूर कुछ कहा है। तभी आप इतनी सख्त हो रही हैं।"

"उन्होंने कुछ नहीं कहा। आपके वारे में वात ही नहीं हुई।"

"मैं नहीं मान सकता। आप एकदम से इतना वदल कैसे गयीं?"

"वदली नहीं। हमेशा से मैं आपसे यही कहती रही हूं। आज मां को परेशान करके आपने जो मेरा नुकसान किया है..."

"कह तो रहा हूं, गलती हो गयी। और क्या पैर छूकर माफी मांगूं?"

"नहीं," घवराकर माधवी ने कहा, "फोन वंद कर दीजिए।"

"वतलाएंगी नहीं, राजेश्वर मिश्र ने क्या कहा?"

"ओफ्फोह, क्या ईडियट आदमी है!" उसके मुंह से निकला, "उन्होंने कुछ नहीं कहा। मैं कह रही हूं, रोज-रोज फोन करके मुझे तंग मत कीजिए।"

तभी दरवाजे की घंटी घनघना उठी।

"वंद कर रही हूं," उसने कहा, "दुवारा मत कीजिएगा।"

"कभी न करूं?"

"नहीं।"

"तो जाऊं?"

"हां, रखिए भी फोन।"

वह चाहती थी कि फोन कौशल ही काटे ताकि दुवारा मिलाने की गुंजाइश कम हो पर वह था कि...

"अच्छा, जा रहा हूं..." आवाज आयी।

"अरे वावा, जाइए भी," उसने खीजकर कहा और इंतजार करना छोड़, फोन काटकर चोंगा अलग रख दिया।

तब तक हरिचरण दरवाजा खोल चुका था और बच्चे अंदर आ गये थे।

"रिसीवर अलग क्यों डाल रखा है?" भीतर घुसते ही आलोक ने कहा और चोगा वापस फोन पर टिका दिया। फौरन घंटी टनटनायी और चोंगा माधवी ने अपने हाथ में पाया।

कान से लगा लिया और चुपचाप उधर से आ रही 'हलो-हलो' की बिल्लाहट सुनती रही। कुछ देर बाद फोन कट गया।

उसने आलोक-समीर को खाने की मेज की तरफ धकेला और फोन दूसरे कमरे में ले जाकर चोगा यंत्र से अलग करके रख दिया।

बच्चों की थालियों में खाना परोसकर स्वयं खाना शुरू किया ही था कि देखा, सामने कौशल कुमार खड़ा है। रोटी का कौर हाथ में लिये वह भौंचक बैठी रही।

कौशल बैठक के बीचोबीच ठीक उसके सामने खड़ा रहा।

आलोक ने आंख उठाकर देखा और दबी जबान में बोला, "आ गया ठीक खाने के वक्त!"

समीर खिलखिलाकर हंस पड़ा।

माधवी उठकर खड़ी हो गयी। कौशल के पास आकर, आवाज एकदम धीमी करके बोली, "यहां क्यों आये?"

"विदा लेने आया हू," उसने कहा।

"विदा?"

"हां, जा रहा हू।"

"तो? मुझसे विदा लेने की क्या जरूरत पड़ गयी?"

"जा रहा हू हमेशा के लिए। मेरा कोई नहीं है, किसके लिए जिऊं? एक आप थीं···"

"मेरा-आपका कोई संबंध नही है," बात काटकर माधवी ने कहा, "पर आपके बीवी-बच्चे हैं···"

"उनसे मेरा कोई संवाद नहीं है। मैं तो बस आपके लिए जी रहा हू। जब आप कोई संबंध नहीं रखना चाहतीं तो···चलूगा···" उसका स्वर रुंध गया, "जाने से पहले आखिरी इल्तिजा करने आया था कि आप···" रो देने की प्रक्रिया में उसके होंठ बुरी तरह कांप उठे। "आप···" नकियाकर उसने कहा, "राजेश्वर मिश्र की बातों में न आयें। मैंने जानबूझकर आपका रुपया नहीं मारा। मेरा-आपका और कोई संबंध हो न हो, यह तो है ही कि मैं आपका कर्जदार हूं···" उसने सुबकी भरी, फिर कहा, "मेरे मरने के बाद आप मेरे बारे में यही सोचती रहीं कि मैं बेईमान था, धोखेबाज था, तो···" वह सुबककर चुप हो गया।

माधवी शर्म से लाल हो गयी। दोनों बच्चे यह नाटक देख रहे हैं। क्या फिल्मी दृश्य है !

"देखिए," उसने कहा, "आप अपने घर जाइए। यहां बैठने लायक हालत में आप नहीं हैं।"

"घर जाऊं ?" रंगमंचीय प्रश्नसूचक लगा, "मुझे आपके पास बैठकर रोने का भी अधिकार नहीं है ?"

"रोने के लिए आदमी का अपना घर ही ठीक रहता है !" माधवी ने कहा।

"अपना घर !" उसका स्वर मंजे हुए अभिनेता की तरह व्यंग्य से विषाद तक की मंजिल तय कर गया, "कहां है मेरा अपना घर ? घर वालों के लिए मैं केवल पैसा कमाने की मशीन हूं।"

वह भी खासी निकम्मी ! माधवी के मन में बजा।

नहीं, मैं हँसना नहीं चाहती। हँसने से मन बहल जाता है, इस वक्त मेरा एक ही मकसद है, इस आदमी को घर से निकाल बाहर करना।

"मेरे दुख में वे कब शरीक हुए ? एक कलाकार की पीड़ा कब उन्होंने समझी ?" कौशल रंग में था, "मैं हूं ही बदकिस्मत। जब प्यार मिला, लिया नहीं। जब मांगा, मिला नहीं !"

"यह तो आम बात है," माधवी ने कहा तो कौशल ने हाथ के सक्षम इशारे से सबकुछ पोंछ दिया।

"आम बात नहीं है !" उसने कहा, "आप जानती हैं मुझे कितनी औरतें प्यार कर चुकीं ?"

"नहीं। जानना चाहती भी नहीं।"

"एक मुसलमान लड़की थी, सलमा। उन्नीस सौ सैंतालीस के दंगों में मैंने उसकी जान बचायी थी। बेचारी ने न जाने कितनी बार मोहब्बत का इजहार किया पर मैं बेवकूफ-बदकिस्मत मन में यही गम पाले रहा कि मैंने उसकी जान बचाकर उसपर जो एहसान किया है, उसीका बदला चुकाने के लिए मेरे सामने समर्पण करना चाहती है। मैंने उसका प्यार ठुकरा दिया और आखिर···" उसने तकनीकी दृष्टि से निर्दोष अंतराल दिया और भयाकुल आवाज में असली जुमले पर आया, "आखिर उसने खुदकुशी कर ली !" फिर दार्शनिक अंदाज में जोड़ा, "हारा हुआ आदमी और कर भी क्या सकता है !"

"पर आप खुदकुशी नहीं कर सकते," माधवी ने सिर हिलाकर कहा।

"क्यों ?" उसने उत्तेजित होकर कहा, "मैं क्यों नहीं कर सकता ?"

माधवी देर तक सिर हिलाती रही, फिर उससे भी अधिक दार्शनिक मुद्रा में बोली, "आप जैनेंद्र को गुरु मानते हैं और उनका कहना है, जो आदमी सब-कुछ सहकर, जीने की इच्छा न रहते हुए भी, जीता चला जाये, वही द्विज है।"

पल-भर को कौशल निरुत्तर हुआ। माधवी ने खुश होकर सोचा, अच्छी पटकनी दी।

कौशल बहुत जल्दी संभल गया। संभल क्या, बिफर गया।

"ये महान् आदमियों की बातें हैं। मैं अदना इन्सान हूं। महान् बनना नहीं चाहता। जो आदमी भावना की गहराइयों में डूब नहीं सकता, प्यार में सब-कुछ भूलकर दीवाना नहीं हो सकता, हर समय दर्शन और युक्ति की तराजू पर अपने को तोलता रहता है, उसे मैं महान् मानता भी नहीं।"

वाह...माधवी दाद दिये बगैर न रह सकी। किस खूबसूरती से चित को पट बनाया है!

"यानी महान् वे नहीं, आप हैं," उसने कहा, "और महान् आदमी खुदकुशी भला क्यों करे? बात खत्म।"

"क्यों नहीं करे?" कौशल ने जोर देकर कहा, "मुझे खुदकुशी करने का पूरा हक है और मैं खुदकुशी करूंगा!"

अब इसका जवाब तो एक ही है, दुरुस्त है, शौक फरमाइए। पर माधवी ने यह न कहकर कुछ और कहा, "आप घर जाइए।"

"घर जाइए। घर जाइए! घर जाइए!!" कौशल ने नाटकीय पुनरावृत्ति की तो आवाज किकियाकर टूट गयी।

ऐसी भूमिकाओं के लिए आवाज भारी होनी चाहिए, माधवी के मन में बजा।

कौशल ने बिखरे तार समेटे और रोने का पुट देकर बोला, "मुझे रोने का भी अधिकार नहीं है। जिसे देखे बिना जिंदा नहीं रह सकता, वही मुझसे कह रही है, घर जाइए। मैं घर नहीं जाना चाहता। मैं मरना चाहता हूं।"

अच्छी जबरदस्ती है!

"और मरने से पहले आपसे केवल इतनी अनुकंपा चाहता हूं कि मेरे साथ अन्याय न करें," वह कहता गया, गला रुंध गया पर शब्द निकलते रहे।

"जिंदगी में कभी किसीने मेरे साथ न्याय नहीं किया। आप करेंगी, यही सोचकर..." सहसा वह हिचकियां बांधकर रो पड़ा। उसने अपने बिगड़ते-बिसूरते चेहरे को छिपाने की कोशिश नहीं की, जेब से रुमाल निकालकर आंखों पर नहीं रखा, आवाज को अंदर नहीं घोंटा, कालीन के बीचोबीच खड़ा बेपर्दा रोता रहा।

माधवी ने देखा, मेज पर से बरतन उठाता हरिचरण ठिठककर खड़ा हो गया है और रोते-कलपते कौशल को घूर रहा है। दौड़कर वह उन दोनों के बीच जा खड़ी हुई पर कोई फायदा नहीं हुआ। कौशल का कद उससे लंबा निकला। उसके सिर के ऊपर उसका सुबकता-सिनकता चेहरा हरिचरण के सामने लटका रहा।

"प्लीज, बैठ जाइए," करीब-करीब धकेलकर उसने उसे कुर्सी में गिरा दिया,

"अपने को संभालिए। यह सब कहने की जरूरत नहीं है।"

"जरूरत है! मैं तब तक खुदकुशी नहीं कर सकता जब तक मुझे यह दिलासा न मिल जाये कि मरने के बाद मेरे साथ नाइन्साफी नहीं होगी।"

"ठीक है, तब मत कीजिए," उसने कहा, "और अब तब बोलिएगा जब अपने पर काबू पा लें।"

कुछ देर चुप्पी रही। कौशल ने नाक-मुंह-आंखें पोंछ डालीं। फिर नकियाकर बोला, "तो क्या करूं?"

"जो लोग खुदकुशी नहीं करते, वे क्या करते हैं?" माधवी ने कहा और हरिचरण को वहां से टला देख, प्रकृतिस्थ हो हँस दी।

"आप हंस रही हैं!" कौशल चीखा।

"नहीं तो।"

"मेरी मौत आपके लिए मजाक की चीज है?"

"नहीं, नहीं।"

"यह देखिए," उसने जेब से पुड़िया निकालकर उसके सामने कर दी, "चाय मंगवाइए। आपके सामने उसमें घोलकर पी लूंगा।"

अब माधवी डर गयी। पागल आदमी है, क्या भरोसा, पी ही ले।

"लाइए, मुझे दीजिए," आगे बढ़कर उसने कहा।

"नहीं, मरने दीजिए मुझे!" उसने पुड़िया कसकर मुट्ठी में बंद कर ली। माधवी चाहती थी कहे, मरना है तो बाहर जाकर मरिए; मेरे घर बैठकर नाटक खेलने की जरूरत नहीं है पर··· कहा, "बेकार की बात मत कीजिए। पुड़िया मुझे दे दीजिए।"

"मेरे मरने से आपको फर्क पड़ता है?" उसने पूछा।

"हां," उसने कहा।

"मर गया तो आपको बुरा लगेगा?"

"हां।"

"मेरी भी कोई सार्थकता है, अस्तित्व है?"

"हां।"

क्या बेहूदा संवाद है। मंच पर होता तो दर्शक कब की सीटियां बजा देते।

"लाइए," कोफ्त से भरकर उसने कहा, "पुड़िया मुझे दे दीजिए।"

"रहने दीजिए। यकीन दिलाता हूं, खाऊंगा नहीं। पास रहेगी तो सुकून मिलेगा, कोई है जिसके कहने पर जहर नहीं खा रहा; जेब में है तब भी नहीं खा रहा," उसने ताजा धुले तौलिये की तरह टपककर कहा।

उल्लू का चरखा! "अब घर जाइए," माधवी ने कहा।

"चला जाऊंगा, तबीयत संभल तो जाये। जहर आपने खाने नहीं दिया, अब

चाय तो पिलवा दीजिए।"

गहरी अनिच्छा के बावजूद वह रसोईघर में चली गयी। पीछे-पीछे आलोक, समीर भी आये।

"ये यहीं बैठे रहेंगे?" झल्लाकर आलोक ने पूछा।

"हां," उसने कहा, "जब तक मरेंगे नहीं, यहीं बैठे रहेंगे।"

बच्चों ने एक-दूसरे की तरफ देखा। "पता नहीं कब मरेंगे!" लंबी सांस भरकर समीर ने कहा।

माधवी को दुपहर खाने के बाद सोने की आदत है। बचपन से। न सोये तो दिमाग भन्ना उठता है। इसके बैठे आज हो लिया सोना! मन हो रहा है, थोड़ा जहर चाय में घोलकर पिला दे। उसका खुदकुशी का चाव पूरा हो जायेगा, अपनी जान बचेगी। पर उफ, शिष्ट समाज के यह दमघोटू कायदे। बिन बुलाये मेहमान को मारा भी नहीं जा सकता!

पानी में उबाल आने से पहले ही उसने उसमें पत्ती-दूध-शक्कर मिला दी और प्याले में उलटाकर उसे थमा दी।

"आप···?" उसने पूछा।

"नहीं।"

"क्यों?"

"इच्छा नहीं है।"

"साथ देने को···"

"कह दिया न, इच्छा नहीं है।"

"अच्छा···" वह आराम से चुस्कियां लेने लगा। और माधवी उसे और अपने को कोसने लगी।

रोज-रोज कहती है न, हर आदमी को हक है, अपनी जिंदगी और मौत के बीच चुनाव खुद करे। खुदकुशी करना चाहे तो शौक से करे। फिर कह क्यों न दिया इस मगरमच्छी आंसू बहाते अदाकार से! खुदकुशी करेगा और यह आरामप्रेमी! कितने मजे से बैठा चाय सुड़क रहा है जैसे कुछ हुआ ही नहीं और माधवी है कि आंखें नींद से मुंदी जा रही हैं, सिर दर्द से फट रहा है।

"उपन्यास आगे लिखा?" सहसा कौशल कुमार ने पूछा, सहज भाव से।

झनककर माधवी की तंद्रा टूट गयी।

"हां," उसने कहा।

"दिखलाएंगी?"

"जरूर," कहकर वह अंदर कापी लाने चली गयी। अब वह पूरी तरह जग चुकी थी। दरअसल नींद आती है खाना खाने के तुरंत बाद। अब वक्त निकल चुका!

माधवी के घर से बस-स्टॉप तक आते-आते कौशल ठहाका लगा ही गया। कल से रुका पड़ा था कम्बख्त पेट में। आज का दिन...यादगार दिन...उसने जेब से पुड़िया निकाल ली। क्षण-भर टक लगाकर उसे ताका, कांपते हाथों से खोला, और मुंह खोलकर फांक गया ! चेहरा रुआंसा हो गया। जबान घुमाकर उसने ओंठ विचकाये और मिमियाकर दूसरा ठहाका बाहर फेंका।

वाह, देखी एक पुड़िया चूरन की करामात !

जहर का नाम सुनकर कैसे रूह फना हो गयी थी माधवी जी की ! क्यों न होती ! अपनी बैठक के उम्दा कालीन पर पसरी लावारिस लाश को कौन धनाढ्य और सुसंस्कृत महिला बर्दाश्त कर सकती है ? काश कि उस वक्त घर पर अकेली रही होती ! दौड़कर उसके पैर पकड़ लेता और सिर घुटनों पर मार-मारकर मजबूर कर देता कि कंधों से थामकर उसे ऊपर उठाये और...आत्महत्या करने को तत्पर आदमी के भावावेश का क्या कहना ! मर मिटने की व्याकुलता में उसे खींचकर बांहों में भर लेता तो कौन दोष दे सकता था ? पर बच्चों के घर पर रहते हुए...इतना वह बखूबी जानता है कि कुछ खास क्षणों में माधवी को बिल्कुल नहीं घेरा जा सकता। गलत वक्त पर उसके घर जा पहुंचा। पर करता क्या। सारी सुबह उसका फोन नहीं मिला। बड़ी मुश्किल से मां का नम्बर पता करके वहां फोन किया। सोचा था, वहां हुई तो लौटते हुए त्रिवेणी आ जायेगी। पर... तीन बार फोन क्या कर लिया, इस कदर हल्ला मच गया जैसे अश्लील हरकत कर बैठा हो। घर की मालकिन को दिल की बीमारी है, इसलिए वहां फोन नहीं किया जा सकता। वाह, साब, वाह ! क्या तर्क है। दिल की बीमारी उसके पड़ोस में रहने वाले चटर्जी को भी है। जब दर्द उठता है, सड़क के किनारे बैठ जाता है, जेब से बोतल निकालकर गोली लेता है और जबान के नीचे दबा देता है। बीस-पच्चीस मिनट सुस्ता लेता है और चल देता है दुबारा काम पर। बिजली का मिस्त्री है, बीस-तीस रुपया रोज कमा लेता है। जिस दिन नागा उस दिन फाका। साइकिल पर मारा-मारा फिरता है, आज तक नहीं सुना कि ट्रक ने भोंपू जोर से बजा दिया इसलिए चटर्जी को दिल का दौरा पड़ गया !

इन बड़े आदमियों के चोंचले भी बस ! उसने एक भद्दी गाली दी।

हां, एक बात है। माधवी वाकई नहीं चाहती कि वहां फोन किया जाये। घर से चलते-चलते याद दिला दिया था कि कितना भी जरूरी काम क्यों न हो वहां फोन नहीं करेगा। और यह तब था जब उपन्यास की चर्चा के बाद काफी पसीज चुकी थी। उसने फौरन 'हुक्म की तामील होगी' वाले अंदाज में उसकी बात मान ली थी और आगे के लिए नोट कर लिया था कि मौके पर काम आने वाला हथियार है, संभालकर रख लेना चाहिए। दिल की बीमारी का तो बहाना है, होगा यह कि मां को माधवी का गैर मर्दों से मिलना-जुलना पसंद नहीं। लगता है,

माधवी मां की भावनाओं की खूब चिंता करती है। ठीक है, कौशल ध्यान रखेगा उसकी चिंता का, खूब रखेगा !

चूरन की पुड़िया बार-बार काम नहीं आयेगी, पर यह हथियार···

उसके दिल को कुछ बुरी तरह कचोट गया। सच एक बार फिर उसपर जाहिर हो गया। उसके मौत के खयाल से माधवी उतनी उत्तेजित नहीं हुई थी जितनी अपनी मा की छोटी-सी तकलीफ को लेकर। पुड़िया देखकर डर जरूर गयी थी पर···

वह फिर हँसा पर हँसी में विषाद था। वह भयभीत उसकी मृत्यु से नहीं, उस विकट परिस्थिति से थी जो अचानक उसके घर आ खड़ी हुई थी। सजे-धजे घर के कीमती कालीन पर बिछी लाश···

नहीं-नहीं-नहीं ! गलत है ! जोर देकर उसने खुद से कहा। माधवी उसकी मौत से खौफ खाये हुए थी। उसकी मौत से उसे फर्क पड़ता है, जरूर पड़ता है ! पूछा था साफ-साफ कौशल ने। हां, कहा था उसने।

हां, माधवी को उसकी जरूरत है। कौशल उसकी साहित्य-रचना के लिए अनिवार्य है और साहित्य-रचना माधवी के जीवन के लिए। क्यू-ई-डी ! कौशल ने कोशिश करके हँसना चाहा पर कामयाब नहीं हुआ। एक बोतल दारू मिल जाती ! खूब गहरा नशा हो तभी आदमी कायदे की बात सोच सकता है वरना बरसों से चले आ रहे तर्क, मान्यताएं, पूर्वग्रह चैन नहीं लेने देते।

कल जो सौ रुपये राजेश्वर मिश्र से झटके थे, उनमें से बीस अब भी जेब में पड़े हैं। उसकी पत्नी बेचारी बड़ी बेचारी है। अस्सी रुपये देखकर इतनी खुश हो गयी ···सौ देने वाकई बेकार रहते। तो चलें जमना पार, दो बोतल कच्ची की खरीदें और उतार लें हलक में। बीस रुपये में इतना गाढ़ा नशा हो जाये कि मन में शुबहा न रहे कि माधवी···और क्या चाहिए ! क्या स्वाद है खयाल में। विलायती शराब-सा। कच्ची पियो और स्वाद लो स्कॉच ह्विस्की का ! वाह ! तो चलो, लपक लो सामने से आती बस !

राजेश्वर मिश्र कहता है, 'औरत का प्यार पाना कौन मुश्किल काम है। औरत का अपने से प्यार कुछ ऐसा जालिम होता है कि आदमी के मुंह से अपनी तारीफ सुनकर पागल हो जाती है। पता चलना भर चाहिए कि फलां आदमी को उससे इश्क है, औरत उसकी आंखों में अपनी सूरत देखने को मर मिटेगी। अजी औरतों को तो आइनों से इश्क हो जाता है, आदमी तो फिर भी एक अदद जान रखता है।'

इश्क करना मैं भी जानता हूं, कौशल ने कौल भरा। दीवानगी के वह-वह कारनामे दिखला सकता हूं कि···दृश्य संयोजन में कौशल कुमार को कौन मात दे सकता है। उपन्यास के लिए ऐसे अनूठे दृश्यों की रचना कर सकता है तो जीवन में ···कलाकार बढ़िया हो, कला के प्रति समर्पण पूर्ण और निर्दोष हो तो जीवन क्या

चीज है जो उसकी बाजी खेली न जा सके।

राजेश्वर कहता है, लेखिका की साधना और भी आसान है। उसका अहम् दुमंजिला होता है। दूसरी मंजिल की सीढ़ी पर ताला लटका भी दे तो पहली मंजिल में घुसपैठ की जा सकती है। सौंदर्य की प्रशंसा करो, व्यक्तित्व का गुण-गान गाओ, अक्ल की तारीफ करो, रचना-कौशल पर मर-मर जाओ, कुछ तो रंग दिखलायेगा। एक बात है, राजेश्वर मिश्र कितना भी बड़ा चुगद क्यों न हो, दुनियादारी में उसका सानी नहीं।

"हम तो आपके दीवाने हैं, आपके अफसानों के दीवाने हैं," कौशल अपनी आवाज में आशिकाना नमक घोलकर बुदबुदाया। बस एक बार पहुंच जाये कच्ची के ठेकेदारों की बस्ती में। एक बोतल आग कलेजे में उतार ले तो नमक पिघल-पिघलकर बहेगा, बोलेगा, 'सूरदास ने कृष्ण का चित्र मन में बसाकर आंखें फोड़ ली थीं क्योंकि कुछ और देखने की इच्छा बाकी नहीं रही थी, हमें तो आंखें फोड़ने की भी जरूरत नहीं पड़ी, आपको देखने के बाद खुद-ब-खुद सब-कुछ दीखना बंद हो गया। आंखें खुली रहें या बंद, रोशनी हो चाहे नहीं, आपके सिवाय कुछ दीखता नहीं। कुछ···भी···तो···नहीं···'

बस एक बोतल नशा चाहिए, फिर देखना उसका कमाल! राजेश्वर क्या खाकर उसका मुकाबला करेगा। नमक का उससे बड़ा व्यापारी कहां मिलेगा!

थूक की फुहार छोड़, वह ही-ही करके हँस पड़ा।

बस के अन्दर, बेआरामी से लटके मुसाफिरों को यह बेवक्त की हँसी खिजा गयी। "बीच दुपहर चढ़ा आया?" एक ने छींटा कसा।

"नहीं, चढ़ाने जा रहा हूं!" कौशल कुमार ने ऐलान करते हुए कहा और ठहाका बुलंद करने की कोशिश में ही-ही करके हिनहिनाने लगा।

दस

दो दिन तक कौशल का फोन नहीं आया।

माधवी ने जमकर उपन्यास पर काम किया। उस दिन कौशल से बात करने के बाद कथा ने एकदम नया मोड़ ले लिया। सामने खुला समतल मैदान देख, कलम सरपट दौड़ चली है। पर मन में दुविधा बनी हुई है, ठीक है यह राह या वापस मुड़कर उसी जंगल में इधर-उधर छुपी पगडंडियां खोजे? दिमाग में विचारों की धकापेल मची है; एक के बाद एक बिजली चमकती चली जाये तो

आखे चौंध खा जाती हैं, रोशनी में अंधेरे का भ्रम होने लगता है। सफेद कागज स्याह पड़ रहा है और वह सोचे बगैर महसूस कर रही है, कोई पास होता तो पूछ लेती, ठीक है न यह राह या···

दो दिन से कौशल का फोन नहीं आया, आश्चर्य है। क्या अपनी आत्महत्या की धमकी पर वह लज्जित है ? असम्भव है। बीमार होगा शायद। ज्यादा दिन नहीं रहता। आज शायद फोन आये। आया तो दिखला देगी उपन्यास, काफी लिखा जा चुका। एक बात मगर याद रखनी होगी। उपन्यास पढवाने के बाद साफ-साफ बतला देना होगा कि माधवी और उसके बीच किसी किस्म का स्नेह-संबंध स्थापित नहीं हो सकता। उसी दिन कह देना चाहिए था, उपन्यास पढने बैठने से पहले या बाद। पर···! नहीं कहा तो अब कह देगी।

और उसने दुबारा आत्महत्या करने की धमकी दी तो ? कह देगी, कर ले। आत्महत्या करने वाला जीव वह है नहीं। पर कर ली तो···? उफ, कैसा मकड़-जाल है। अभी वक्त है, हाथ मारकर जाला तोड़ा जा सकता है वरना कौशल का मोह बढ़ता जायेगा और कुछ दिन बाद बेचारा· ·

बेचारा! माधवी ने गुदगुदी महसूस की। प्यार करना गुनाह तो नहीं, किसी से भी हो सकता है। और प्यार पाना तो गौरव की बात है, ऐसा प्यार तो आदमी से खुदकुशी करा दे। कौशल की जगह कोई सुन्दर-संपन्न नौजवान होता! 'मैं सिर्फ आपके लिए जिंदा हूं' उसके गुदगुदे खूबसूरत ओठों सेनमकीन आवाज आयी। माधवी का बदन हरहरा गया। ऐसा प्रेम जो जगा पाये, महान् नहीं तो विशिष्ट व्यक्ति अवश्य है। माधवी विशिष्ट है। हां, है। प्रेम ने उसे विशिष्ट बनाया है। यह केवल हमारी मध्यवर्गीय संकीर्णता और कायरता है जो हमे प्रेम के नाम से डरने-कतराने पर मजबूर करती है वरना प्रेम नैसर्गिक वस्तु है; मन की संपदा, उदात्त भावनाओं की अभिव्यक्ति। प्रेम, हां; पर कामलिप्सा ? राजेश्वर मिश्र ने कहा था, जो आदमी कामलिप्सा से मर रहा हो उसे···नहीं, नहीं! वह घिनौना स्पर्श नहीं। अपने पैरों पर भी उसकी उंगलियों का हल्का-सा स्पर्श वह बर्दाश्त नहीं कर सकती।

कौशल यदि सुंदर-संपन्न, उच्च पदवीप्राप्त होता···पर नहीं है। उसका स्वरूप सिंहनी का आखेट करने वाले शिकारी का नहीं, कीड़े-मकौड़े फंसाने वाली मकड़ी का है। उच्च समाज मे उसे गौरव के साथ, श्रेष्ठ व्यक्ति की तरह प्रदर्शित नहीं किया जा सकता। प्रेमी का अस्तित्व बहुमूल्य नगीने की तरह हो तभी उसके प्रेम को प्रतिष्ठित किया जा सकता है। प्यार मिले तो किसी गांधी-नेहरू का, टाटा-बिरला का; और कुछ नहीं तो किसी विश्वविख्यात लेखक का। पर कौशल! लिखता बढ़िया है तो क्या। कौन जानता है, कोयले को हीरा बनने मे कितने युग लगेंगे। कौशल कुमार की जगह मुझे यदि प्रेमचंद ने प्यार किया

होता···! सहसा माधवी ठठाकर हँस पड़ी। पर ठहाका पूरा होने से पहले ऐसी कड़ुआहट मुंह में भर गयी कि उठकर थूक आना पड़ा। नहीं, वह नहीं करना चाहती बार-बार अपने से साक्षात्कार। अब कौशल से नहीं मिलेगी। कभी नहीं। चाहे खुदकुशी की धमकी दे, चाहे कर ही क्यों न डाले। नहीं मिलेगी। पक्का। एकदम!

तभी फोन बजा।

"कैसी हैं?" कौशल ने उछलकर पूछा।

"ठीक हूं," माधवी ने कहने के लिए कहा।

"उपन्यास आगे लिखा?"

"कुछ।"

"वाह, बढ़िया। आपने नहीं पूछा, हमने लिखा कि नहीं?"

"खयाल नहीं रहा।"

"वही तो। हमारा खयाल क्यों रहेगा।"

"देखिए···" माधवी ने क्षुब्ध होकर बाधा देनी चाही पर उसके शब्द ऊपर घुमड़ आये, "एक कहानी लिखी है। आपको दिखलानी है। आ जाऊं?"

"नहीं, घर आने का सवाल नहीं उठता।"

"क्यों, उस दिन बैठे तो थे इतनी देर।"

"आप जबरदस्ती चले आये थे, मैंने नहीं बुलाया था," कहकर वह अपने शब्दों की बदतमीजी पर शर्मसार हुई।

"आपने कब बुलाया है? जब आया हूं, मैं ही आया हूं।"

माधवी चुप रही।

"तो त्रिवेणी आ जाइए," उसने कहा, "कहानी आपको दिखलाये बिना छपने नहीं भेज सकता।"

"आज नहीं हो सकता," माधवी ने कहा तो वह बीच में बोल पड़ा, "आपका उपन्यास देखने को मैं हमेशा तैयार हूं; रात के बारह बजे कहें तो फौरन हाजिर हो जाऊं। मेरी कहानी आप नहीं देखेंगी?"

बात न्यायसंगत है और माधवी को अपनी न्यायबुद्धि पर गर्व है!

"क्यों नहीं देखूंगी?" उसने कहा, "पर आज नहीं। कल सुबह···"

"कल तक मैं जिंदा नहीं रहूंगा," कौशल ने इतनी मायूसी से कहा कि माधवी बरबस हँस दी। "ऐसी क्या बात है?" उसने कहा।

"कहानी लिखकर बिला किसीको दिखलाये बैठा रह सकूं, इतना धैर्यवान होता तो अब तक लखपति न बन गया होता।"

"और किसीसे पढ़वा लीजिए," माधवी ने कहा।

"किससे?"

"किसी भी अपने दोस्त से ?"

"मेरा कोई दोस्त नहीं है।"

"यह कैसे हो सकता है!"

"है।"

मुझे आप सिर्फ एक साल से जानते हैं, उससे पहले से जो आपके दोस्त हैं..."

"जब से आपको जाना है, और सबको भूल गया हूं।"

"देखिए, आप इस तरह की बातें मत किया कीजिए," माधवी ने शुष्क स्वर में कहा।

"किस तरह की ?" गहरे आश्चर्य के साथ कौशल ने कहा।

"ऐसी रोमांटिक बातें। मैं आपको साफ बतला देना चाहती हूं कि मेरे और आपके बीच किसी किस्म का स्नेह-संबंध नहीं हो सकता।"

"क्या कह रही हैं आप! मैं आपमें अगाध श्रद्धा रखता हूं और हमेशा रखूंगा। आप मेरे लिए संसार की सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हैं और सदा रहेंगी। मैं जानता हूं, मैं इस काबिल नहीं हूं कि आप मुझे स्नेह दे सकें पर स्नेह करने का अधिकार तो दे सकती हैं। मेरी आपसे कोई अपेक्षा नहीं है, सिवाय इसके कि आप मुझे अपनी सेवा करने दें। आपका कोई भी काम मैं कर सकूं; आपका, आपके स्नेह पात्रों का, राकेश जी का, आलोक-समीर का, तो अपना सौभाग्य मानूंगा। यकीन मानिए, मैं मर भी रहा हूंगा तो आपका काम पूरा होने तक जिंदा रहूंगा। मुझे अपने काम आने का मौका देंगी, बस इतनी अनुकंपा आपसे चाहता हूं, करेंगी न ?"

माधवी पानी-पानी हो गयी। स्नेह मांगने के लिए किसीकी भर्त्सना कर भी लो, देने के लिए कैसे की जा सकती है। जब, जिस वक्त उसने चाहा है, कौशल ने उसका उपन्यास पढ़ा है और तल्लीनता से, खुले मन से चर्चा की है, अन्तर्मन में पूरी तरह उसे उतारकर। माधवी का कर्तव्य है कि मौका आने पर वह भी उसी तरह उसकी कहानी पढ़े, उसपर अपनी राय दे, उसे आश्वस्त करे।

"त्रिवेणी पहुंच रही हूं, ग्यारह बजे," उसने कहा, "कहानी ले आइए।"

"अपना उपन्यास भी लेती आइएगा," कौशल ने मीठी आवाज में कहा।

कहानी पढ़कर माधवी अभिभूत-सी कौशल को देखती रह गयी।

"विलक्षण!" उसके मुंह से निकला, "विलक्षण कहानी है। मैं नहीं जानती थी, आप इतना उदात्त सोचते हैं, महसूस करते हैं। वाकई मंत्रमुग्ध रह गयी हूं।"

कौशल का चेहरा जैसे कहानी की विलक्षण कांति से दमक उठा। आश्चर्य

के साथ माधवी ने देखा, इस असाधारण चमक ने उसे करीब-करीब सुंदर बना दिया है।

"मैं बहुत मामूली आदमी हूं, माधवी जी," उसने गंभीर स्वर में कहा। उसकी वाणी सहसा ओजपूर्ण हो उठी। कहाँ गयी वह किकियाती, किनकिनाती रगड़ खाती आवाज ? यह स्वर तो बरबस अपनी तरफ खींचे ले रहा है। माधवी ध्यान से सुन रही है।

"बहुत मामूली," कौशल कह रहा है, "झूठ बोलता हूं, धोखा देता हूं, मौके का फायदा उठाकर मतलब सीधा कर लेता हूं। मामूली आदमी में जो-जो ऐब होते हैं, सब मुझमें हैं। सिर्फ एक जगह मैं बेईमानी नहीं करता, झूठ नहीं बोलता। अपनी लिखने की मेज पर बैठने के बाद, कलम हाथ में लेते ही, मैं सच्चा और ईमानदार आदमी बन जाता हूं और बना रहता हूं तब तक, जब तक मेज छोड़कर उठता नहीं।"

माधवी के पास कहने को कुछ नहीं है। बस, मन लगाकर सुन रही है।

"आपसे सच कहता हूं, माधवी जी," कौशल कहता जा रहा है, "मैंने जीवन में जो चाहा, कभी नहीं मिला। मैंने चाहा निस्वार्थ प्रेम, आत्मबलिदान की प्रेरणा, आत्मोत्सर्ग। चाहा, केवल अच्छा लेखक नहीं, अच्छा आदमी भी बनूं। पर जीवन में कभी कोई उदात्त अनुभव नहीं हुआ। जो कुछ मेरे साथ घटा, निकृष्ट था, ओछा था, मेरे अंदर के जलील आदमी को उकसाने वाला था। पैसे को मैं नगण्य मानता हूं। कभी नहीं समझा, पैसा काम की चीज है, संभालकर रखने वाली, भविष्य के लिए। आदमी का आकलन पैसे, धन-दौलत से होता है, जानता हूं, पर जानकर भी बार-बार भूल जाता हूं। दोस्त सभी भले हैं, बार-बार याद दिला देते हैं, आंखों में उंगली डालकर दिखला देते हैं फिर भी···अजीब बात है, पैसा मेरे लिए एकदम तुच्छ वस्तु है पर पैसा मेरी सबसे बड़ी कमजोरी भी है। हाथ में आते ही जिस-तिसपर खर्च करूंगा, बचाकर कल के लिए नहीं रखूंगा, पर कल···? कल आने पर पैसा मुझे उसी तरह ललचायेगा जैसे आज ललचा रहा है। पैसा मिलने पर ऊंचे लोगों की तरह उसे ठुकरा नहीं सकता। आज आपसे कह रहा हूं, पैसे के मामले में मैं भरोसे का आदमी नहीं हूं। हां, लेखन को किसी कीमत पर नहीं बेचता। पैसे की खातिर कोई समझौता नहीं करता। कभी नहीं।"

"बड़ी बात है," माधवी के मुंह से निकला।

"मुझे बतलाइए, माधवी जी, मैं अच्छा आदमी बन सकता हूं ?"

माधवी लज्जित हँसी हँस दी।" किसने कहा, आप बुरे आदमी हैं ?" उसने कहा।

"मैं कहता हूं, मैं बुरा आदमी हूं। आप नहीं समझेंगी। अच्छा होना आपके लिए जितना स्वाभाविक है, उतना ही मेरे लिए बुरा होना। बतलाया था न, एक

आदमी का मैंने खून…"

"वह दुर्घटना थी, किसीके भी हाथ हो सकती थी," बात काटकर माधवी ने कहा।

"एक वही बात नहीं है। आप नहीं जानतीं, शराब पीकर आदमी क्या-क्या हरकतें करता है…"

"जानती हूं। शराब में धुत आदमियों को मैंने देखा है; पार्टियों में…"

"पार्टियों में!" कौशल ने गंभीर स्वर में कहा, "जैसा मैं पीता रहा हूं, आनंदप्राप्ति के लिए पीना एक बात है और बीवी-बच्चों के मुंह से रोटी का कौर छीनकर, कुछ न होने के एहसास को मिटा देने के लिए पीना, बिल्कुल दूसरी। आप लोगों की तरह हमारे पास इस न होने की मार से बचने का सम्मानजनक रास्ता नहीं है। किसी ऊंची संस्था या क्लब के सदस्य बनकर समाजसेवक कहलाने का सुख नहीं लूट सकते; यहां-वहां घूमकर यायावर कहलाने का आनंद प्राप्त नहीं कर सकते; अपने से कमतर आदमी को कीमती उपहार देकर उदार होने का भ्रम तक नहीं पाल सकते। कुछ न होने का एहसास मिटा सकते हैं तो सिर्फ किसीको मारकर, उसकी आबरू लूटकर। उसके अस्तित्व को मिटाने के लिए, मिटाने के दौरान, हमें स्वयं कुछ बनना पड़ता है, शोषक, जल्लाद, बदमाश, जो आप कहें। और सबसे आसान है उस आदमी का अस्तित्व मिटाना, जो हमें स्नेह दे या कम-से-कम देना उसकी मजबूरी हो। जो जीवनयापन के लिए, जिंदगी को बरकरार बनाये रखने के लिए हमपर निर्भर हो।"

"यानी पत्नी," माधवी के मुंह से निकला।

"हां, पत्नी। कमजोर-से-कमजोर, गरीब-से-गरीब, निकम्मे-से-निकम्मे आदमी के पास एक जायदाद होती है जिसपर वह हुकूमत कर सकता है, उसकी बीवी! जो यंत्रणा हम अपनी बीवियों को देते हैं…"

"उच्च वर्ग के आदमी भी…"

"देते हैं। पर उनकी पत्नियां विद्रोह कर सकती हैं। अगर चाहें तो आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो सकती हैं। पर हमारी पत्नियां! वे न हों तो हम लोग कुछ न होने के दावानल में जलकर भस्म हो जायें। उन्हें मिटाकर जब कुछ होने का एहसास मन में जगता है तो अहम् और-और की मांग करने लगता है। जानती हैं, मैं वेश्याओं के पास भी जाता रहा हूं। यही नहीं…"

"रहने दीजिए," माधवी ने व्याकुल कंठ से बाधा दी।

"वितृष्णा होती है?"

"हां।"

"मैंने कहा न, मैं अच्छा आदमी नहीं हूं पर बनना जरूर चाहता हूं। अच्छा बनने में आप मेरी मदद करेंगी?"

"मैं क्या कर सकती हूं !"

"करना कुछ नहीं, बस होना होगा।"

"मतलब ?"

"आप रहें। मुझे आप दीखती रहीं तो आपसे सम्मान पाने के लिए मैं अच्छा आदमी बनूंगा। जरूर। मुझे छोड़िएगा नही, बस इतना चाहता हूं।"

"एक बात मैं फिर आपसे कह देना चाहती हूं। हमारे बीच स्नेह का कोई संबंध…"

"मत कहिए। नहीं हो सकता, मैं जानता हूं। पर मैं नहीं चाहता, बार-बार मुझे याद दिलाया जाये, नहीं चाहता इसे याद रखूं। आपका कोई नुकसान तो नहीं हो रहा; मुझे यह वहम पाले रहने दीजिए कि हमारे बीच स्नेह का संबंध है।"

"जो है नहीं, उस झूठ में विश्वास करने से आपकी अपेक्षाएं…"

"झूठ नहीं, वहम।"

"एक ही बात है।"

"नहीं, बहुत फर्क है। आपका झूठ मेरा सच भी हो सकता है। मैं आपको प्यार करता हूं, यह मेरा सच है। आप मुझे प्यार नहीं करतीं, यह आपका सच है। सच को मैं झुठला नहीं सकता पर वहम को सच जरूर मान सकता हूं। यूटोपिया और किसे कहते हैं ? वहम के बिना आदमी कैसे जियेगा, बतलाइए, ऐसा आदमी जिसकी झोली सच के नाम पर बिल्कुल खाली हो ? मेरा वहम मुझे जीने की शक्ति देता है तो आपका उसमें नुकसान कहां है ? आपसे वह कुछ चाहता तो नहीं ?"

यह शब्द-जाल है, अर्थ की बात इसमें कुछ नहीं है; माधवी के सचेत मस्तिष्क ने उसे झिंझोड़ा पर अभिभूत चेतना ने चुप रहने पर मजबूर कर दिया। उसके मन में कौशल के प्रति विश्वास जन्म ले रहा था और विश्वास अविश्वास से अधिक सुखदायक है। माधवी उस सुख में डूबे रहना चाहती थी। डूबी रही।

"किसी दिन समय होगा तो अपनी बात आपसे कहूंगा," कौशल ने कहा।

"कहिए न ?"

"आज नहीं। आज समय नहीं है।"

"समय बहुत है। मुझे एक बजे जाना है। तब तक आप कहिए। और अब तो कहने को बहुत बचा भी नहीं होगा।"

"बहुत है। आज नहीं। आज मैं खुश हूं, मन खराब नहीं करना चाहता। अब लाइए, आपका उपन्यास पढ़ा जाये।"

"रहने दीजिए, फिर पढ़ा जायेगा। आज ऐसे ही बातचीत करें," माधवी ने कहा। आज वह अपनी आत्मग्रस्तता से मुक्त रहना चाहती थी।

कौशल का चेहरा खिल गया।

"आपका इतना कहना ही मेरे लिए बहुत है," उसने कहा, "इसके सहारे मैं हफ्तो जी लूगा।"

"एक बात है," माधवी बोली, "आप रोज-रोज मुझसे सपर्क न करें तो मुझे आपसे मिलने में ज्यादा सुविधा हो। ऐसा करें, हम लोग तय कर लें, हफ्ते में एक बार मिलेंगे। हर मंगल को या हर सोम को।"

'हफ्ते में एक बार! यह मुझसे नही होगा। एक हफ्ते तक आपको देखे बिना मैं नही रह सकता।"

"पर रोज घर से निकलकर आपसे मिलने मै नही आ सकती। रोज-रोज फोन का आना भी मुझे नागवार गुजरता है। आप समझने क्यों नही, जो आदमी रोज-रोज सम्पर्क करता रहे, उससे चिढ होने लगती है, इतना सान्निध्य वितृष्णा पैदा करता है।"

"कभी नही। मेरे अदर आपके लिए वितृष्णा कभी पैदा नही हो सकती!"

"मेरे अदर तो होती है," माधवी ने कहा, "आप इतनी बडी-बडी बातें बनाते हैं पर जो मैं कहती हू, करते नही।"

"करूगा। पर आप हुक्म दीजिए, अधिकार के साथ। निर्णय मुझपर मत छोडिए।"

"ठीक है। तब हम हफ्ते में एक बार यहां मिला करेंगे, सोमवार, ग्यारह बजे। फोन करने की जरूरत नही है।"

"जरूरी काम होने पर भी नही?"

"ऐसा जरूरी काम क्या होगा?"

"मान लीजिए है। कोई जरूरी सूचना देनी है।"

"तब कर लीजिएगा, पर मिलने को नहीं कहिएगा।"

"कहूं भी नही?"

"नहीं, सोमवार को छोडकर नही मिलेंगे।"

"यह आपका हुक्म है?"

"हा," कहते हुए माधवी को काफी दिक्कत हुई। हुक्म देकर उसे अच्छा लग रहा था; पर हुक्म देना एक बात है और हुक्म दे रही है, स्वीकार करना बिल्कुल दूसरी। कहती जो है, हुक्म, आदेश, समर्पण, अधिकार बिल्कुल लिजलिजे शब्द हैं; कोई आदमी दूसरे के आगे अपने व्यक्तित्व का पूर्णतया समर्पण क्यो करे? यह ठीक है कि यदि व्यवस्था और रुटीन उसके अपने बनाये हुए हो तो व्यवस्थित खांचो मे फिट, रुटीन मे चलती दिनचर्या उसे भली लगती है; दूसरा आदमी अपनी इच्छा से उसके बनाये खाचो मे फिट हो जाये तो सतोष मिलता है पर किसी पर उसे लादना···वह भी साफ-साफ कहकर···!

"मैं क्या कर सकती हूं !"

"करना कुछ नहीं, बस होना होगा।"

"मतलब ?"

"आप रहें। मुझे आप दीखती रहीं तो आपसे सम्मान पाने के लिए मैं अच्छा आदमी बनूंगा। जरूर। मुझे छोड़िएगा नहीं, बस इतना चाहता हूं।"

"एक बात मैं फिर आपसे कह देना चाहती हूं। हमारे बीच स्नेह का कोई संबंध..."

"मत कहिए। नहीं हो सकता, मैं जानता हूं। पर मैं नहीं चाहता, बार-बार मुझे याद दिलाया जाये, नहीं चाहता इसे याद रखूं। आपका कोई नुकसान तो नहीं हो रहा; मुझे यह वहम पाले रहने दीजिए कि हमारे बीच स्नेह का संबंध है।"

"जो है नहीं, उस झूठ में विश्वास करने से आपकी अपेक्षाएं..."

"झूठ नहीं, वहम।"

"एक ही बात है।"

"नहीं, बहुत फर्क है। आपका झूठ मेरा सच भी हो सकता है। मैं आपको प्यार करता हूं, यह मेरा सच है। आप मुझे प्यार नहीं करतीं, यह आपका सच है। सच को मैं झुठला नहीं सकता पर वहम को सच जरूर मान सकता हूं। यूटोपिया और किसे कहते हैं ? वहम के बिना आदमी कैसे जियेगा, बतलाइए, ऐसा आदमी जिसकी झोली सच के नाम पर बिल्कुल खाली हो ? मेरा वहम मुझे जीने की शक्ति देता है तो आपका उसमें नुकसान कहां है ? आपसे वह कुछ चाहता तो नहीं ?"

यह शब्द-जाल है, अर्थ की बात इसमें कुछ नहीं है; माधवी के सचेत मस्तिष्क ने उसे झिंझोड़ा पर अभिभूत चेतना ने चुप रहने पर मजबूर कर दिया। उसके मन में कौशल के प्रति विश्वास जन्म ले रहा था और विश्वास अविश्वास से अधिक सुखदायक है। माधवी उस सुख में डूबे रहना चाहती थी। डूबी रही।

"किसी दिन समय होगा तो अपनी बात आपसे कहूंगा," कौशल ने कहा।

"कहिए न ?"

"आज नहीं। आज समय नहीं है।"

"समय बहुत है। मुझे एक बजे जाना है। तब तक आप कहिए। और अब तो कहने को बहुत बचा भी नहीं होगा।"

"बहुत है। आज नहीं। आज मैं खुश हूं, मन खराब नहीं करना चाहता। अब लाइए, आपका उपन्यास पढ़ा जाये।"

"रहने दीजिए, फिर पढ़ा जायेगा। आज ऐसे ही बातचीत करें," माधवी ने कहा। आज वह अपनी आत्मग्रस्तता से मुक्त रहना चाहती थी।

कौशल का चेहरा खिल गया।

"आपका इतना कहना ही मेरे लिए बहुत है," उसने कहा, "इसके सहारे मैं हफ्तों जी लूगा।"

"एक बात है," माधवी बोली, "आप रोज-रोज मुझसे संपर्क न करें तो मुझे आपसे मिलने मे ज्यादा सुविधा हो। ऐसा करें, हम लोग तय कर लें, हफ्ते मे एक बार मिलेंगे। हर मंगल को या हर सोम को।"

"हफ्ते मे एक बार! यह मुझसे नही होगा। एक हफ्ते तक आपको देखे बिना मैं नही रह सकता।"

"पर रोज घर से निकलकर आपसे मिलने मैं नही आ सकती। रोज-रोज फोन का आना भी मुझे नागवार गुजरता है। आप समझते क्यो नही, जो आदमी रोज-रोज संपर्क करता रहे, उससे चिढ होने लगती है, इतना सान्निध्य वितृष्णा पैदा करता है।"

"कभी नही। मेरे अंदर आपके लिए वितृष्णा कभी पैदा नही हो सकती!"

"मेरे अदर तो होती है," माधवी ने कहा, "आप इतनी बडी-बडी बातें बनाते हैं पर जो मैं कहती हू, करते नही।"

"करूंगा। पर आप हुक्म दीजिए, अधिकार के साथ। निर्णय मुझपर मत छोडिए।"

"ठीक है। तय हम हफ्ते मे एक बार यहा मिला करेंगे, सोमवार, ग्यारह बजे। फोन करने की जरूरत नही है।"

"जरूरी काम होने पर भी नही?"

"ऐसा जरूरी काम क्या होगा?"

"मान लीजिए है। कोई जरूरी सूचना देनी है।"

"तब कर लीजिएगा, पर मिलने को नही कहिएगा।"

"कहूं भी नहीं?"

"नही, सोमवार को छोड़कर नही मिलेंगे।"

"यह आपका हुक्म है?"

"हा," कहते हुए माधवी को काफी दिक्कत हुई। हुक्म देकर उसे अच्छा लग रहा था; पर हुक्म देना एक बात है और हुक्म दे रही है, स्वीकार करना बिल्कुल दूसरी। कहती जो है, हुक्म, आदेश, समर्पण, अधिकार बिल्कुल लिजलिजे शब्द हैं; कोई आदमी दूसरे के आगे अपने व्यक्तित्व का पूर्णतया समर्पण क्यो करे? यह ठीक है कि यदि व्यवस्था और रुटीन उसके अपने बनाये हुए हो तो व्यवस्थित खांचों मे फिट, रुटीन मे चलती दिनचर्या उसे भली लगती है; दूसरा आदमी अपनी इच्छा से उसके बनाये खाचो मे फिट हो जाये तो सतोष मिलता है पर किसी पर उसे लादना···वह भी साफ-साफ कहकर···!

फिर भी उसने 'हां' कह दिया। कौशल की भावप्रवणता, सत्यवादिता और विश्वास ने उसे मोहित कर लिया है। सिर पर एक नशा तारी होने लगा है। एक आदमी उसे इतना चाहता है, ऐसा अटूट विश्वास उसपर रखता है कि उसके सामने मिट जाना चाहता है; प्रेम का यह आदर्श रूप कैसे आह्लादित-पुलकित नहीं करेगा! जो कुछ चाहता नहीं, प्रेम के बदले कुछ मांगता नहीं...

नहीं मांगता? इतना पैसा, इतना समय जो अब तक ले चुका? मन में उठे संशय को उसने दबा दिया। समय साहित्य-चर्चा में बीता, पैसा जरूरत के लिए लिया। प्रेम के बदले प्रेम तो नहीं मांग रहा, असली बात यही है।

कौशल के गंभीर निर्मल स्वर ने फिर अपनी तरफ खींचा।

"जैनेंद्र कहते हैं," वह कह रहा है, "आदर्श प्रेम प्रतिफल नहीं चाहता। वास्तव में प्रतिफल-रहित प्रेम ही समय के साथ नष्ट नहीं होता। अप्राप्य को प्राप्त करने की लालसा जब तक बनी रहेगी, प्रेम अपने उदात्त रूप में प्रकट होगा, आत्मोत्सर्ग का माध्यम बनेगा। वे कहते हैं, प्रेम अध्यात्म का माध्यम है। मैं अध्यात्म में विश्वास नहीं करता। मेरा ईश्वर मेरा साहित्य है; मेरी पूजा-अर्चना साहित्य-रचना। और उसकी प्राप्ति का माध्यम आप हैं। सच कहता हूं, आपसे मिलने के बाद जो कुछ मैंने लिखा है, वह मेरा नहीं आपका लेखन है। आप उसकी प्रेरणा ही नहीं, लेखिका हैं। मेरे अंदर का लेखक मर चुका था, सौंदर्य-बोध का अंत हो चुका था। आपने दोनों को जिला दिया। आपने मुझे जीवनदान दिया है।"

इस अति-भावुकता ने माधवी को कुंठित कर दिया। लज्जा कम करने के लिए हंसकर बोली, "तब तो मैं आपकी मां हो गयी।"

"बिल्कुल! आप मेरी सब-कुछ हैं, मां, बहिन, दोस्त, गुरु, प्रिया, पथप्रदर्शक, मालकिन सब-कुछ!"

माधवी और कुंठित हो गयी, बोली, "बस और नहीं, काफी हो गया। अब कुछ ठंडा मंगाया जाये, पीने के लिए।"

"आप ठंडा पीजिए, मैं आपका उपन्यास पढ़ता हूं," कौशल ने कहा तो वह नहीं न कह पायी। कल से कितना मन है, कौशल पढ़कर बतलाये, उपन्यास ने जो नया मोड़ लिया है, ठीक है कि नहीं।

उपन्यास पढ़ा गया, उसपर लंबी बातचीत हुई, कौशल की व्याख्या से माधवी प्रसन्न हुई। इतनी कि जब करीब दो घंटे बाद, घर जाने के लिए बाहर निकली तो स्कूटर लेने से पहले, कौशल से कह उठी, "आपको रास्ते में कहीं छोड़ दूं?"

"हां, मुझे सफदरजंग अस्पताल जाना था," कौशल ने कहा।

"चलिए, मेरे घर के बहुत पास है," माधवी ने कहा और दोनों स्कूटर में बैठ गये।

"आज का दिन बहुत बढ़िया बीता," स्कूटर चल पड़ा तो कौशल ने कहा।

"हां," खुले मन से माधवी ने अनुमोदन किया।

तभी स्कूटर ने धचका खाया और कौशल का बदन उसके बदन से टकरा गया। वह सतर्क होकर अपने कोने में सिमट गयी। दोनों के बीच सुरक्षित दूरी बन गयी।

"आपने मुझे छोड़ा नहीं तो देखिएगा, मैं कितना उत्कृष्ट साहित्य हिंदी को देता हूं। आप चाहती हैं न, मैं एक महान उपन्यास लिखूं ?"

"हां," माधवी ने गहरी निष्ठा के साथ कहा, "हम लोग हमेशा अपने को पश्चिम से पीछे क्यों मानते रहें। उनकी टक्कर का उपन्यास हमारे देश में लिखा ही जाना चाहिए। मेरा विश्वास है, आप वह उपन्यास लिख सकते हैं। मेरी महत्त्वाकांक्षा है, आप ऐसा उपन्यास लिखें जिससे मेरा सिर ऊंचा हो सके।"

"लिखूंगा," कौशल ने विश्वास के साथ कहा, "सच, स्वयं लिखने से भी अधिक रोमांचकारी है किसीको लिखने के लिए प्रेरित करना। नहीं ?" कहते-कहते उसका कंधा माधवी के कंधे से रगड़ खा गया। उसने देखा, वह अब भी एक कोने में सिमटी बैठी है पर जो दूरी उसने अपने और कौशल के बीच बनायी थी, वह मिट चुकी है। शायद कौशल और पसरकर बैठ गया है।

उसने चाहा, उससे जरा हटकर बैठने के लिए कहे पर यह सोचकर कि अपमानजनक लगेगा, चुपचाप अपने में कुछ और सिमट गयी।

"एक थीम मन में है, सुनाऊं ?" कौशल ने कहा।

"यहां, स्कूटर में ?" माधवी ने चकित होकर कहा, "इतने शोर में भला क्या सुनायी देगा। त्रिवेणी में क्यों नहीं सुनाया ?"

"थोड़ी देर के लिए कहीं और बैठ लेते हैं।"

"नहीं, अब मुझे घर पहुंचना है।"

"तो घर चलूं ?"

"नहीं ! अरे, आप कैसे आदमी हैं ? अभी-अभी तो तय हुआ है, अगले सोमवार को मिलेंगे। तब सुनाइएगा।"

"एक हफ्ते बाद ?'

"हां।"

"बहुत मुश्किल है," उसने कहा और उसका हाथ माधवी के हाथ पर आ गिरा।

तड़पकर उसने हाथ झटक दिया और मुंह घुमाकर स्कूटर से बाहर ताकने लगी।

"अच्छा-अच्छा, नाराज न हों। अब देखिए, बच्चा सीखते-सीखते सीखता है। कान पकड़ता हूं, अब सवाल-जवाब नहीं करूंगा। आपका हुक्म है, सोमवार को मिलेंगे तो सोमवार को ही मिलेंगे। बस। कोई दलील नहीं, अपील नहीं, सजा में

छूट नहीं। सुप्रीम कोर्ट का फैसला है। अडिग। ठीक है ?"

"ठीक है," माधवी ने कहा। हँसी रोकना मुश्किल हो रहा था।

"हँसकर कहिए न," कौशल ने कहा, "देखिए, बालक कितना सुधर गया।"

माधवी हँस पड़ी।

सफदरजंग अस्पताल जैसे ही आया उसने स्कूटर रुकवा लिया। कौशल से कहा, "अस्पताल आ गया। उतर जाइए।"

"अरे, आप क्या कभी कुछ भूलतीं नहीं ?"

"नहीं। अब उतर जाइए।"

"जो हुक्म," कहकर उसने अपना दायां हाथ उसके आगे फैला दिया। कहा, "आज आपने मेरी दोस्ती कबूल की है, हाथ मिलाइए।"

"भारतीय संस्कृति के अनुसार हाथ मिलाये नहीं, जोड़े जाते हैं," कहकर माधवी ने नमस्कार में हाथ जोड़ दिये।

कौशल वैसे ही हाथ फैलाये स्कूटर में बैठा रहा। स्कूटर-चालक ने सामने लगे शीशे में उन्हें देखा, फिर पीछे मुड़कर घूरा। जल्दी से माधवी ने हाथ आगे कर दिया। कौशल ने उसे थामा और एक बार हिलाकर तुरंत अलग कर लिया। कहा, "अब जाइए, स्कूटर वाला परेशान हो रहा है।"

उसके नीचे उतरते ही स्कूटर चल पड़ा। मुड़कर उसने कौशल की तरफ नहीं देखा।

आज का दिन बुरा नहीं बीता। चलते-चलते हाथ न मिलाना पड़ता तो और अच्छा रहता। गलत है, माधवी ने खुद को फटकारा। कौशल से हाथ मिलाने में कोई हर्ज नहीं है। बल्कि मिलाना ही ठीक है। ऐसा दोस्त किस्मत से मिलता है। इतना निष्ठावान, अनुरक्त और वफादार; उसकी तरफ दोस्ती का हाथ बढ़ाना ही चाहिए।

सफदरजंग अस्पताल के आगे उतरकर अंदर जाने के बजाय कौशल बस-स्टैंड की तरफ चल दिया। घर तक पहुंचा आने को कहता तो माधवी इन्कार कर देती, इसीलिए अस्पताल का नाम लिया। इधर-उधर डोलते स्कूटर की तंग सीट पर पास-पास बैठकर जितनी अंतरंगता स्थापित हो सके उतनी ही सही···

उसका सीना छाती के भीतर चौड़ा हो रहा था। आज उसने जो कुछ कहा, सच कहा और सच के अलावा विशेष कुछ नहीं कहा। वाकई वह अच्छा आदमी बनना चाहता है; ऐसा आदमी जिसे माधवी जैसी औरत स्वीकार कर सके।

अच्छा आदमी बनने का यह मतलब नहीं होगा कि वह लिखना छोड़ देगा बल्कि पहले से ज्यादा बेबाक लिखेगा। इतना बढ़िया और दो टूक कि राजेश्वर-

रामेश्वर किस्म के लोग तिलमिला उठेंगे। सब चेहरों से नकाब उतर जायेंगे और नंगा खौफनाक सच बाहर आ जायेगा। पाठक पढ़ेंगे और दांतों तले उंगली दबा लेंगे। खूब लिखेगा वह, अच्छा आदमी बनकर लिखेगा।

लोग उसकी इज्जत करेंगे। अच्छा लगता है, जब कोई उसकी इज्जत करता है। उसके भीतर आने पर लोग कुर्सी मंगाने की गुहार नहीं मचाते; उसे खड़ा रखकर पूछते हैं, 'हो गये प्रूफ तैयार?' हां, उसकी जगह केवलकृष्ण आ पहुंचे, वह आयकर अधिकारी जो अपने को लेखक बताता घूमता है तो प्रकाशक महोदय कुर्सी मंगायेंगे ही नहीं, अपनी छोड़कर खड़े हो जायेंगे और खीसें निपोरकर कहेंगे, "आइए-आइए, विराजिए।"

मुंह में आयी फाहश गाली को उसने वापस धकेल दिया। जाने दो, मरने दो कुत्ते के पिल्लों को। माधवी जैसी महिला मुझे दोस्त कहेगी तो समाज में इज्जत भी मिल जायेगी एक दिन। सच तो यह है कि मेरे लेखन को मान्यता मिल जाये तो समझूं मुझे मेरा सम्मान मिल गया। लेखन की इज्जत ही मेरी इज्जत है। मैं इज्जतदार आदमी बन सकता हूं, बस माधवी जैसी औरत साथ हो, जो मुझे अच्छा आदमी बनाये। मैं बुरा हूं, जानता हूं बुरा हूं; तभी न बार-बार उससे कहा, मैं बुरा हूं। बुरा नहीं हूंगा तो मुझे अच्छा बनाने की प्रेरणा कैसे मिलेगी। कितने गर्व की बात होगी उसके लिए मुझे सुधार पाना! एवरेस्ट की चोटी पर चढ़ने जैसी चुनौती हूं मैं। वह मुझे सुधारेगी तो मैं सुधर जाऊंगा, कभी-न-कभी। उसके काम को नामुमकिन नहीं बनाऊंगा। आसान भी नहीं। मुश्किल न हो तो चुनौती कैसी? पर मैं अपनी तरफ से पूरी कोशिश करूंगा। एक सबूत तो यही है मेरी ईमानदारी का कि आज मैंने उससे पैसा नहीं मांगा। मेरी बातों ने उसे इतना भावुक बना दिया था कि स्कूटर से उतरते वक्त, अस्पताल का नाम लेकर सौ-पचास रुपये मांग लेता तो जरूर दे देती। फौरन। पर मैंने नहीं मांगे। इतना बढ़िया मौका तैयार करके भी नहीं मांगे। हाथ मिलाकर रह गया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के रोमानी नायक की तरह! वह धीमे से हंस दिया और उछलकर सामने से आ रही चलती बस का हैंडल पकड़, लटक गया।

ग्यारह

"अच्छा, साहित्य तो अकेले आदमी का नहीं होता, पूरे देश का होता है बल्कि कहना चाहिए पूरे संसार का," अगले दिन प्रसन्नचित्त माधवी ने नाश्ते

के दौरान राकेश से कहा ।

"यानी ?"

"यानी नहीं, पहले कहो होता है ।"

"होता है ।"

माधवी कुछ देर चुपचाप टोस्ट कुतरती रही, फिर बोली, "हम जैसे लोग जिंदगी में करते क्या हैं, बस खाते हैं और सोते हैं ।"

राकेश चुपचाप खाता रहा ।

"नहीं ?"

"इस वक्त जरूर खा रहा हूं पर बाकी वक्त सोता नहीं, मेहनत करता हूं ।"

"खाना जुटाने के लिए की गयी मेहनत । कालांतर में कौन याद रखेगा ?"

"हां भई, हम ठहरे मामूली आदमी । पर तुम तो लेखिका हो ।"

"मुझे जो लिखना है, मैं लिखूंगी । पर मैं कह रही थी, वाकई कोई बड़ा लेखक हो और हमारी मदद से लिख सके तो महीने में दो-चार सौ रुपये खर्च कर देने में हर्ज क्या है ? यह तो अनागत में पूंजी लगाने जैसा है । नहीं ?"

राकेश कुछ देर उसकी तरफ देखता रहा, फिर बोला, "मैं नहीं समझता, रुपया होने-न-होने से कौशल कुमार के लेखन का कोई संबंध है ।"

"नहीं-नहीं, उस तरह नहीं । मेरा मतलब है, अगर वह हमसे कुछ रुपये ले भी ले तो हमें यही सोचना चाहिए कि हम कालजयी साहित्य-रचना में हाथ बंटा रहे हैं ।"

राकेश ठठाकर हँस पड़ा, बोला, "देखो भई, तुम उसे रुपये देना चाहती हो तो जरूर दो पर इतनी बड़ी-बड़ी बातें मत करो ।"

माधवी लज्जित हो गयी ।

"सॉरी," राकेश ने कहा, "बात हँसने की थी नहीं ।"

"कल उसकी एक लाजवाब कहानी पढ़ी थी, इसीसे···अच्छा, कभी-कभी आदमी तर्कहीन बात कर ले तो हर्ज क्या है ?"

राकेश उठकर उसके पास आ गया, उसके कंधे पर हाथ रखा, झुककर माथा चूमा और कहा, "जो हमेशा तर्कसंगत बात करे उसे भला कौन प्यार करेगा ?"

माधवी ने उसका हाथ पकड़कर चूम लिया ।

राकेश वापस अपनी कुर्सी पर बैठा तो सोच में पड़ गया । कुछ देर बाद रुक-रुककर कहा, "किसी आदमी की जिंदगी, हम बदलना चाहें तो···बदल सकते हैं ?"

"शायद," माधवी ने कहा, "आर्थिक अभाव तो कम कर ही सकते हैं ।"

"आर्थिक अभाव एक दिन की चीज नहीं है, जिंदगी के साथ चलने वाला प्रवाह है । पैसा देने से कुछ नहीं होता, बस अभाव की घड़ी टल जाती है । कोई

वह बेहद खुश नजर आ रहा था जैसे कोई योजना सफल हो गयी हो।

"आप यहां कैसे आये ?" माधवी ने पूछा।

"बस में, और कैसे, अपने पास कौनसी मोटर है !"

तो आज यह मजाक के मूड में है।

"आपको चित्र-प्रदर्शनियों में दिलचस्पी है, मुझे मालूम नहीं था।"

"मुझे हर उस चीज में दिलचस्पी है जिसमें आप रुचि रखती हैं।"

"आपने मेरे घर फोन किया था ?" फौरन माधवी ने पूछा।

"नहीं," उतनी ही तत्परता से कौशल ने जवाब दिया।

साफ था कि वह झूठ बोल रहा है।

"झूठ बोलने का फायदा नहीं है, घर पहुंचते ही मुझे पता चल जायेगा," माधवी ने कहा।

"आपको कैसे पता चला, मैं झूठ बोल रहा हूं ?" कौशल ने ऐसे खुश होकर कहा जैसे कोई उपहार मिल गया हो।

माधवी चिढ़ गयी। "जो आदमी झूठ बोलता ही रहता हो, उसका झूठ पकड़ना क्या मुश्किल है', उसने कहा पर कौशल ने धैर्य के साथ उसकी बात सुनी नहीं, बीच में बोल पड़ा, "संप्रेषण का यही रूप तो मैं आपके और अपने बीच देखना चाहता हूं। मैंने जो कहा वह नहीं, आपने उसके भीतर का अर्थ पकड़ लिया..."

गद्गद कंठ में की जा रही व्याख्या को बीच में काटकर माधवी ने कहा, "मैंने मना किया था फिर आपने फोन क्यों किया ?"

"क्या करूं, फोन दीखते ही मैं अपने काबू में नहीं रहता, आपका नंबर आप-से-आप घूम जाता है।"

पीठ फेरकर माधवी चित्र की तरफ पलट गयी और दुबारा उसमें डूबने की कोशिश करने लगी। सुबह की सहानुभूति काफूर हो चुकी थी। उसकी अनचाही निकटता के विकर्षण ने ज्यादा कुछ कहने भी नहीं दिया। पीठ पीछे उसकी मौजूदगी का अहसास बना रहा, जैसे कोई ततैया चक्राकार घूम रहा हो।

कहा था सोमवार को मिलेंगे, उससे पहले फोन मत करना, एक दिन के लिए भी मेरी बात यह रख न सका। जासूस की तरह पीछा करता आ पहुंचा। मेरे पति ने भी कभी मेरे आने-जाने पर नजर नहीं रखी और यह अजनबी, इसकी इतनी हिम्मत कि मेरा पीछा करता घूमे ! उसकी कोफ्त गुस्से में बदल चुकी थी और हर पल गुस्सा बढ़ता जा रहा था।

नहीं, उसने अपने को फटकारा, ऐसा करने से काम नहीं चलेगा। प्रकृतिस्थ हो, चित्र को केंद्र बनाकर, एकांत का आह्वान करना होगा। यही उसने किया। चुप्पी के दो-चार क्षण मिल जाते तो वह सफल हो जाती पर तभी पीछे से खिर्र-खिर्र करती आवाज गूंजी, "बहुत ही रोमांटिक चित्र है।"

माधवी ने जवाब नहीं दिया जैसे सुना न हो।

"एकदम बूर्जुआ मानसिकता," आवाज फिर किनकिनायी जैसे कोई नाखून से दीवार का पलस्तर खुरच रहा हो या ताल के पानी में कंकर फेंक रहा हो। किर्र-किर्र ! माधवी बर्दाश्त नहीं कर पाती, बेसुरी, पुनरावृत्तिपूर्ण आवाजें। नल से टपकता टप-टप पानी, फोन की टन-टन बजती घंटी। और उसकी निजी दुनिया में दखल देती बदनुमा आवाजें।

वह चित्र के सामने से हट गयी। आग के ताल का पानी सूखकर नीला कांच बन गया था; ऊपर चमकते सूरज की कौंधती गरमाई परत-दर-परत पुता सफेद रंग ! किनारे खड़े मानवतरु, क्रीडारत धनिक युवक-युवतियां !

कुछ दूर चलकर वह दूसरे चित्र के सामने जा खड़ी हुई। नाम था अनाथालय। बर्फ से अटी सड़कों के बीच चकोर पाटों से बनी लंबी-चौड़ी इमारत। सब दरवाजे बंद। गहरे नीले रंग की पोशाक में सामने खड़ी एक बच्ची। अकेली। अकेलेपन की वजूहात से अनजान। सवालिया निगाहें। क्यों, अकेलापन क्यों ? यह अथाह उदासीनता क्यों ? हताशा में से झांकती हैरत का अद्भुत चित्रण।

"क्यों ?" अनायास माधवी के मुंह से निकल गया।

"क्या ?" पीछे से कौशल की आवाज किरकी, "क्या कह रही हैं ?"

सहसा भयावह अकेलेपन से ग्रस्त उस बालिका से उसे ईर्ष्या हो आयी। मैं अकेले रहना चाहती हूं, अकेले रहना चाहती हूं, सिर की नसें फड़क-फड़ककर कहने लगीं पर मुंह से उसने कुछ नहीं कहा; सोचा जवाब न मिलने पर शायद वह चुप हो जाये, चित्रकार और उसके बीच दुबारा रिश्ता जुड़ जाये। पर कहां ?

"आह, भयानक, अति भयानक!" कौशल कह रहा था, "जानती हैं, मेरे लिए सिर्फ भयानक ही सुंदर है!"

माधवी चुप रही।

"नीला रंग ज्यादा शोख है। सुकून में शोर पैदा कर रहा है। नहीं ?" कौशल ने कहा, "मैं होता तो गाढ़ा सलेटी लगाता।"

माधवी की आंखों को नीला रंग कचोट गया। उसकी जगह उसने गाढ़े सलेटी रंग की कल्पना करनी चाही तो कर न सकी, बस चित्र की रागात्मकता टूट गयी।

"लड़की की आंखें देखीं आपने ?" कौशल ने कहा, "पृष्ठभूमि का सब-कुछ लुप्त हो जाये तब भी इसकी आंखें हमारा पीछा करती रहेंगी, नहीं ?"

माधवी कुछ नहीं बोली। चुप रहकर ही उन आंखों को अपने भीतर उतारा जा सकता था।

"नहीं ?" कौशल की आवाज ऊपर उठी, "क्या हुआ ? आप कुछ कह क्यों नहीं रहीं ?"

"हां," माधवी ने कह दिया। शायद अब वह चुप हो जाये।

"आप इतनी चुप-चुप क्यों हैं ?" कौशल की आवाज नीचे नहीं आयी।

"आप पांच मिनट के लिए चुप नहीं रह सकते ?" माधवी ने आजिजी से कहा।

"क्यों, क्या हुआ ?"

"मैं चित्र देखना चाहती हूं, खामोशी में," माधवी ने कहा और समझा कि कौशल चुप हो भी गया तो खामोशी अब कायम नहीं होगी। पांच मिनट तो नहीं, एक मिनट वह जरूर चुप रहा पर चुप्पी बेआवाज न बनी क्योंकि हर लम्हा उसे लगता रहा कि वह अब बोला और अब बोला। मुश्किल से उसने चित्र के साथ तारतम्य बिठलाया था कि कौशल बोल पड़ा, "मुझे लेखक की जगह चित्रकार होना चाहिए था, रंगों का मेरा मिलान लाजवाब है।"

माधवी चुप्पी को थामे रही।

"मैं होता तो लड़की की पृष्ठभूमि में इमारत को और ऊंचा बनाता, तब उसकी तुलना में लड़की की असहायता अधिक प्रभावशाली होती, "कौशल ने कहा।

"मैं-मैं-मैं !" सहसा माधवी ने तेजी से पीछे घूमकर कहा, "मैं के अलावा आप कुछ और कहते हैं !"

कौशल टुकुर-टुकुर उसे ताकता रहा।

माधवी का मन हुआ उसे धक्का देकर नीचे गिरा दे। पनीली आंखों और कचर-कचर चलती जबान से मढ़े चेहरे को जूतों से रौंदकर हमेशा के लिए खामोश कर दे और फिर उस खामोशी में आराम से चित्र को देखे, सुने और आत्मसात् करे। दांत भींचकर उसने अपने को संभाला और दो कदम पीछे हट गयी। नजर सामने टंगे चित्र पर पड़ी। बमबारी के बाद। हां, ऐसी ही विभीषिका मिटा सकती है कौशल के अनचाहे अस्तित्व को। ऐसा ही विनाश वह देखना चाहती है, ऐसी ही खामोशी के लिए तरस रही है।

हिंसा से जलती आंखें उसने कौशल की तरफ घुमायीं और कहा, "मैं अकेली रहना चहती हूं।"

कौशल की आंखें उसकी आंखों से बंध गयीं। "तो ?" उसने कहा।

माधवी के सिर खून चढ़ गया। "सुना नहीं आपने, मैं अकेली रहना चाहती हूं। आप चले जाइए यहां से !"

"और न जाऊं तो ?" कौशल ने चुनौती दी।

दोनों हाथों की मुट्ठियां भींचकर माधवी ने ऊपर उठायीं और उसके सिर पर दे मारीं। "जाइए यहां से !" वह चीखी और स्तब्ध रह गयी। देखा, गैलरी में खड़े तमाम प्राणी एक कदम उसकी तरफ बढ़े हैं और उसे घूरते हुए जड़ रह गये हैं।

क्या हुआ मुझे ? पागल तो नही हो गयी ! शिकारियो से घिरे जंगली जानवर की तरह उसने पगलायी नजर चारो तरफ डाली और बीच मे खाली जगह देखकर बेतहाशा भागती हुई कमरे से बाहर हो गयी।

दौड़ती हुई वह सड़क तक आयी और धम् से पटरी पर बैठ गयी। आसपास स्कूटर-टैक्सी नही थे *वरना किसीमे चढ गयी होती और अब तक*···

उसने देखा, धीमे-धीमे कदम बढ़ाता कौशल उसकी तरफ बढा चला आ रहा है। उसने चाहा कि उसके पास पहुंचने से पहले उठकर भाग जाये पर उठा नही गया। कौशल आकर उसके बराबर मे बैठ गया। वह शर्म से गड गयी। नजर उठाकर उसकी तरफ नही देखा।

"मुझे चले जाना चाहिए था," कौशल ने कहा।

वह एक शब्द भी नही कह पायी। सिर कुछ और झुक गया।

"दरअसल," कौशल ने कहा, "आपका मैं मेरे मैं से बडा है।"

माधवी ने झुका सिर गोद मे बंधे अपने हाथों पर टिका दिया। थकान के मारे उसकी आखें मुंद गयी थी और उनमे से पानी बाहर बह आया था, आंसुओ की तरह। वह नही चाहती थी कौशल उन्हें देखे। उसके बदन ने ऐसी कोई हरकत नही की जिससे अनुमान लगाया जाता कि वह रो रही है। फिर भी कौशल का हाथ आकर उसकी पीठ पर टिक गया। और टिका रहा। इतनी ऊर्जा उसके क्लात शरीर मे नहीं थी कि उसे झटककर उठ खड़ी होती।

वह बैठी रही।

हाथ उसकी पीठ पर चिपका रहा।

यह क्या हो गया ? वे दोनों प्रेमियों की तरह सडक के किनारे कैसे बैठे रह गये ? इसका स्पर्श हमेशा उसके भीतर जुगुप्सा पैदा करता आया है पर आज···

लग नही रहा यह किसी पुरुष का हाथ है। पुरुष के रूप में इसकी कल्पना नही की जा सकती, बदन पर तिलचट्टे रेंगने लगते है। पर इस वक्त पीठ पर रखे हाथ मे केवल मानवीय स्पर्श है। उसके जानवरो जैसे व्यवहार का भी इसने बुरा नही माना। उसका व्यवहार और जानवरो जैसा ! क्या होता जा रहा है उसे ? आह, बदन टूट रहा है, एक आनंदमयी पीड़ा के साथ जैसे··· ! नही, नही, क्या ऊलजलूल सोच गयी वह। उच्छृंखल उत्तेजना, हिंसा, आदिम आवेश, ये उसके चरित्र के *अग तो नही।* पर ''शिष्ट बाह्य स्वरूप के भीतर दबा लावा फूटता है तो ऐसी ही आनदयुक्त क्लाति बदन को दुलार देती है। चेतना को अबाध बहने देने मे अपूर्व आनद है और···खतरा भी। कौशल का हाथ झटक देना चाहिए। उठकर यहां से भाग जाना चाहिए। यह आदमी उसके भीतर सोये आदिम हिंसा के भाव को जगाये बिना नही मानेगा और वह···

फिर भी वह बैठी थी।

हाथ उसपर हावी था।

कितना समय बीता वह जान नहीं पायी, पांच-सात मिनट या शायद इससे भी कम। पर लगा, दुपहर कई बार रात में तब्दील होकर लौट आई है।

बस की पास आती गड़गड़ाहट सुनकर सिर उठाया और सुस्त भाव से उठकर खड़ी हो गयी। हाथ पीठपर लिसड़ता हुआ नीचे गिर गया। वह आहिस्ता-आहिस्ता बस की ओर बढ़ गयी। मुड़कर कौशल की तरफ नहीं देखा और न उससे कुछ कहा। हां, महसूस जरूर किया कि वह उसके पीछे आ रहा है।

जब वह बस में चढ़ी तब भी वह साथ रहा होगा क्योंकि महिलाओं के लिए आरक्षित सीट पर बैठने पर उसने देखा कि वह उसके बराबर में खड़ा है।

बरबस नजर ऊपर उठ गयी। पान की पीक से सनी मुस्कराहट आंखों में चुभ गयी। यह इस बस में किसलिए चढ़ गया? यह तो इसके घर से ठीक विपरीत दिशा में जाती है। कहीं उसे घर तक पहुंचाने तो नहीं जा रहा! मन हुआ कहे, मेरे पीछे-पीछे किसलिए चले आ रहे हैं, अपने घर जाइए पर कह नहीं पायी। बस मुंह दूसरी तरफ घुमा लिया और खिड़की से बाहर देखने लगी। एक-दो स्टाप आगे चलकर बस खचाखच भर गयी। पीछे से भीतर घुसने वाले और आगे से उतरने को व्याकुल यात्रियों की निरंतर धकापेल में बराबर में खड़ा कौशल बार-बार माधवी के बदन से टकरा जाता। कई दिन के लगातार इस्तेमाल से बासी हो आये कपड़ों में गंधाती पसीने की बू सूंघने पर मजबूर, माधवी का सर्वांग वितृष्णा से कांप उठता। मन होता चीखकर कहे, यहां मेरे सिर पर क्यों लटक गये, आगे बढ़िए या उतर जाइए बस से। पर चीखना तो दूर, उसने होंठों को खुलने तक नहीं दिया। चुपचाप उसे सहती रही। एक बार के हिंसात्मक प्रदर्शन के लिए अभी न जाने कितनी सजा प्रायश्चित्त मानकर स्वीकार करनी होगी।

बस स्टॉप पर उतरी तो कौशल साथ उतरा और उसके पीछे-पीछे घर तक पहुंच गया। मुंह घुमाकर एक बार भी माधवी ने उसकी तरफ नहीं देखा पर आवाज ऊंची करके साथ आने से मना भी नहीं किया। जैसे कुछ न कहने की कसम खा ली हो। यह प्रार्थना जरूर करती रही कि घर पहुंचे तो राकेश पहले से आया हुआ हो।

दरवाजा राकेश ने खोला। "बहुत देर कर दी," उसने कहा कि नजर पीछे खड़े कौशल पर पड़ी।

इसे कहां से पकड़ लायीं, सवाल उसके चेहरे पर खिंच गया। माधवी से उसकी नजरें मिलीं, राकेश की भौंहें जरा ऊपर उठीं और बहुत देर बाद माधवी के होंठों पर क्षीण-सी मुस्कराहट दौड़ गयी। वह अंदर आ गयी।

"नमस्कार," राकेश ने कौशल से इतना ही कहा पर वह भी माधवी के

पीछे भीतर आ गया।

"प्रदर्शनी कैसी रही ?" राकेश ने माधवी से पूछा।

माधवी आरामकुर्सी में पसर गयी। " बहुत बढ़िया, थक गयी," उसने कहा।

"तुमने चाय पी ली ?"

"अभी नही, बस बन रही है।"

" वही चाहिए,"माधवी ने कहा और आंखें बंद कर ली।

कमरे मे चुप्पी छा गयी। किसीने कौशल को बैठने के लिए नहीं कहा फिर भी वह एक कुर्सी मे धंस गया और बोला, "मैं भी प्रदर्शनी देखने गया था, माधवी जी से वही मुलाकात हो गयी।"

राकेश ने नही पूछा कि मुलाकात हो गयी सो तो ठीक है पर साथ क्यों चले आये। माधवी ने आखें खोलकर एक बार कौशल की तरफ देखा जरूर पर कहा उसने भी कुछ नही।

"एक किताब लेनी थी, इसीलिए चला आया," कौशल ने ही कहा, फिर माधवी से बोला, "दे रही हैं ··?"

"कौनसी किताब ?" माधवी ने बीच में कहा, "मुझसे तो किसी किताब के बारे में आपने कहा नही।"

उसके झूठ को नकारकर माधवी को अच्छा लगा। राकेश धीमे से हँस दिया।

"दॉस्तॉयेव्स्की की ईडियट," कौशल ने थूक घोटकर कहा, "है न आपके पास ?"

"है तो पर चिथड़ा-चिथडा। सोलह बरस की उम्र मे खरीदी थी, अब तो यह भी याद नहीं कि है कहा।"

"ओह," कौशल ने अचकचाकर कहा, "तो चलू ?"

"हां।"

"चाय बन रही है, पीकर चले जाइएगा," राकेश ने हँसकर कहा, "तब तक शायद किताब भी मिल जाये, क्यों माधवी ?"

"मेरा इरादा इस वक्त उसे ढूढने का नहीं है," माधवी ने कहा और राकेश से नजर मिलने पर दोनो मुस्करा दिये।

"कोई बात नही। मैं फिर ले लूगा," कौशल ने कहा।

"ठीक है," राकेश एक बार फिर हँस दिया जैसे कह रहा हो, ठीक है, इस तरह और एक बार घर आने का बहाना हाथ मे रहेगा।

राकेश को हँसता देख माधवी भी हँस दी।

कौशल ने अचकचाकर बारी-बारी दोनो को देखा, कुछ क ने को हुआ कि चाय आ गयी। जल्दी-जल्दी एक प्याला हलक के नीचे उतारा अ र उठ खड़ा हुआ। माधवी और राकेश सोफे पर पसरे सुस्ती से छोटी-छोटी चु्‍ कियां भर रहे थे।

"मुझे काम है, चलूं..." कौशल ने कहा और उनके कुछ कहने से पहले बाहर भाग लिया।

माधवी ने निष्कृति की सांस ली।

"लगता है, अनागत में तुम्हारी दिलचस्पी कम हो गयी है," राकेश ने कहा।

"बहुत ही नामाकूल आदमी है, प्रदर्शनी से पीछे लटका हुआ चला आया।"

"बेचारा! कुछ लोग होते ही अनागत के लिए हैं। आज उन्हें बर्दाश्त नहीं किया जा सकता।"

"छोड़ो," माधवी ने कहा "एक-एक प्याला चाय और हो जाये।"

पर छोड़ो कह देने से चीजें छूट तो नहीं जातीं। चाय खत्म भी नहीं हुई थी कि माधवी दुबारा खिन्न हो गयी। फिर न जाने कहां से एक मक्खी आकर उसके कान के पास भिनभिनाने लगी। हाथ मारकर एक कान के पास से भगाती तो दूसरे कान के पास भिनभिना उठती।

"क्या मुसीबत है!" कहकर उसने चाय का प्याला नीचे पटक दिया।

"बहुत असहिष्णु हो," राकेश ने कहा, "मेरे प्याले में मक्खी गिर भी जाये तो इतना परेशान न होऊं।"

"प्याले से निकालकर बाहर फेंकी जा सकती है पर यह जो कान के पास भिनभिनाये जा रही है..."

"उसकी तरफ ध्यान मत दो।"

"मैं दे रही हूं या यह सिर पर सवार हुए चली जा रही है!"

"मक्खीमार लाओ, कोशिश करो, शायद मर जाये।"

"यानी तुम मेरी मदद नहीं करोगे," माधवी ने रूठे अंदाज में कहा।

"एक को मारूंगा तो दूसरी आ जायेगी," राकेश ने हंसकर कहा, "इससे अच्छा है, तुम सबसे उदासीन हो जाओ।" फिर सहसा गंभीर होकर बिना संदर्भ जोड़े, "जिनकी अपेक्षा अनागत से है उनसे अनागत को निबटने दो, तुम अपने तक सीमित रहो।"

"क्या करूं इस कौशल कुमार का?"

"जहर दे दो!" राकेश ने कहा।

माधवी ने इंतजार किया कि वाक्य पूरा होने पर राकेश हँसेगा पर वह नहीं हँसा। माधवी भी तो नहीं हँसी।

कौशल भागता हुआ बस-स्टॉप पर पहुंचा जैसे हथकड़ियां संभाले पुलिस के सिपाही नहीं, पूरा कैदखाना उसका पीछा कर रहा हो। किसी भी वक्त उसे घेर-कर चार दीवारें खड़ी हो सकती हैं और उनके भीतर, कौशल की मौजूदगी से

बेखबर, एक स्त्री-पुरुष युग्म छोटी-छोटी आभिजात्य चुस्कियां लेकर चाय पीने लग सकता है। उसके चारों तरफ छाये अटूट सन्नाटे में वह अपने 'मैं' को मरी मछली की तरह हाथ में उठाये, उनका ध्यान आकर्षित करने की नाकाम कोशिश करता रहेगा और बाहर भागने पर मजबूर हो जायेगा। उस घर से बार-बार बाहर भगा दिया जाना उसकी नियति है। हर बार···दरअसल आज गलती उसकी थी। इस वक्त उसके घर नहीं जाना चाहिए था। उसे क्या पता था कि पति घर पर होगा। व्यापारी आदमी को शाम पाच बजे घर लौट आने की जरूरत क्या है!

क्या था माधवी और उसके बीच? उसके नहीं, माधवी और उसके पति के बीच? *कौशल जैसे प्याले मे गिरी मक्खी हो। उसे देखकर वे चीखे नहीं थे, यह उनकी शालीनता थी। मक्खी-पड़ा प्याला अलग हटाकर अपने-अपने प्यालों से* चाय पीते रहे थे। लग रहा था वे अलग-अलग नहीं, एक ही प्याले से चाय पी रहे हैं और कौशल छटपटाकर बाहर निकल गया है। भिनभिन करके पूरी कोशिश कर रहा है कि उनके सामीप्य में अवरोध पैदा कर दे पर उसकी भिनभिनाहट उनका मनोरंजन कर रही है, सामीप्य का गठबंधन और मजबूत कर रही है। जुगुप्सा, वितृष्णा, हिंसा कुछ भी तो नहीं था जो उसके अस्तित्व-बोध को बनाये रखता।

माधवी और राकेश। पत्नी और पति। कलाकार और व्यापारी! उसने सोचा नहीं था, उनके बीच इतनी उन्सियत और हमदर्दी हो सकती है।

माधवी ने कहा था, मुझे व्यवसाय में जरा दिलचस्पी नहीं है। राकेश कह रहा था, लेखन के बारे मे कुछ नहीं जानता। फिर···

नहीं-नहीं, माधवी के जीवन मे शून्य है, बहुत बड़ा शून्य है! बौद्धिक अनुकूलता का अभाव आदमी को बिल्कुल अकेला कर देता है। मन की बात मैं बहुत कम किसीसे कह पाती हूं, उसने कहा था। शिष्ट-सभ्य-सर्द व्यवहार, यही हमारा जीवन है, *उसने कहा था।* वह *जानता है, उसकी बौद्धिक आवश्यकताओं और* चेतना की मांग को सिर्फ कौशल पूरा कर सकता है।

शिष्ट-सभ्य समाज के नियम-कायदों के नीचे दबा पैशन, उद्दाम आवेग, लेन-देन से परे सुलगता आदिम आवेश, यही तो पूंजी है लेखक की, माधवी की; और यह पूंजी कौशल की कर्जदार है। आज गैलरी के भीतर···उसने हाथ लगाकर अपना सिर सहलाया···किस बेहिस्स उन्माद के साथ माधवी ने भिंची मुट्ठियों से *वहां वार किया था!* वह दहल गया था, चोट से नहीं, घटना की आकस्मिकता से। *जैसे बांहों में जकड़कर मसल डाला हो सहसा किसीने। तृष्णा कहो या* वितृष्णा, एक ही बात है। जो पैशन मैंने उसके अंदर पैदा कर दिया, उसका पति···

पर···क्या था उन दोनों के बीच, ठंडे पानी के सोते-सा, जिसमे दोनों के पाव

साथ-साथ लटके थे; हाथ एक-दूसरे को छुए बिना भी पानी से क्रीड़ा करते ऐसे मालूम पड़ रहे थे जैसे उंगलियों में उंगलियां फंसाये साथ जकड़े हों। और कौशल! पानी के किनारे मच्छर होते हैं न और भुनगे। हाथ से आदमी उन्हें उड़ाता रहता है, न उड़ें तो खीज उठता है पर इससे ज्यादा उनकी तरफ ध्यान नहीं देता।

देख लूंगा, कौशल ने कहा, इसे भी देख लूंगा। सब झूठ है, ढोंग, बड़े लोगों का आभिजात्य। पति-पत्नी कायदे से 'ड्राइंगरूम' में बैठकर, साथ-साथ चाय पियेंगे और मंद-मंद मुस्करायेंगे! दिखावा! पाखंड! असली वह है जो कौशल और माधवी के बीच घटा। चोट पहुंचाकर ही प्रेम की अभिव्यक्ति होती है। आदमी जिसे चाहता है उसे मारता ही है। उसे या खुद को। पहले उसे फिर खुद को या पहले खुद को फिर उसे। अपना-अपना स्वभाव है। मेरा स्वभाव है कि जो मुझे स्नेह दे, मुझसे सहानुभूति से पेश आये, मेरी मदद करे, मैं उसे मारता हूं। आपका स्वभाव है कि आप जिसे स्नेह देती हैं उसे मारती हैं। स्नेह! एक बेमानी शब्द। इसका प्रयोग औरों के सामने किया जाता है। मेरा मतलब प्रेम से है। प्रेम में पुरुष दूसरे को मारता है, स्त्री खुद को। पर उस चरम सत्य तक पहुंचने से पहले काफी ढोंग चलता है दोनों के बीच। स्त्री तिरस्कार का ढोंग करती है, पुरुष बलिदान का। वास्तव में, स्त्री चाहती है मृत्यु, क्षणिक नहीं सार्वकालिक। और पुरुष बनता है उसका सहायक। सैक्स द्वारा मिलती है क्षणिक मृत्यु पर प्रेम सार्वकालिक मृत्यु प्रदान करता है। स्त्री के लिए प्रेम का अर्थ ही है आत्मपीड़न। वितृष्णा के योग्य पात्र से प्रेम करने से भयंकर आत्मपीड़न कहां मिलेगा। मैं क्या जानता नहीं, मैंने जैनेंद्र पढ़ा है।

'मैं के अलावा आप कुछ नहीं कहते!' माधवी का फिकरा बिजली की कड़क की तरह गूंजा।

नहीं, मैं 'मैं' के सिवाय कुछ नहीं कहता। मैं न समाज-सुधारक हूं, न समाज-सेवी, यहां तक कि सामाजिक प्राणी भी नहीं हूं। जो कुछ मेरे बाहर घटता है, जब तक मेरे 'मैं' का हिस्सा न बन जाये, मैं उसे कागज पर नहीं उतारता। हर कलाकार यही करता है, बशर्ते कि झूठ न बोले। मैं झूठ बोलता हूं पर साहित्य को लेकर नहीं। मैं रचना करता हूं तो अपने बारे में, गंतव्य की खोज करता हूं तो अपने तईं, मौजूदा समाज का विनाश चाहता हूं, इसलिए क्योंकि मैंने यहां दुख भोगा है। मैं प्रतिबिंब हूं पूरे समाज का, प्रतिनिधि हूं उसका; शोषित, कुंठित, जिसे एक-न-एक दिन विद्रोह करना ही है।

मैं पक्षधर हूं, अभिव्यंजक हूं, प्रेमी हूं अपने मैं का। एकनिष्ठ प्रेम सिर्फ अपने से किया जाता है। दूसरे को अपने में समाहित करने की इच्छा प्रेम कहलाती है और अपने में निष्ठा हुए बगैर यह संभव नहीं। मैं मामूली आदमी नहीं हूं। मैंने अपराध किये हैं, करता हूं; झूठ बोलता हूं, धोखा देता हूं। सब करते हैं, सब

खोलते हैं, सब देते हैं। पर वे अपराधी महसूस नहीं करते, मैं करता हूं। समाज का अपराध-बोध मैं अपनी रगों मे लिये भटक रहा हूं, इसलिए आपका कर्तव्य है कि आप···जिसे मैं प्रेम करता हूं, अपने 'मैं' मे मिला लेना चाहता हूं—मुझे मेरा प्राप्य दें। और आप देंगी, अवश्य देंगी। मैंने कहा न, मैंने जैनेंद्र पढा है।

बारह

राकेश को सुबह जल्दी उठने की आदत है। आख खुलने के बाद बिस्तर पर पड़ा नही रह सकता। माधवी की बात बिल्कुल अलग है। उसे यही लम्हे सबसे खुशगवार मालूम पडते हैं, जो बिस्तर पर अलस लेटे नीद की मीठी खातिरदारी मे या सहला-दुलराकर उसे विदा देने मे गुजरते हैं।

रात सोने से पहले राकेश उसके साथ था, पास नही साथ। सुबह होने पर पूरी तरह जगने से पहले वह उस साथ को बनाये रखना चाहती थी।

आज जिद करके उसने उसे बिस्तर छोडने नही दिया। चाय बनाकर हरिचरण वही दे गया। राकेश ने फोन बराबर मे खीचा तो माधवी ने परे सरका दिया। राकेश का एक हाथ अपने हाथ मे ले लिया, दूसरे में प्याला थामे घूट भरती रही।

"आज इतवार नही है," राकेश ने याद दिलाया। वह भी चाय के घूंट भर रहा था पर उस इत्मिनान से नही जिससे माधवी चुस्कियां ले रही थी।

"तुम्हें याद है," माधवी बोली, "शादी की अगली सुबह, चाय पीते हुए तुमने मेरा हाथ छोड़कर नही दिया था। प्याला खाली होने पर पूछा, कहा रखू तो तुमने कहा, फेंक दो। मैंने फेंक दिया था और प्याला जमीन पर गिरकर चकनाचूर हो गया था। याद है ?"

राकेश हंस दिया। "क्या कहती हो ?" उसने कहा, "फेंक दू इसे ?"

"फेंक दो।"

"सोच लो, काफी कीमती है।"

"होने दो।"

"अच्छा, पहले तुम फेंको।"

कुछ क्षण बीत गये। किसीने प्याला नही फेंका। हा, दो-चार मिनट बाद, दोनों एक खिसियानी-सी हँसी हँस दिये। "देखा, कितना पतन हो गया हमारा," माधवी ने कहा, "एकदम वस्तुलोभी मध्यवर्गीय जीव बन गये," और सभालकर

अपना प्याला विस्तर पर टिका दिया। हाथ फिर भी नहीं छोड़ा। राकेश ने हँसकर अपना प्याला उसके प्याले से सटाकर रखा, कहा, "इरादा क्या है तुम्हारा?" और उसे बांहों में घेरकर पास खींच लिया।

तभी नीचे के घर में जबरदस्त शोर उठ खड़ा हुआ।

"पकड़ो-पकड़ो ! मार दिया ! हाय, मार दिया !" की चीखों ने आसमान सिर पर उठा लिया।

भागकर माधवी और राकेश नीचे उतर आये। तब तक पास-पड़ोस के सभी मर्द-औरतें वहां जमा हो चुके थे। मकानमालिक की बूढ़ी मां छाती पीट-पीटकर जोर से विलाप कर रही थीं, "हाय ! मार दिया ! बरबाद कर दिया ! मैं लुट गयी !"

उनके रोने-चीखने के शोर के ऊपर आवाजें उठाकर पड़ोसी अलग चीख रहे थे, "क्या हुआ ? हुआ क्या ?"

"कीड़े पड़ें नासपीटे के ! कोढ़ फूटे !" सहसा फुंकार मारकर माताजी श्राप देने लगीं।

"पुलिस ! पुलिस !" घर के कर्ता समाधान खोजने लगे।

"क्या हुआ ? हुआ क्या ?" पड़ोसी अपना राग अलापते रहे।

"मार डाला रे···ए ! मार डाला···आ !" माताजी ने नये सुर-ताल में विलाप आरंभ किया।

माधवी को लगा, जरूर किसीकी हत्या कर दी गयी है। पर किसकी ? परिवार के सभी सदस्य तो सेहतमंदी के साथ चीखते-चिल्लाते चारों तरफ मंडरा रहे हैं। घूर-घूरकर वह उन्हें देखने-पहचानने की कोशिश करने लगी। शायद कोई बाशिंदा लापता हो। तब तक पड़ोसियों की लगातार 'क्या हुआ' की पुकार ने जवाब हासिल कर लिया था। पता चला कि माताजी के गले से किसीने तीन तोले सोने का मोटा हार खींच लिया है और पिछवाड़े की पंचफुटी दीवार फांदकर भाग गया है। माताजी बेचारी उस समय अपने आंगन की तुलसी को जल दे रही थीं। उनके सिवाय घटना का और कोई साक्षी नहीं है।

खोदा पहाड़, निकला चूहा ! माधवी और राकेश घर लौट आये।

पर नीचे जमा भीड़ के लिए यह हादसा हत्या से कम सनसनीखेज और दुखांत नहीं था। इन्सान का मरना-जीना तो भगवान के हाथ है, जी कड़ा करना ही पड़ता है। पर सोने का जेवर ! अपने हाथ की कमाई खोकर कोई कैसे संतोष कर ले। सारी भीड़ बारी-बारी से कयास लगा रही थी कि चोर कौन हो सकता है और घर के कर्ता पुलिस बुलाकर एक-एक को पिटवाने की धमकी दे रहे थे।

घंटे-भर के अंदर पुलिस सब-इंस्पेक्टर और सिपाही तफतीश के लिए आ पहुंचे। माधवी और राकेश को भी बुलवाया गया। पहले माधवी नीचे उतरी।

"अपने नौकर का नाम-पता बतलाइए," इंसपैक्टर ने उससे कहा।

"वह क्यों ? मेरे नौकर का इससे क्या तअल्लुक है ?" उसने अचरज के साथ पूछा ?

"सभी का नाम-पता लिखा जा रहा है।"

"अच्छा ! मेरा लिख लिया ?"

"आपका लिखकर क्या करेंगे। जिनपर शुवहा है उनका लिख रहे हैं।"

"कमाल है। मेरे नौकर पर शुवहा कैसे हो गया ? वह उस वक्त घर के अंदर काम कर रहा था।"

"ऐसा है तो वह खुद पूछताछ के दौरान बतला देगा, आप परेशान क्यों होती हैं ?"

"जी नहीं ! आप उससे पूछताछ नहीं करेंगे। मासूम लोगों को परेशान करना पुलिस ने अपना धंधा बना रखा है।"

पर तभी राकेश नीचे उतरा और आते ही उसने हरिचरण का नाम-पता दर्ज करा दिया। साथ में इतना जरूर कहा कि वह उस वक्त उसे चाय दे रहा था और वह उसकी जिम्मेवारी लेने को तैयार है। कहकर वह ऊपर चला गया। माधवी वहीं बनी रही।

"यह हुई न कायदे की बात !" कहकर सब-इंस्पेक्टर माधवी की तरफ पीठ घुमाकर माताजी से मुखातिब हुआ।

"आप उसका हुलिया बतला सकती हैं ?"

"हां जी, बिल्कुल !" माताजी ने जोश के साथ कहा, "खूब लंबा-तगडा था जी ! एक छलांग में दीवार फांद गया।"

"कपड़े क्या पहने था ?"

"सफेद कमीज, काली पैंट, और क्या ?"

"दिल्ली शहर की आधी आबादी यही पहने होगी," माधवी बोल पडी।

"आप चुप रहिए," इंस्पेक्टर ने उसे घुडका और माताजी की तरफ पलटा, "आप उसे पहचान सकती हैं ?"

"हां जी, बिल्कुल ! पैंचान क्यों नही सकती ?"

इंस्पेक्टर बडी अदा के साथ मुस्कराया और अपराधियों की चित्र-एलबम माताजी के सामने खोलकर रख दी। माताजी ने एक नहीं, पूरे तीन अपराधी उसमें से पहचान लिये।

"तीन आदमी थे ?" माधवी फिर बोल पडी।

"आप चुप रहिए ना," इंस्पेक्टर फिर गरजा और माताजी से बोला, "तीनों में से कौन था, ठीक से पहचानकर बतलाइए।"

"तीनों एक जैसे तो हैं," माताजी ने कहा।

"नहीं, तीनों अलग-अलग हैं। ठीक से देखिए।"

"क्या ठीक से देखूं ! चश्मे से जित्ता दीखेगा उत्ता तो देखूंगी। थारी तरह जवान तो हूं नहीं," माताजी ने नाराज होकर कहा।

माधवी को लगा, कोई मजाहिया फिल्म चल रही है। माताजी को जिंदगी में पहली वार मंच के बीचोंबीच खड़े होने का मौका मिला है और वे उसका भरपूर फायदा उठा रही हैं। वह जोर से हँस पड़ी।

तभी पड़ोस के नौकर को साथ लिये घर का बड़ा लड़का भीतर घुसा। उसे देखना था कि माताजी उछल पड़ीं, "योई है ! योई है !"

झटके के साथ कामेडी फिल्म त्रासदी में वदल गयी।

माधवी को हँसी रोकने में वक्त लगा। धक्का खाकर उसने देखा, वह लंबा-तगड़ा जवान लड़का सफेद कमीज और काली पैंट पहने हुए है !

"योई है ! योई है !" उसकी तरफ उंगली उठाये माताजी चीखे जा रही हैं।

लड़का भौंचक उनकी तरफ ताक रहा है। चेहरे पर अजीव वेवकूफी भरी मासूमियत का भाव है। शरीर के अनुपात में चेहरा एकदम नन्हा-सा है, वुद्धू वचपने की छाप लिये। उसे ऊपर से नीचे तक तौलता इंस्पेक्टर मूंछों-ही-मूंछों में मुस्करा रहा है, क्रूर विलाव की तरह। कांस्टेवल जोर-जोर से डंडा हवा में घुमा रहा है, नाटकीय चेतावनी देता हुआ।

झपटकर घर के वड़े लड़के ने नौकर को दवोच लिया और धक्का देकर जमीन पर गिरा दिया। फिर उसकी पीठ पर पैर रखकर ऐसे खड़ा हो गया जैसे किसी खूंखार जानवर का शिकार खेलकर चुका हो।

"कैसे कह सकती हैं आप ! अभी तो फोटो में आप किसी और को पहचान रही थीं !" घवराकर माधवी चीख पड़ी, "इंस्पेक्टर ! इंस्पेक्टर ! इन्हें कैसे मालूम ? तुलसी को जल देते हुए इनकी आंखें वंद थीं। मैं रोज ऊपर से देखती हूं, ये आंखें वंद करके आरती गाती हैं और तुलसी को पानी देती हैं। एक सेकंड के अंदर ये किसीको कैसे पहचान सकती हैं !"

इंस्पेक्टर गुपचुप मुस्कराता रहा।

"सव पता चल जायेगा !" कांस्टेवल ने जोर से डंडा हवा में घुमाकर कहा।

माधवी का खून जम गया।

वे लोग उसे पकड़कर थाने ले गये।

"राकेश ! राकेश !" चिल्लाती माधवी ऊपर भागी, "जल्दी थाने चलो। वे लोग वरावर के नौकर को पकड़कर ले गये। जरूर उससे मारपीट करेंगे। वह वेकसूर है।"

राकेश ने उसकी तरफ अचरज से देखा। उसकी आंखों में हमदर्दी उभर

आयी, आवाज बेहद कोमल हो गयी। "हम इसमें क्या कर सकते हैं," उसने कहा, "हमारी बात वे क्यों सुनेंगे ? रपट हमने तो नहीं लिखवायी और न हमारा उस आदमी से कोई रिश्ता है।"

उसकी बात पूरी भी नहीं हुई थी कि माधवी खटाखट सीढ़ियां उतर गयी और मकानमालिक से दुबारा जिरह करने लगी।

उसकी बदहवास हालत पर वे हंस ही तो पड़े। बोले, "पूछताछ नहीं होगी तो चोर का पता कैसे चलेगा ?"

"पूछताछ का यह मतलब तो नहीं कि बेकसूर आदमी को मारा जाये," माधवी ने कहा।

"अजी कोई नहीं मरता ऐसे ! और आपको कैसे पता चला वह बेकसूर है ?"

"मुझे तो यह भी नहीं पता कि आप बेकसूर हैं पर इसीसे क्या पुलिस आपको पकड़ सकती है ?"

"आप कहना क्या चाहती हैं ?" मकानमालिक ने तमककर कहा।

"मेरे और आपके सामने आपकी मा ने चार अलग-अलग आदमियों को चोर की तरह पहचाना, फिर उनकी नजर पर कैसे यकीन किया जा सकता है ?"

"हम कहा कह रहे हैं, किया जा सकता है," उन्होंने कहा तो पास बैठी उनकी पत्नी बोल उठी, "अजी माजी तो एक फुट पर खड़े अपने मांजाये को नहीं पहचान सकती।" और पति-पत्नी ठहाका मारकर हंस पड़े।

"बेकसूर आदमी को मार पड़वायेंगे तो आपका भला नहीं होगा," माधवी ने कहा तो खुद महसूस किया, वह किसी मजलूम भिखारी की तरह मिमिया-भर रही है, बस। उसकी जगह कौशल होता तो ··

वहां से उठकर वह बराबर वालों के घर जा पहुंची।

घर की मालकिन सोफे पर पसरी चाय पी रही थी। उसे देखते ही बोली, "सुना आपने, सुबह-सुबह क्या फसाद हो गया। सुबह की चाय अब जाकर नसीब हुई है।"

"आपने उन लोगों को अपने नौकर को ले क्यों जाने दिया ?" माधवी ने कहा, "मैंने तो साफ मना कर दिया।"

"मैंने तो कहा था, बड़ी दिक्कत हो जायेगी," वे बोली, "पर ये कहने लगे, पुलिस के काम में दखल देना ठीक नहीं है।"

"और बेकसूर आदमी को मार पड़वाना ठीक है !"

"अजी, कोई नहीं मरता ऐसे !" उन्होंने विरक्त भाव से कहा और चाय के लंबे-लंबे घूंट भरने लगी।

दुहरी उदासीनता से परास्त माधवी वापस चली आयी।

अपने घर के दरवाजे के भीतर घुसी तो लगा सामने कौशल खड़ा है। थरथराकर वह पीछे हट गयी। नहीं, कुछ करना होगा। यूं हारकर वह नहीं बैठ सकती।

अपने पर काबू पा, वह अकेली थाने चल दी।

थानेदार निहायत शराफत से पेश आया। उसकी बात संजीदगी से सुनी, जरा-सा मुस्कराया और बोला, "वह बेकसूर है, हम भी जानते हैं। बेकसूर न होता तो इतनी आराम-तसल्ली के साथ पुलिस वालों के पास न चला आता।"

"तब ?" भौंचक माधवी ने कहा, "उसे पकड़ा क्यों ?"

"हो सकता है, उसे इस हादसे के बारे में कुछ मालूम हो। उसके साथियों में से किसीका इस या इस तरह की और वारदात में हाथ हो। पूछताछ करने पर कुछ अता-पता मिल सकता है। आखिर इन वारदातों को रोकना तो पड़ेगा ना ?"

"पूछताछ से आपका क्या मतलब है ? जब आप मानते हैं, वह बेकसूर है तो उसे मारना-पीटना…"

"देखिए, हम लोग भी इन्सान हैं, जानवर नहीं," उसकी बात काटकर वह बोला, "जानते हैं, बेकसूर है तो मारपीट क्यों करेंगे ?"

"मैं उससे मिल सकती हूं ?" माधवी ने पूछा।

"हां-हां, क्यों नहीं।" उसने सिपाही को इशारा किया और जरा देर बाद लड़का उसके सामने खड़ा था।

माधवी ने ध्यान से उसे देखा। वह बेहद डरा हुआ था, फक, गुमसुम, पर मार-पीट के निशान उसके बदन पर कहीं नजर नहीं आ रहे थे।

"इन लोगों ने तुम्हें मारा तो नहीं ?" माधवी ने पूछा।

लड़के ने ना में सिर हिला दिया।

"तुम घबराना मत। एक-दो दिन में छूट जाओगे। हम लोग जानते हैं, तुमने चोरी नहीं की। जो ये लोग पूछें, सही-सही बतला देना। समझ गये ना ? डरना मत। मैं कल फिर आऊंगी।"

लड़का गुमसुम उसकी तरफ ताकता रहा। उसके चेहरे का बुद्धूपन जरा कम नहीं हुआ। माधवी की समझ में नहीं आया, आगे क्या कहे।

थानेदार ने इशारा किया और सिपाही लड़के को वापस ले गया।

"तसल्ली हो गयी आपकी ?" मुस्कराकर उसने माधवी से पूछा।

"उसे पकड़ लाने को मैं फिर भी गलत समझती हूं।"

"हमारी अक्ल पर भी तो भरोसा कीजिए। अब देखिए, चोर को पता चल गया होगा कि शिनाख्त होकर एक आदमी पकड़ा जा चुका है। वह असावधान हो जायेगा। हार बेचने जायेगा या दूसरा उड़ाने की कोशिश करेगा तो हम

आसानी से उसे पकड़ सकेंगे । नहीं ?"

घबराकर माधवी उठ खड़ी हुई । उसे थानेदार की बातें तर्कसंगत लगने लगी थी ।

अगली सुबह सनसनी की तरह खबर फैल गयी कि पुलिस हिरासत में एक लडके ने आत्महत्या कर ली । विशेष रोमांच के साथ उन लोगों ने जानकारी हासिल की कि यह वही लडका था जिसे कल पुलिस चोरी के इल्जाम में इसी मोहल्ले से पकड़कर ले गयी थी । सुनने में आया कि कल सारा दिन पुलिस वाले उसे भूखा-प्यासा रखकर बार-बार पूछते रहे कि उसने हार कहा छुपाया है । रात घिर आने पर पिटाई शुरू की । आधी रात तक उसने अपना कसूर कबूल कर लिया, एक साथी का नाम बतलाया और पाखाने जाने की इजाजत मागी । भीतर जाकर पायजामे का नाड़ा गले में डालकर फांसी लगा ली । बीस मिनट तक जब वह बाहर नहीं निकला तो दरवाजा तोडा गया और रोशनदान से लटकी उसकी लाश बरामद हुई । जहां तक हार का सवाल है, साथी के पास से अब तक बरामद नहीं हो सका है ।

"हम न कहते थे," मकानमालिक ने ठसके के साथ कहा, "बेकसूर होता तो खुदकुशी क्यों करता ।"

मकानमालकिन बिलखकर रो पडी । "मैंने इतना मना किया, मेरी कोई सुने तब ना । अब मोहल्ले के तमाम नौकर हमारे दुश्मन हो जायेंगे । किसीने मेरे बच्चो को कुछ कर दिया तो मैं कहीं की न रहूंगी ।"

माधवी के पास ही कहने को कुछ नहीं है । सारा दिन बीत गया । किसी काम में मन नहीं लग रहा है । जहां भी जाती है, लगता है, गुमसुम लडका पीठ के पीछे बना हुआ है । हर श्वास-प्रश्वास के साथ हल्की-हल्की सिसकियां भरकर कहता है, पुलिसथाने से उठकर चली क्यों आयी ? थानेदार की चिकनी-चुपडी बातों पर विश्वास कैसे कर लिया ? मेरी गुमसुम सूरत देखकर भी शुबहा नहीं हुआ ? हुआ नहीं कि करना नहीं चाहा ? विश्वास कर लिया क्योंकि अविश्वास का रास्ता ज्यादा मुश्किल था ?

मोहल्ले के नौकर लडके की लाश जलूस में लेकर प्रधानमंत्री के बंगले पर गये हैं । हरिचरण उनके साथ गया है । माधवी घर में अकेली है । सारा दिन बीत गया, चाय तक बनाने की हिम्मत नहीं हुई । जलूस नेता के घर तक जायेगा और लौट आयेगा । सब अपने-अपने काम-धंधे में लग जायेंगे । और माधवी···

एक डर मन में बैठ गया है; कौशल सुनेगा तो क्या कहेगा ?

शाम के पांच बज गये। सहसा दरवाजे की घंटी इस तरह टनटना उठी जैसे कोई गुमसुम चीख उठा हो।

कांपते हाथों से माधवी ने दरवाजा खोला तो देखा, सामने कौशल खड़ा है। वह डरकर पीछे हट गयी जैसे गुमसुम लड़के की लाश लिये नौकरों का जलूस उसके घर में घुस आया हो। ततैये के काटे-सा सूजा चेहरा लिये कौशल अंदर आया और अपनी परिचित कुर्सी पर जा बैठा। पांव घसीटती माधवी भी भीतर आयी और उसके सामने बैठ गयी।

चुप्पी छा गयी।

कौशल ने चाय नहीं मांगी।

माधवी ने नहीं बनायी।

चुप्पी कायम रही।

"मैं कल भी आया था," आखिर कौशल ने कहा।

माधवी ने सूखे होठों पर जबान फेरी और चुप रही।

"मैं बहुत परेशान था," उसने फिर कहा।

माधवी का सिर और झुक गया, अपनी कुर्सी में वह कुछ और सिकुड़कर बैठ गयी।

"पता है, कल क्या हुआ !" कौशल ने धिक्कारकर कहा।

माधवी का रोम-रोम सिहर उठा। तो इसे पता चल गया ! अब···?

"हमारी बस्ती में एसिड बनाने का एक कारखाना है," उसने सुना कौशल कह रहा है, "एक क्या, दसियों कारखाने हैं, जिनमें छोटे-छोटे बच्चे काम करते हैं। दस-दस, बारह-बारह बरस के बच्चे। कहने को यहां कानून बना हुआ है, कम उम्र के बच्चों से खतरनाक काम नहीं कराया जा सकता। पर कौन मानता है कानून ? पेट के आगे कौनसा कानून काम आता है ? दिन-दहाड़े काम लिया जाता है और कोई आंख वाला देखने नहीं आता।"

क्या कह रहा है कौशल ? इसका उस लड़के से क्या तअल्लुक, जो पुलिस हिरासत में मारा गया ? एसिड के कारखाने में काम करने वाले बच्चों के लिए तो माधवी जिम्मेवार नहीं। या है ? उसका सिर जरा-सा ऊपर उठा था कि फिर झुक गया।

"कल एक बारह बरस का लड़का एसिड गिरने से बुरी तरह जख्मी हो गया। जानती हैं, कारखाने के मालिक ने क्या किया ?"

कौशल कुर्सी पर आगे खिसक आया। उसके गले की कृकाटिका बोतल के

तंग गले में फंसे काग की तरह हिलने लगी जैसे धीरे-धीरे कोई उसका गला घोंट रहा हो। गुमसुम लड़के की लाश…!

"जख्मी लड़के को ले जाकर रेल की पटरी पर रख दिया। रेल वहां से गुजरकर उसका देहांत और क्रियाकर्म एकसाथ करती, उससे पहले वहा एक 'भलामानुस' आया। घायल लड़के को खींचकर पटरी से अलग तो कर दिया पर और मदद नही की। समझ गया होगा, किसी नर-गिद्ध की जूठन है, अधिक दया दिखलायी तो फंस जायेगा या समय नही रहा होगा। जिस आदमी के पास समय की कमी हो उससे अधिक क्रूर और कायर जीव और कौन होगा?"

"मैं," माधवी के मन में बजा।

"सारी रात वह वहा पड़ा रहा। बेहोश, पर मरा नही। भगवान् की लीला अपरम्पार है…थू!" कौशल ने उसके कीमती कालीन पर थूका नहीं, थूक वापस अंदर घोंट लिया। पर माधवी ने अपने चेहरे पर उसकी लिसलिसाहट महसूस की। "सुबह जाकर पुलिस वहां पहुंची। हो सकता है, भलेमानुस ने रात ही खबर कर दी हो। उसे अस्पताल पहुचा दिया गया और उसने दम तोड़ दिया। किस्मत वाला था वरना इस देश मे कितने गरीब हैं जिन्हे इतने ठाठ-बाट से मरना नसीब होता है।"

कौशल चुप हो गया। काफी देर चुप रहा। माधवी के लिए उसकी चुप्पी उसके कटु संभाषण से अधिक असहनीय थी। जो कुछ इसे कहना है, कह डाले, माधवी एक बार में झेल जाये वरना…

"आप क्या समझती हैं, कारखाने का मालिक उसका हत्यारा है या नही?"

"है।"

'तो उसपर मुकदमा क्यों नही चल रहा? तमाम बस्ती चुप क्यो है? कोई शिकायत क्यो नहीं कर रहा?"

एक-एक सवाल हथौड़े की तरह उसके सिर पर बजा। गुमसुम लडके की लाश ने उसकी जबान अपने बर्फीले हाथों मे जकड ली। एक भी शब्द बाहर नहीं निकला।

"बस्ती के तमाम गरीब आदमियों के बच्चे इन कारखानों मे काम करते हैं। उन्हे डर है कि आवाज उठाने पर कारखाने बंद न कर दिये जायें। तब उनकी रोटी कैसे चलेगी?"

माधवी की जबान बर्फ की पकड़ से बाहर नहीं आयी।

"लडके के मा-बाप तक मुकदमा नही चलाना चाहते। मैने कहा, पैसे मैं दूगा, हजार, दो हजार, तीन हजार, जितने लगेंगे मैं दूगा, तुम मुकदमा चलाओ। पर वे नही माने। जानती हैं क्यों? कारखाने के मालिक ने उन्हे दो हजार

रुपयों का मुआवजा दिया है। उसकी रोती-बिलखती मां ने मुझसे कहा, 'बाबू, जो पैसा आप देंगे, मुकदमा खा जायेगा। हमारे हाथ क्या आयेगा ! अभी पांच बच्चे और हैं। मालिक बहुत दयालु है। दूसरे लड़के को कारखाने में लगाने को तैयार है।' वाकई बहुत दयालु है ? उसके मरने पर भी दो हजार का मुआवजा देगा !" कौशल ने जलती आंखों से उसे देखा जैसे वह माधवी नहीं, कारखाने का मालिक हो। माधवी उसकी दृष्टि झेल नहीं पायी, आंखें झुका लीं।

सहसा चटखारा लेकर कौशल उठा और उसकी कुर्सी के सामने, करीब-करीब उससे सटकर खड़ा हो गया।

"आपने यह तो पूछा नहीं कि मुकदमे में लगाने के लिए मेरे पास रुपया कहां से आया ?" उसने कहा।

माधवी ने आंखें ऊपर नहीं उठायीं, एक अव्यक्त भय उनमें तैर गया।

"मेरा इरादा रुपया आपसे लेने का था !" कौशल ने कहा।

आंखों का भय माधवी के चेहरे पर उतर आया।

कौशल की तेज नजर ने उसे पकड़ लिया।

"आप तो उनकी शुक्रगुजार होंगी कि आपका रुपया बचा दिया !" तीखे व्यंग्य के साथ उसने कहा।

माधवी तिलमिला गयी।

"जी नहीं !" ऊंची आवाज में उसने कहा, "आप दस हजार भी मुकदमे में लगा देते तो मुझे खुशी होती। मेरे पैसों से नाइंसाफी के खिलाफ लड़ें तो मेरे लिए फख्र की बात होगी।"

कुछ बातें खुद को सुनाने के लिए कही जाती हैं और उन्हें ऊंची आवाज में ही कहना पड़ता है।

बस-स्टॉप पर खड़े कौशल ने बदन को झटककर ढीला छोड़ दिया। एक खुशनुमा सुकून रगों में भर रहा था। कल से नसें गुस्से और तनाव के बंधनों में जकड़ी पड़ी थीं। कुछ कर न पाने की कुंठा से जन्मे आक्रोश ने उसे पागल बना रखा था। अब यकायक नसें खुलने लगीं। लग रहा था, कारखाने के मालिक से सीधा मोर्चा लेकर जीत का सेहरा सिर पर बांध, घर लौटा है।

क्या कहा था माधवी ने। 'मेरे पैसों से नाइन्साफी के खिलाफ लड़ें तो मेरे लिए फख्र की बात होगी।' याद रखूंगा, माधवी, भूलूंगा नहीं। मेरी पूरी जिंदगी ही नाइन्साफी के खिलाफ लड़ाई है। आज नहीं तो कल···

देर तक कौशल माधवी का तमतमाया चेहरा देखता रहा था, फिर कुर्सी पर गिरकर कहा था, 'चाय पिलाइए, बहुत थक गया हूं।'

माधवी चाय बना लायी थी, कहा था, 'मैं भी कल से बहुत परेशान हूं।' और उसने एक लंबी कहानी सुना डाली थी। कौशल की कहानी से कम भयानक नहीं। कहानी खत्म करके उसने कहा था, 'मुझे बराबर लग रहा है, अपराधी मैं हूं।'

कौशल ठीक समझ रहा था माधवी उससे क्या चाहती है। वह चाहती थी, कौशल उसे दिलासा दे, उसका अपराध-बोध कम करे, उससे कहे, उसका कोई अपराध नहीं है, उसने जो किया बहुत किया, दूसरा कोई इतना भी नहीं करता। पर कौशल झूठ नहीं बोल पाया था। गंभीर स्वर में उसने कहा था, 'हां, अपराधी *आप जरूर हैं। डूबते आदमी को सहारा देकर, पानी से आधा बाहर खींचकर* वापस धकेल देना, मदद न करने से ज्यादा भयानक है।'

नीरव माधवी क्षण-भर उसकी तरफ देखती रही थी, फिर फफककर रो दी थी।

कौशल पसीज गया था, 'न-न, रोओ मत, तुम्हारा रोना मुझसे बर्दाश्त नहीं होगा,' कहकर उसने उसे खींचकर एकदम छाती से लगा लिया था।

उसके बदन से चिपकी माधवी उसी तरह रोती रही थी।

आह, औरत का रोना कितना सुखकर होता है। आदमी की छाती चौड़ी होती चली जाती है। एक आला बड़प्पन से भरकर उसने उसके माथे पर चुंबन अंकित कर दिया था। माधवी अलग जा पड़ी थी। बेचारी घबरा गयी होगी। उसकी दृष्टि बाहर दरवाजे तक जाकर लौट आयी थी। कौशल समझ गया था, पति आने वाला होगा।

'अब आप जाइए,' थर-थर कांपते हुए माधवी ने कहा था।

'दूसरा प्याला चाय नहीं पिलाओगी?' स्नेह और गांभीर्य से भरी आवाज में कौशल ने पूछा था।

उसके नहीं कहने पर इसरार नहीं किया था, कहा था, *'राकेश जी आने वाले हैं क्या?'*

'हां,' घुटी आवाज में उसने कहा था, 'आपको घर नहीं आना चाहिए था।'

'न आता तो तुम्हारे मन का बोझ हल्का कैसे होता?' उसने कहा था, 'हर किसीके सामने तो रोया नहीं जाता। अब और परेशान न हो। आदमी *आदमी ही होता है, देवी-देवता नहीं। अपराध करता है तभी तो प्रायश्चित्त कर* पाता है। अपने को सजा देने में भी एक सुख है।'

कैसे बिटर-बिटर माधवी उसे ताकती रही थी।

जाने दो, आज अब और कुछ नहीं, कौशल ने तय किया था और शालीनता के साथ उससे विदा लेकर बाहर आ गया था।

आंखें बंद करके उसने अपने होठों पर उंगली फेरी और एक चुंबन उसपर अंकित कर दिया। अपराध तुम खूब करो, माधवी, बस प्रायश्चित्त जरूर करती रहना। ऐसे ही मेरे कंधे पर सिर रखकर, चौड़ी हो रही मेरी छाती से चिपककर बार-बार रोना। बार-बार मुझसे सांत्वना की मांग करना और बार-बार कहना, नाइंसाफी के खिलाफ लड़ो। तुम मेरे साथ हो तो मैं लड़ सकूंगा। सच कहता हूं, मुझे पल-भर को चैन नहीं है। सोते-जागते अखबारों की सुर्खियां मेरी आंखों के सामने नंगा नाच करती हैं। दिल्ली शहर से कुल बीस मील दूर हरि-पाड़ा गांव में हरिजनों को जिंदा जला दिया गया। नहीं, यह सुर्खी नहीं, निहायत मामूली खबर है। अखबार के एक कोने में घिसटी पड़ी रहती है। बस, गांव का नाम बदलता रहता है। कभी बेलची, कभी पलामू, कभी नंदगांव, कभी नारायण-पुर। भागलपुर में कार्यकुशल पुलिस अफसरों के मातहतों ने अपराध रोकने की खातिर, अपराधियों की आंखों में तेजाब डालकर उन्हें मवाद रिसते फोड़े बनाकर छोड़ दिया। इस नारकीय यातना की कहानी सुनकर देश की प्रधानमंत्री को कै हो गयी। बीच लोकसभा उन्होंने अपनी जुगुप्सा का ऐलान किया। पर इस जघन्य अपराध की सजा पुलिस कर्मचारियों को नहीं मिल पायी। अपनी कार्य-कुशलता के लिए वे काफी मशहूर थे और आज के युग में शोहरत से टक्कर नहीं ली जा सकती। बागपत में सरेआम, भरी दुपहरी को, चलती सड़क के मर्दों की खुली आंखों के सामने, पुलिस जवानों ने बार-बार एक औरत के साथ बलात्कार किया और ''सड़क सहमी फिर चल पड़ी; कुछ देर शहर की आंखें फटी जरूर रहीं पर अंधेरा घिर आने पर, रोज की तरह बंद हो गयीं। अगली सुबह तक, दिन की सच्चाई रात के सपने की तरह विस्मृति के गड्डमड्ड मलबे में दफन हो चुकी थी।

सच कहता हूं, माधवी, मैं लड़ना चाहता हूं, बस किसीका साथ चाहिए। मैं लड़ूंगा, जरूर लड़ूंगा, तुम्हारे आंसू मेरे पास धरोहर हैं।

तेरह

अगले चार दिन कौशल का फोन नहीं आया। सप्ताह पूरा हुआ। आज फिर सोमवार है। माधवी आश्वस्त है। मन का बहुतसा कलुष पुंछ चुका। प्रदर्शनी वाले दिन की वितृष्णा अगली मुलाकात की संवेदना में जज्ब हो गयी। उसने तय किया पिछले हफ्ते जो सोचा था वही करेगी। तो ग्यारह बजे, तैयार होकर

त्रिवेणी के लिए निकल पड़ी।

आज भी कौशल कुमार त्रिवेणी के फाटक के बाहर खड़ा था। पर उसे स्कूटर से उतरते देख, उसकी तरफ नही लपका, अपनी जगह खड़ा रहा। माधवी पास पहुची तो साथ चलने लगा। दोनो कैंटीन मे पहुच गये।

"दो चाय, प्याले साफ कर लेना..." माधवी ने अपने आदेश जारी करने शुरू किये कि कौशल ने कहा, "मेरे बड़े लडके को तपेदिक हो गयी।"

माधवी को अपने कानो पर विश्वास नही हुआ, "क्या कहा आपने?" उसने कहा।

"मेरे लडके विट्टू को तपेदिक हो गयी।"

"कब? कैसे पता चला?"

"बुखार था। कल पता चला।"

"फिर?"

"आस-पडोस से मागकर दस रुपये जमा किये तब डाक्टर को दिखलाया। उसने एक्सरे और जाने कौन-कौन से टेस्ट बतलाये हैं।"

"अस्पताल ले जाना होगा," माधवी ने कहा।

"हां, अपना पड़ोस भी क्या है! जिसे देखो फटेहाल। पाच घरों से मागे तब जाकर दस रुपये इकट्ठा हुए। अब आगे का खर्चा..." बात बीच में छोडकर वह चुप हो गया।

"आप नौकरी क्यों नही करते?" माधवी ने कहा।

"वही मैं कहना चाह रहा था," कौशल समझदार आदमी की तरह बोला, "राकेश जी मुझे नौकरी दिलवा सकते हैं?"

माधवी को उसकी समझदारी पर खुशी हुई पर राकेश के नाम ने असमजस में डाल दिया।

"राकेश का तअल्लुकात तो कारखानो से रहता है। आप किस तरह की नौकरी चाहते है?"

"पढा-लिखा विशेष हूं नही, आप जानती हैं। करूगा क्या, क्लर्की कर सकता हूं। एक बात मगर है। मैं अपने को बडा आदमी मानता हूं, ऐसी नौकरी नहीं कर सकता जिसमे बॉस को सहना पड़े।"

माधवी उसे देखती रह गयी। "ऐसी नौकरी कहां मिलेगी जहा बॉस न हो।"

"हो भी तो मेरे सिर पर सवार न रहे। मैं अपने काम से मतलब रखू, जो काम करके दू, उसके पैसे मिल जायें, बस।"

"क्या काम?"

"कोई भी काम।"

"क्या काम जानते हैं आप ?"

"किताबों के प्रूफ देख सकता हूं।"

"पर उस तरह का काम तो राकेश के पास होगा नहीं।"

"उनके किसी जानकार के पास हो।"

"पूछूंगी। मुश्किल है। उनके परिचितों में प्रेस वाला कोई है नहीं..."

वह सोच में डूब गयी। कौशल टक लगाकर उसे देखता रहा। सहसा उसने कहा, "आप मुझे नौकर रख लें।"

"मैं ?" चौंककर माधवी ने कहा।

"हां, रोज सुबह पहुंच जाऊंगा। नागा बिल्कुल नहीं करूंगा। जो काम आप बतलाएंगी, कर दूंगा।"

"मसलन ?"

"आपका मन बहलाऊंगा, साहित्य-चर्चा करूंगा, आपकी कहानी-उपन्यास प्रकाशक तक पहुंचा दूंगा, जो किताबें आप पढ़ना चाहेंगी, ला दूंगा .."

"और इस नवाबशाही के लिए पैसा कहां से आयेगा ?" माधवी एक स्निग्ध हँसी हँस दी।

"क्यों, अभी भी तो आप नौकर रखती हैं। जो उन्हें देती हैं..."

"उन्हें देती हूं केवल सौ रुपया महीना और वे जो काम करते हैं, जरूरत से पैदा होता है। खाना बनाना, घर की सफाई करना। आप ये काम कर सकते हैं ?"

"कोशिश कर सकता हूं।"

"आप ? खाना !" कल्पना में उसे सब्जी छौंकते देखकर माधवी हँसते-हँसते दुहरी हो गयी।

"बना सकता तो आप रख लेतीं !"

माधवी ने उसके तमतमाये चेहरे को नहीं देखा, वैसे ही खिलखिलाते हुए बोली, "हां।" और हँसती रही।

"आप मुझे अपना नौकर समझती हैं !" चीखकर कौशल कुमार उठ खड़ा हुआ।

"क्या हुआ ?"

"आप समझती हैं, मैं आपका नौकर हूं !"

"मैंने नहीं कहा..."

"मुझे काम आता तो आप मुझे नौकर रख लेतीं ?"

"नहीं," माधवी ने सहज स्वर में कहा, "अच्छे नौकर के गुण आपमें बिल्कुल नहीं हैं।"

"होते तो..." होंठ चबाकर कौशल ने कहा।

"तो आप अच्छे नौकर होते और पैसे की दिक्कत आपको नही होती।"

"मैं आपके घर मे नौकरी करता !" कौशल अब भी चीख रहा था।

"नही," माधवी ने ठंडे स्वर में कहा, "जहां आपके लायक काम होता वह करते। इसमें चीखने-चिल्लाने की क्या बात है ? सभी आदमी नौकरी करते हैं, पैसा कमाते हैं, घर-बार चलाते हैं। आप इतने विशिष्ट कैसे हो गये कि नौकरी नही कर सकते।"

"मैं घर की नौकरी की बात कर रहा हूं..."

"घर की नौकरी भी नौकरी है। घर में काम करने वाले लोग भी इन्सान हैं। आप तो इन्सान-इन्सान की बराबरी की बात करते हैं न ?"

"अच्छी बराबरी है ! एक आदमी दूसरे की सेवा करे, उसकी निजी आवश्यकताओं को पूरा करे, उसका हुक्म बजाता घूमे..."

"तो सेवा करवाने वाला हीन हुआ, करने वाला नही। आपकी नफरत मालिक के लिए हो तो समझ मे आती है, सेवक के लिए क्यों है ?"

कौशल वापस कुर्सी पर बैठ गया। "नफरत नही, रोष है इस व्यवस्था पर, जो मालिक-सेवक के रिश्ते कायम करती है।"

"क्रोध कीजिए पर काम भी कीजिए। परिवार बनाया है तो बच्चों के प्रति कर्त्तव्य भी निभाना होगा।"

"क्यों निभाऊं ? मैंने स्वेच्छा से विवाह नही किया, स्वेच्छा से बच्चे पैदा नहीं किये। उनके जन्म के लिए मैं जिम्मेवार नहीं हूं तो उन्हें मौत से बचाने की जिम्मेवारी मेरी क्यों है ? मरने दो सब सालों को !"

माधवी घबरा गयी। "यह कैसे हो सकता है ?" उसने कहा।

"बिल्कुल हो सकता है। अभी कौनसी शानदार जिंदगी जी रहे हैं जो मरने से बचाना होगा। मेरा काम बच्चे पालना नही, लिखना है। मरने दो मेरे बीवी-बच्चों को। मिलने दो पूरे परिवार को मिट्टी में। मैं लिखूंगा। बस लिखूंगा। आप देखेंगी, मेरे बच्चे की मौत मेरे उपन्यास को और तीखा रंग देगी।"

"क्या कह रहे हैं आप !" माधवी ने उसका हाथ पकड लिया, "इस तरह की भयानक बातें मत कहिए। स्वस्थ होकर सोचिए, कोई तो ऐसा काम होगा जो आप कर सकें, जिसमे आपको असंतोष न हो, आप छोटा महसूस न करें ?"

"हां, रुपया होता तो कंपोजिंग एजेंसी खोल लेता। यह काम मैं खूब जानता हूं। बचपन से यही सब तो किया है।"

"कितना रुपया लगता है ?" माधवी ने कहा।

"क्यों ?"

"जानकारी के लिए पूछ रही हूं।"

"नहीं-नहीं," कौशल ने गरदन हिलाकर कहा, "आप और रुपये मुझे नहीं देंगी।"

"मैंने देने को नहीं कहा। चाहूं तो भी नहीं दे सकती। मेरे पास हैं ही नहीं। पूछा इसलिए कि हो सकता है ऐसी चीजों के लिए सरकारी उधार मिलता हो।"

"आप जो भी कहें, मैं आपसे रुपया नहीं लूंगा। इस तरह तो मैं आपका गुलाम हो जाऊंगा। जो अब तक लिया है वही वापस नहीं कर सकता तो और किस मुंह से मांगूं ? नहीं-नहीं, यह नहीं हो सकता, कभी···"

नदी के प्रवाह से बहते कौशल के भाषण में अवरोध पैदा करना कठिन लगा तो माधवी ने विषय को ही समाप्त कर दिया। "छोड़िए," उसने कहा, "राकेश से नौकरी के लिए पूछूंगी।"

तब तक छोकरा चाय दे गया था। सिर झुकाकर माधवी चाय पीने लगी पर मन में चिंता बनी रही।

कौशल ने खटाखट अपना प्याला खाली किया और बोला, "कंपोजिंग एजेंसी खोलने के लिए करीब बीस हजार रुपया चाहिए।"

"अच्छा," माधवी ने कहा।

"पर मैं आपसे नहीं लूंगा।"

"अच्छा।"

"आपके पास इतना रुपया है ?"

"नहीं।"

"आपके पिता काफी संपन्न व्यक्ति थे, आपने एक बार बतलाया था।"

"तो ?"

"तब तो आपके हिस्से भी काफी जायदाद आयी होगी ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"क्या मतलब ? आपको यह प्रश्न पूछने का कोई अधिकार नहीं है। यह मेरा निजी और घरेलू मामला है। आपकी हिम्मत कैसे हुई मुझसे यह अशिष्ट और बेहूदा सवाल करने की ?" माधवी गुस्से से फट पड़ी।

कौशल ने बाधा देने की कोशिश की पर वह कहती गयी।

"अपने लोगों की यही बात मुझे घृणास्पद लगती है। किसीके व्यक्तिगत जीवन के बारे में अकारण, अश्लील सवाल करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं। पर आप जैसे अजनबी को बतलाने में भी हर्ज नहीं है। क्योंकि इस बारे में आप क्या सोचते हैं, उसका मेरे लिए कोई महत्त्व नहीं है। मेरे पिता ने अपनी जायदाद स्वयं अर्जित की थी और अपनी मर्जी से उसे मेरी मां और एक

अन्य स्त्री को सौंप गये। कोई और सवाल?"

"मैंने तो ऐसे ही पूछ लिया था," कौशल ने सकपकाकर कहा।

"आगे से खयाल रखिएगा कि 'ऐसे ही' सवाल मुझसे न करें।"

"गलती हुई। माफी चाहता हूं," कौशल ने कहा, "दरअसल मैं अपनी जिंदगी को निजी बनाकर रखने में ज्यादा विश्वास नहीं करता। उसे लेकर मैं तनिक भी कंजूस नहीं हूं। सबसे बटवारा कर लेता हूं। लड़के की बीमारी को ही लीजिए। इलाज का साधन नहीं है तो नहीं है। इसमें निजी क्या है?"

माधवी शर्मिंदा हो गयी। लड़के की इतनी भयानक बीमारी के सामने क्या निजी और क्या पराया? क्या शिष्ट और क्या अशिष्ट?

"सॉरी," उसने कहा, "मैं ख्वामख्वाह नाराज हो गयी। प्लीज, मुझे बतलाइए, मैं आपकी क्या मदद कर सकती हूं। राकेश से नौकरी के लिए कहूंगी ही। और कुछ? एक्सरे वगैरह कब कराने हैं?"

"जब रुपयों का इंतजाम हो जाये। डाक्टर के हिसाब से तो कल ही होने चाहिए पर अपनी जेब तो देखनी होगी," कौशल ने हथियार डाले सिपाही की तरह कहा। माधवी दहल गयी। "मुझसे ले लीजिए," उसके मुंह से अनायास निकल गया। फिर लगा, कोई फायदा नहीं है। इतना सब होने के बाद कौशल उससे और पैसे नहीं लेगा।

"उधार?" कौशल ने पूछा।

"हां।"

"नहीं, उधार नहीं लूंगा।"

"तब?"

"देने हैं तो ऐसे ही दीजिए।"

माधवी को जबरदस्त धक्का लगा। पर उसने जाहिर नहीं होने दिया, पूछा, "कितने चाहिए?"

"जितने दे सकें।"

"सौ।"

"हां।"

"इस वक्त नहीं हैं। कल सुबह आकर ले जाइएगा।"

"घर से?"

हां, कहने में माधवी को वक्त लगा। पर यह समय दुविधा में पड़ने का नहीं है। स्थिति इतनी नाजुक है कि मना किया ही नहीं जा सकता। उसने हां कह दिया।

सो रुपये उसने राकेश से मांग लिये। कौशल का नाम नहीं लिया। लेने से क्या वह मना कर देता? नहीं, पर इतना जरूर कहता कि हर गलती का प्रतिकार कौशल कुमार को रुपये देकर नहीं किया जा सकता। और ठीक कहता। पर माधवी कह सकती है, इस बार रुपये देकर वह गुमसुम लड़के की मौत का प्रायश्चित्त नहीं कर रही—आगामी अपराध से बचने की कोशिश कर रही है। उसने मदद न की और कौशल के लड़के को कुछ हो गया तो एक नया गिल्ट उसका चैन छीन लेगा।

अगली सुबह राकेश के काम पर चले जाने के बाद भी माधवी उपन्यास लिखने नहीं बैठी। कौशल के निश्चित आगमन ने भी नया कुछ लिखकर उसे दिखलाने की ललक मन में पैदा नहीं की।

एक हफ्ता हो गया। उसने उपन्यास पर काम नहीं किया। पिछले सोमवार की दो घंटे लंबी बातचीत के बाद सोचा था, अब उसकी गति में अवरोध नहीं आयेगा। सही राह दीख गयी है, अब तो बस क़दम-पर-क़दम रखना होगा। रास्ता दो-एक महीने में तय हो जायेगा और तब···माधवी आजाद हो जायेगी! पर घटनाक्रम ने जो मोड़ लिया, उपन्यास के मोड़ से ज्यादा बीहड़ निकला। माधवी उसकी चपेट में आ गयी। पर पूरी तरह उपन्यास की गिरफ्त से भी बाहर नहीं आ पायी है। एक छटपटाहट है, जो बराबर उसकी शख्सियत को मथती रहती है; किसी काम में मन नहीं लगता; हर तरफ कूड़ा-ही-कूड़ा नजर आता है। पर कलम है कि स्याही पीने से इन्कार कर रही है; कैद में छटपटाते ख़याल कागज पर चढ़कर आजाद होने से मुंह फेर रहे हैं। माधवी लिख नहीं पा रही। मन की मलिनता से छुटकारा पाने का उपाय नहीं है; ऐसे में एक ही बात सूझती है, आस-पास के माहौल की मलिनता धो डाले। आज सुबह से माधवी घर की सफाई में जुटी हुई है।

कमरों से निबटकर वह गुसलखाने की तरफ बढ़ी। तो देखा, मेहतरानी अभी तक नहीं आयी है। तरह-तरह के ब्रश और सफाई के पाउडर थामे वह बेसब्री से उसका इंतजार करने लगी। आते-आते उसने ग्यारह बजा दिये। उसे देखते ही माधवी बोली, "यह वक्त है आने का? ग्यारह बज रहे हैं!"

मेहतरानी ने बगल से मैले-कुचैले कपड़ों में लिपटे बच्चे को उतारा और जमीन पर लिटा दिया। बोली, "घर तोड़े जा रहे हैं न, इसीसे देरी हो गयी।" और झाड़ू उठाकर गुसलखाने की तरफ बढ़ गयी।

माधवी को उसका उत्तर बिल्कुल असंगत लगा, इसलिए चिढ़कर पूछा, "कौनसे घर तोड़े जा रहे हैं?"

"हमारे घर जी," उसने कहा और नल खोलकर जमीन पर पानी उलीचने लगी।

"तुम्हारे घर !" माधवी ने अविश्वास के साथ दुहराया, "तुम्हारे घर तोड़े जा रहे हैं ?"

"हां जी ।"

"क्यों ?"

मेहतरानी ने कंधे झटक दिये। जो कहा, नल के शोर के कारण पल्ले नहीं पड़ा। उसने आगे बढ़कर नल बंद कर दिया और दुबारा पूछा, "क्यों तोड़ रहे हैं ?"

"क्या मालूम। सरकार तुड़वा रही है," कहकर वह नल खोलने लगी तो माधवी ने झट से उसका हाथ ही पकड़ लिया।

तेज झटके के साथ उसने अपना हाथ अलग किया और नल चला दिया। माधवी सुन्न रह गयी। लगा, उसने साफ कहा है, जिसे कोई नहीं छूता, उसे छूने का अधिकार तुम्हें कैसे मिल गया ? बेहद छोटा महसूस करते हुए माधवी ने सोचा, ठीक तो है, अछूत को छूने का अधिकार किसी गांधी या विवेकानंद को हो सकता है, मुझे नहीं।

क्षण-भर वह चुपचाप खड़ी उसे अपने पाखाने की सफाई करते देखती रही, फिर नल के शोर की वजह से, चाहते हुए भी आवाज को कोमल न रख पाने की मजबूरी में, चिल्लाकर पूछा, "कब तोड़े गये थे तुम्हारे घर ?"

"तोड़ रहे होंगे अब।" उसने कहा, "मैं चली तभी तो आये थे।"

"तेरा घर टूट रहा है और तू यहां आ गयी !"

"तो क्या करूं ?"

"तेरा सामान···?"

"पड़ा रहेगा। जाऊंगी तो उठा लूंगी।"

वह माधवी के कपड़ों पर पानी के छींटे उड़ा-उड़ाकर फर्श धोने लगी। माधवी वहां से हटी नहीं, खड़ी रही। पूछा, "फिर तू क्या करेगी ?"

"मैं क्या करूंगी।"

"कहां रहेगी ?"

"झुग्गी डालूंगी दुबारा।"

"पर इतनी सख्त गरमी में···कितने बच्चे हैं तेरे ?"

"जिंदा तो यही है एक। बीमार है इसीसे साथ लिवा लायी।"

"क्या बीमारी है ?"

"पता नहीं। कहे हैं, फेफड़े खराब हैं।"

"तब तो···अस्पताल ले जाना होगा।"

"ले गयी थी।"

"तो ?"

"कहा, खून लाओ। उत्ते रुपये धरे हैं मेरे पास !"

कहकर उसने बाल्टी-भर पानी फर्श पर उलट दिया। माधवी की साड़ी का किनारा भीग गया। पर उसकी हिम्मत वहां से हटने की नहीं हुई और न उसके काम में बाधा देने की।

काम निवटाकर मेहतरानी बाहर निकली, बच्चे को संभाला और पूछा, "रोटी दोगी ?"

हड़बड़ाकर माधवी अंदर भागी और बासी रोटी के बजाय सौ का नोट निकाल लायी।

"सुन," उसने कहा, "मैं पैसे देती हूं, तू अपने बच्चे का इलाज करा ले।"

"ठीक होगा भी?" उसने सख्त स्वर में पूछा।

"क्यों नहीं होगा। इलाज होगा तो जरूर हो जायेगा।"

उसने सौ का नोट उसकी तरफ बढ़ा दिया। देखकर मेहतरानी ने एकदम सिर हिला दिया। "इत्ते रुपये ! ये तो साल ऊपर जाकर पूरे होंगे। मेरे से नहीं होगा।"

"तनखा से नहीं काटूंगी, "माधवी ने जल्दी से कहा, "ऐसे ही दे रही हूं।"

"क्यों ?"

"ऐसे ही। तेरा बच्चा ठीक हो जाये..."

"आज सनीचर है ?" मेहतरानी ने सवाल किया।

"नहीं, मंगल।"

"मंगल का दान दिया है तो पीला चावल भी दो," उसने कहा।

उस तरह का दान नहीं है, माधवी ने कहना चाहा पर सोचा, क्या फर्क है ? पापों का बोझ कहो या अपराध-बोध, उतार फेंकने को ही तो रुपया दे रही है। उसने रसोईघर से एक किलो चावल लेकर उनमें हल्दी मिलायी और उसे पकड़ा दिये। हरिचरण ने टोका तो उसपर चिल्लाकर पड़ी। वह बुड़बुड़ करता लौट गया।

मेहतरानी ने चावल लेकर मैले दुपट्टे के कोने में बांध लिये और पहले वाले सहज स्वर में पूछा, "रोटी दोगी ?"

माधवी को फिर झटका लगा। यह क्या हो रहा है ? अपने को नाचीज समझने वाली मेहतरानी बराबर ऊपर उठती जा रही है और माधवी का कद छोटा होता जा रहा है। स्कूली बच्चे की तरह चुपचाप जाकर वह रोटी ले आयी। मेहतरानी बच्चे को उठाकर चली गयी पर माधवी वहां से हिल नहीं पायी।

कौशल को घंटी बजाने की जरूरत नहीं पड़ी। विषण्णमुख लिये माधवी सामने खड़ी थी।

"क्या हुआ ?" उसने पूछा।

माधवी वहां से हटकर बैठक में आयी और धम् से सोफे पर गिर पड़ी।

"हुआ क्या ?" कौशल ने फिर पूछा।

"ऐसा क्यों होता है ? ये लोग चुपचाप जुल्म क्यों सहते रहते हैं। अन्याय के विरुद्ध लड़ने की ताकत न भी हो, कम से-कम आवाज उठा सकते हैं, रो चिल्ला सकते हैं।"

"कौन लोग ?"

"यही जिन्हें छोटे लोग कहकर पुकारा जाता है।"

"क्यों रोयें-चिल्लायें ? इसलिए कि उनका रोना-झींकना सुनकर बड़े लोगों को बड़प्पन का अहसास होता रहे।"

माधवी की पीठ पर सड़ाक से बेंत पड़ा। उसकी तिलमिलाहट कुछ कम हुई।

"कहते जाइए," उसने कहा।

कौशल फौरन पीछे हट गया। "आप ऐसी कैसी हो रही हैं ? पूरी बात बतलाइए। पर पहले चाय बनवा लीजिए। लगता है, आपको चाय की सख्त जरूरत है," उसने कहा।

"नहीं, चाय आज नहीं पिलाऊंगी और आपको रुपये भी नहीं दे पाऊंगी।"

कौशल का चेहरा मुरझा गया। "इंतजाम नहीं हुआ ?" उसने निराश स्वर में कहा।

"हुआ था। पर मैंने वे रुपये मेहतरानी को दे दिये।"

"क्यों ?" कौशल ने करीब-करीब टपटकर पूछा।

"क्योंकि उसके बच्चे को तपेदिक है, उसका घर तोड़ा जा रहा है। फिर भी वह मेरे यहां काम करने आयी थी और उसने एक बार भी मुझसे मदद की मांग नहीं की।"

"कितने रुपये दे डाले उसे ?" कौशल के स्वर में उपहास था।

"सौ।"

"सौ ! मेहतरानी को !" मारे आश्चर्य के कौशल का स्वर फट गया।

"हां।"

"इतने रुपये और मेहतरानी को !"

"इसमें अचरज की क्या बात है ? आपको दे सकती हूं तो उसे क्यों नहीं दे सकती ?"

कौशल की आंखों से ज्वाला फूट निकली, बदन कांपने लगा। चाबुक की फटकार-सी सपसपाती आवाज में उसने कहा, "आपके लिए मैं और मेहतरानी

एक बराबर हैं ?"

"क्यों, वह इन्सान नहीं है ?"

"इसीलिए मेरे बराबर हो जायेगी !"

"इसमें नाराज होने की क्या बात है ? आप तो वर्ग-विभेद के घोर विरोधी हैं, फिर दो इन्सानों की जरूरत में आपको फर्क क्यों नजर आ रहा है ?"

"सवाल जरूरत का नहीं है। मैं जानना चाहता हूं, जिस भाव से आपने मेहतरानी को पैसे दिये हैं; क्या उसी भाव से मुझे देती रही हैं ?"

"बिल्कुल। मदद करने के भाव से।"

"मदद ! परोपकार ! समाजसेवा !" फाहश गालियों की तर्ज पर कौशल ने शब्द उछाले, "मैं समझता रहा, आप प्रेम के कारण रुपया देती हैं वरना···"

"प्रेम !" माधवी ने तड़पकर कहा, "प्रेम के कारण मैं आपको रुपया क्यों दूंगी ?"

"प्रेम के कारण दी गयी मदद लेने से मुझे इन्कार नहीं है पर···"

"यह आपने कैसे सोच लिया कि मैं आपसे···आपसे···आप और···उफ, मैं आपके मुंह से यह शब्द सुनना भी नहीं चाहती।"

"तो किसलिए मुझे पास बिठलाती रहीं अब तक ?"

"आपने कहा था, आप मुझसे कोई अपेक्षा नहीं करते।"

"मैंने कहा और आपने मान लिया ! बच्ची हैं क्या ? जानती नहीं थीं, मैं आपसे प्रेम करता हूं ?"

"आपने कहा था, आप जानते हैं यह एकतरफा है। आप पर विश्वास करके मैंने आपको अपना दोस्त माना और आप···!"

"दोस्त ! तब तो मेहतरानी भी आपकी दोस्त होगी !" गहरे तिरस्कार के साथ कौशल कुमार ने कहा।

"हां, है !" माधवी ने चीखकर कहा, "मेरे लिए आप और मेहतरानी एक बराबर हैं !"

माधवी और कौशल आमने-सामने खड़े थे। दोनों की मुट्ठियां भिंची हुई थीं, होंठ कांप रहे थे, छातियां तेजी से उठ-गिर रही थीं, दोनों तरफ से नफरत का सैलाब बांध तोड़ रहा था।

तभी राकेश कमरे में घुसा।

"एक फाइल ले जाना भूल गया था···" उसने कहा और ठिठककर रह गया।

"क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं," माधवी ने अस्फुट स्वर में कहा।

"मेरे लड़के को तपोदिक हो गयी," कौशल ने कहा।

"आई एम सॉरी; मैं कुछ कर सकता हूं ?"

"क्या करेंगे ?" कौशल ने व्यंग्य किया।

"पैसे दे सकता हूं," राकेश ने सहज भाव से कहा।

"कितने ?" फौरन कौशल ने पूछा।

"नकद नही। स्थिति तभी संभल सकती है जब आप नियमित नौकरी करें।"

"मैं मैट्रिक फेल हूं। आप मुझे नौकरी दिलवा सकते हैं ?"

"नही।"

कौशल हँस पड़ा।

"आपकी उम्र क्या है ?"

पैंतालीस।"

"पैंतालीस की उम्र तक आपने कोई नौकरी नही की ?"

"पच्चीस नौकरियां कर चुका हूं," कौशल ने उग्र स्वर मे कहा, "काम करने से नही कतराता पर…"

"यानी पच्चीस नौकरियां छोड़ चुके हैं !" अब राकेश हँस दिया।

"मैं किसीकी गुलामी नही कर सकता !"

"क्या कर सकते हैं, वह बतलाइए।"

"लिख सकता हूं।"

"ठीक है, लिखिए। मैं आपको पांच सौ रुपये माहवार दूंगा।"

"नही !" माधवी ने आपत्ति की, "तुम क्यों दोगे ?"

"अनागत मे पूंजी लगा रहा हूं," राकेश ने मुस्कराकर कहा।

"वाकई आप देंगे ?" कौशल ने पूछा।

"हां, पर नकद नही। आपको ऐसा काम करवा दूंगा जिससे पांच सौ रुपया मासिक आमदनी हो। कुछ और लोगों को भी काम मिले। मैं प्रोडक्टिव इन्वेस्टमेंट (उत्पादनशील पूंजी-निवेश) मे विश्वास करता हूं।" अंतिम बात कहते-कहते राकेश का स्वर आत्मगर्व से खिल उठा।

"आप वाकई महान हैं," कौशल ने कहा।

राकेश के चेहरे पर संतोष की लहर दौड़ गयी पर माधवी को उसका वाक्य तीर की तरह बीध गया।

"सोचकर बतलाइएगा, ठीक क्या काम करना चाहेंगे," राकेश ने कहा, "कल मुझसे दफ्तर मे मिलिएगा, पांच बजे। अच्छा…" शब्द मे विदाई थी, उसकी अवहेलना नही की जा सकती थी।

"अच्छा, चलें," कौशल ने कहा और बाहर निकल गया।

"तुम रुपये क्यों दोगे ?" उसके जाते ही माधवी ने उग्र स्वर मे राकेश से कहा।

"बार-बार एक ही बात को दुहराना जरूरी नही है," राकेश ने कहा।

"उस आदमी का कोई भरोसा नहीं है। रुपये लेकर वह काम करेगा, इसका विश्वास नहीं किया जा सकता। पैसा डूब जायेगा तो···"

"तो डूब जाये।"

"पर क्यों?"

कुछ देर राकेश चुप रहा। जब बोला तो बहुत गंभीर था।

"जिस आदमी पर कभी किसीने भरोसा न किया हो, उसपर एक बार भरोसा करके देखना चाहिए, माधवी। मैं मानता हूं, भरोसे के लायक आदमी तभी बन सकता है जब उसपर भरोसा किया जाये।"

"जरूरी नहीं है कि बन ही जायेगा।"

"नहीं। समझ लो कि यह एक प्रयोग है। शोध। लोग जुआ खेलते हैं न, कुछ उसी तरह।"

"जुआ इन्सानों से नहीं खेला जाता। दूसरे आदमी पर प्रयोग करना क्या उचित है?"

काफी देर तक राकेश खोया-खोया-सा चुप बना रहा जैसे माधवी की बात सुनी न हो।

"अच्छा माधवी," हठात् उसने कहा, "अनुचित करने का अधिकार क्या केवल तुम्हीं लोगों को है?"

कहकर वह और वहां ठहरा नहीं। जो फाइल लेने आया था, लेकर चला गया।

स्तब्ध कौशल अधसोया-सा चलकर बस-स्टॉप तक आया, बस के लिए रुका और जो बस सबसे पहले सामने आकर ठहरी, उसीमें चढ़ गया। वह जल्दी-से-जल्दी उस माहौल से दूर निकल जाना चाहता था। घर जाना बेकार था। रुपये मिले नहीं। अब जो होगा, कल होगा।

इंडिया गेट के सामने से बस गुजरी तो वह अगले स्टॉप पर उतर गया। लौटकर इंडिया गेट तक आया और पानी के किनारे, पेड़ के नीचे घास पर चित लेट गया। आंखें बंद कर लीं···लेटा रहा।

आज अब और कुछ नहीं। नाटक और सच को अलग करके देखना नहीं, सोचना नहीं, धिक्कारना नहीं, लड़ना नहीं।

आज बस पड़े रहो और वक्त को रफ्ता-रफ्ता आगे सरकने दो। सूरज ऊपर चढ़ेगा फिर डूबेगा, हवा जलेगी फिर शीतल हो जायेगी। उसका बदन सब-कुछ महसूस करेगा। पसीने से भीगे बदन को गरम लू के थपेड़े भी ठंडक पहुंचा जायेंगे। यह सब होगा ही। प्रकृति का नियम है। सबके लिए एक जैसा। व्यक्ति-

विशेष के लिए दया की गुंजाइश नहीं है।

दया ! उसके भीतर रोदन फूट पड़ा। प्रेम नहीं, करुणा नहीं, अनुकंपा नहीं। केवल दया। असह्य है। दुर्विसह्य !

सृष्टि में तो दया नहीं, न्याय है।

मुझे दया नहीं, न्याय चाहिए, उसने चीखकर कहना चाहा पर···किससे ? कौन है सुनने वाला।

आह, बदन कैसे टूट रहा है जैसे बरसों का बीमार हो।

बीमार ही तो है। जिसे किसीकी चाहत ने कभी गुदगुदाया न हो, वह बीमार नहीं तो क्या है ? बीमार और दया के काबिल !

नहीं-नहीं-नहीं ! हिचकियों में बंधे 'नहीं' उसके कंठ से निकले और वह फूट-फूटकर रो पड़ा।

रोता रहा। वक्त···सरकता···रहा···

भूचाल ! भूचाल ! चिल्लाता हुआ वह उठा और देखा, भूचाल नहीं पर जबर-दस्त तूफान ने धरती के अलावा सब-कुछ हिला रखा है। बड़े-बड़े पेड़, कागज के बेवजनी बंदनवारों की तरह, हवा में झूल रहे हैं। ऐसी रोमांचकारी पेंगें कि अब टूटे और अब टूटे। त्रस्त निगाहों से उसने अपने ऊपर छाये नीम के पेड को देखा। टूटकर गिरे तो···वह चीखकर हँस दिया···कफन तो ओढ़ा ही चुका निबौरियों का मुझे, अब टूटकर गिरे तो मेरी नामुराद नसों का मलवा इसकी जड़ों की खाद में मिल जाये। छूट जाऊं सच और फरेब के जाल से। सृष्टि में समाहित हो जाऊं, वापस अपनी मिट्टी से जा मिलूं, आत्मा का परमात्मा में लोप हो ! वह फिर चीख मारकर हँस दिया। जानता हूं न अच्छी तरह कि टूटकर गिरेगा तो ठीक नीचे अपने केंद्र-बिंदु पर नहीं, मुझे सुरक्षित छोडकर, कुछ दूर धरती पर। वाकई सृष्टि से मिलन चाहता हूं तो जरा सरकूं, इसकी पनाह से निकलकर हमले की हद के भीतर पहुंच जाऊं। तो चलूं···बढ़ूं आगे, बस दो-चार करवटें ही तो बदलनी हैं। पर मैं अपनी तरफ से क्यों कुछ करूं ? सृष्टि मेरा समर्पण चाहती है तो उठा ले मुझे। मैंने अपने बदन को ढीला छोड रखा है; इतनी तेज हवा है, उड़ा ले जाये मुझे।

कौशल को लगा, बदन को जरा और ढीला छोड़ने की देर है, तूफानी हवा वाकई उसे उड़ा ले जायेगी।

···तो ले जाये। आंखें उसने दुबारा मूंद ली और पड़ा रहा, समर्पित। ले जाये···अब ले जाये मुझे···

तभी मूसलाधार बारिश शुरू हो गयी। हवा ने पानी के आगे हथियार डाल

दिये। दोनों हाथ छाती पर बांधे कौशल निढाल पड़ा भीगता रहा। तो सृष्टि भी दया कर गयी उसपर।

अपनी-अपनी नियति है। या अपना-अपना व्यक्तित्व। किसीको प्रेम मिलता है और किसीको केवल दया। मैं कौन हूं अपनी नियति से लड़ने वाला। भगवान को नहीं मानता, घटनाक्रम के तर्क को तो मानता हूं। मेरा भविष्य कौन निर्णीत कर सकता है, मेरे इतिहास के सिवाय।

मैं जाऊंगा। जो दया मुझे मिल रही है उसे प्राप्त करने अवश्य जाऊंगा। उस महान् व्यक्ति के पास जो माधवी का पति है।

और वह बारिश के शोर से होड़ लगाकर जोर-जोर से हँसने लगा'' हँसता रहा।

चौदह

डेढ़ महीना बीत गया।

कौशल उस दिन के बाद नहीं आया।

अगले दिन राकेश ने बतलाया था कि उसने कौशल को कंपोजिंग एजेंसी खोलने के लिए बीस हजार रुपया दे दिया है।

"कुछ लिखा-पढ़ी···?" उसने सकुचाते हुए पूछा था पर राकेश के तल्खी के साथ 'नहीं' कहकर बात काट देने पर, कुछ कहने की हिम्मत नहीं हुई थी।

आजकल राकेश से कौशल के बारे में बात करने की हिम्मत नहीं होती। खुद कुछ कहता है तो सुन लेती है, बस।

एक महीना पहले, उसने कौशल की कंपोजिंग एजेंसी चलकर देख आने के लिए कहा था तो साथ चली गयी थी और देखकर लौट आयी थी। पर···

गांधी नगर की एक तंग अंधेरी गली। सड़क के दोनों तरफ बनी १०-१२ वर्गफुट की सीलन-भरी कोठरियां। कोठरियों के आगे बदबू के भभकारे उड़ाती, खुली बहती गंदी नाली। गाड़ी नाली के पास गली के मुहाने पर छोड़ देनी पड़ी थी। पैदल चलकर एक कोठरी तक पहुंचे थे। बराबर की कोठरी में वैल्डिंग का काम हो रहा था। ठक-ठक लोहा पीटा जा रहा था।

"देश का भविष्य बन रहा है," कौशल ने तंज के साथ कहा था और राकेश

ने सहज भाव से अनुमोदन किया था। "भविष्य क्यों, देश का वर्तमान भी इन छोटी-छोटी कोठरियों में है। बड़ी कोठियों में रहने वाले लोग तो परजीवी हैं, इनपर आश्रित।" उसने कहा था।

"बिल्कुल !" विद्रूप से हँसकर कौशल ने कहा तो माधवी को लगा, उसने धक्का देकर राकेश को नीचे गिरा दिया है। आश्रित आलीशान कोठियों में कैद है, आने वाली पीढ़ियों के लिए उनसे भी शानदार कैदखाने तैयार करवा रहे हैं। और अन्नदाता तंग कोठरियों और अंधेरी मियानियों में देश का भविष्य और वर्तमान बना रहे हैं। उनकी आने वाली पीढ़ियों को छत के नीचे इतनी जगह भी नसीब न हुई तो क्या है? खुला मैदान और हवादार झुग्गियां जो हैं। आजाद रहने के लिए और क्या चाहिए। वाह ! शब्दों का कैसा खूबसूरत मायाजाल है।

उस कोठरी की छत इतनी नीची थी कि राकेश को सीधा खड़े होने में दिक्कत हो रही थी। वैसे भी तीन आदमियों के खड़े रहने लायक जगह उस कोठरी में नहीं थी। उस छोटी-सी १०-१२ वर्गफुट की कोठरी में छह-आठ [illegible] मेजें अटी हुई थीं। उनपर लकड़ी के बक्से रखे थे, जिनमें लोहे का टाइप भरा था। हिंदी के अक्षर; स्वर, व्यंजन और मात्राएं।

आश्चर्य के साथ माधवी ने देखा, बारह-तेरह बरस के लड़के अक्षरों [illegible] उठा-उठाकर बक्सों में फिट कर रहे हैं।

"अरे, किताबों की कंपोजिंग ऐसे हाथ से होती है !" उसके [illegible] और फौरन वह शर्मिंदा हो गयी।

राकेश, कौशल और बक्सों पर काम कर रहे तीनों लड़कों ने [illegible] कौतुक के साथ उसकी तरफ देखा और नजरें फेर लीं। माधवी को [illegible] पर कौशल जरूर कोई फिकरा कसेगा पर नहीं, फिकरा [illegible] से।

"जी ! आपने क्या सोचा था, यहां आटोमैटिक [illegible]?"

अपमानित माधवी की आंखों में आंसू भर आये थे। [illegible] होती तो दुख न होता। एक कुण्ठाग्रस्त, [illegible] और [illegible] है। पर राकेश ! उसे समझ जाना चाहिए था कि [illegible] लज्जित है।

माधवी क्या और कितना जानती है, जान सकती है? [illegible] है उसके पास? राकेश कहता, यह केवल एक बहाना है; [illegible] जान सकती है, आखिर पढ़ी-लिखी महिला है। पर क्यों [illegible]? [illegible] खिड़कियों और ढके दरवाजों के भीतर पनाह पायी [illegible]

कि वाहर कहां क्या हो रहा है ! पढ़ी-लिखी है,ठीक है, तो इतना ज्ञान उसे है कि भारत जैसे अल्पविकसित देश में श्रमिकों का ही इस्तेमाल होना चाहिए। कीमती मशीनें वहां भला कोई क्यों खरीदेगा जहां खुद इन्सान को मशीन वनाया जा सके। जव श्रमिक के हाथ इन्सानी वदन के हिस्से नहीं, कल-पुर्जे वन जाते हैं, तभी तो उद्योगपति सफलता की सीढ़ी पर पैर रखता है। खुशहाली और किसे कहते हैं ? इतने ढेरोंढेर हाथ और इतना कम काम। एक काम को हासिल करने को वेकरार वीस हाथ। जितने ज्यादा हाथ, उतने कम दाम। दाम गिराते चलो और कमदम हाथों में से एक जोड़ी दमदार हाथ चुन लो, इतने कम दाम पर कि हाथ काम तो करें पर पेट भरे नहीं। हाथ जल्दी वेकार हो भी जायें तो अफसोस करने की गुंजाइश नहीं है। वीस के वजाय तीस जोड़ी हाथ, दो साल में, आगे फैल जायेंगे। दाम और भी गिरेंगे। पहले से कम दाम पर हाथ चुन सकोगे। सफलता की सीढ़ी पर खटाखट चढ़ते चले जाओगे, देश की उन्नति होगी, नेतागण पीठ ठोकेंगे ; पेट ही तो खाली रहेंगे, काम करने को हाथ मिलने तो वंद नहीं होंगे। खाली पेट रहकर जिन्हें काम करने की आदत नहीं है, खुद-व-खुद मिट जायेंगे। हर समस्या का समाधान है, नव-उद्योगीकरण के निष्करुण अभियान में। किसमें हिम्मत है कि राह में रोड़ा वने। हट जाओ, माधवी, वीच से हट जाओ, तुम हट जाओ !

माधवी को लगा, वीसियों फौलादी हाथ उसे वाहर धकेल रहे हैं। हाथ आगे को फेंक, वह घवराकर दो कदम पीछे पलटी तो कौशल से जा टकरायी। लड़खड़ाकर अपने को संभाला तो पास खड़े राकेश का सहारा लेना पड़ा। उसकी वांह को अपने हाथ में पकड़कर वह स्थिर हुई और साड़ी का पल्लू आगे खींच, माथे का पसीना पोंछने लगी।

"पानी मंगाऊं ? वहुत गरमी है। पंखा तो यहां है नहीं, आपको दिक्कत हो रही होगी," कौशल ने कहा।

"हर तरह की आदत होनी चाहिए," उसकी वात काटकर राकेश ने रुक्ष स्वर में कहा, "छह की वजाय यहां तीन आदमी क्यों काम कर रहे हैं ?"

कौशल ने जवाव नहीं दिया, काम पर लगे एक लड़के से वोला, "जा, दो गिलास पानी तो ले आ।"

"जरूरत नहीं है," राकेश ने टोक दिया, "उसे काम करने दीजिए। वाकी लड़के कहां हैं ?"

लड़के ने वारी-वारी कौशल और राकेश की तरफ देखा, राकेश की आवाज के मालिकाना रोव को पहचाना और पानी लेने जाने के वजाय दुवारा काम पर लग गया।

"तीन ही आदमी क्यों हैं ?" राकेश ने आजिजी से अपना सवाल दुहराया तो कौशल ने कहा, "अभी रखे नहीं।"

"क्यों ?"

"अभी किताबें मिली कहां हैं ?"

"मिलेंगी ?"

"जरूर।"

"कब तक ?"

"अब यह मैं कैसे बतलाऊं ?"

"क्यों, आपने कोई योजना तो बनायी होगी।"

"योजना !" कौशल ने शब्द को इस तरह दुहराया जैसे उसकी समझ से परे, कोई अरबी-फारसी का लफ्ज हो। माधवी को लगा अब वह फुहार मारकर हँस देगा पर इतने में राकेश ने तीखे स्वर में कहा, "छह आदमियों के लायक जगह कुछ सोचकर तो बनायी होगी ?"

तीनों लड़के काम रोककर उसकी तरफ देख रहे थे। माधवी ने देखा, एक लड़के ने दूसरे को आंख मारी है और दोनों होंठ दबाकर हँस दिये हैं।

माधवी को अटपटा जरूर लगा पर उसका ध्यान कौशल की तरफ बटा हुआ था। उसे डर था, वह कोई बेतुकी बात न कह डाले। तर्क-कुतर्क भी हो तो राकेश सहन कर लेता है पर असगत फिकरेबाजी उसे सह्य नही है। आखें बद करके वह प्रार्थना कर उठी—हे भगवान, मेरे सामने राकेश का अपमान मत होने देना। तभी सुना, कौशल सुशील बालक की तरह कह रहा है, "बिल्कुल सोचकर बनायी है। आप तो स्वयं व्यवसाय करते है, जानते हैं कि बाजार मे साख होने मे वक्त लगता है और बिना साख के कुछ नहीं मिलता। एक महीने बाद देखिएगा, छह की जगह भी कम पड़ेगी।"

सवाल का जवाब मिल गया। एकदम तर्कसगत। राकेश खुश हो गया।

"मेरी शुभकामनाए," उसने कहा, "आज के बाद मैं यहां नहीं आऊंगा। एजेंसी आपकी है, काम आपका, सफलता-असफलता आपकी। हा, हर महीने मुझे हिसाब दिखला दीजिएगा।"

"हिसाब ?" कौशल अब भी सुशील बालक की तरह बोल रहा था [illegible] टेढ़ी खीर है। बही-खाता लिखना कभी सीखा नहीं। आपको मदद करनी पड़ेगी [illegible]

राकेश हँस दिया। शिष्ट पर सख्त स्वर में उसने कहा [illegible] दिन मिलना पड़ेगा। ठीक है, आप दफ्तर आ जाया कीजिएगा [illegible] रखने मे मैं मदद कर दूंगा।"

माधवी ने चैन की सांस ली ही थी कि देखा, [illegible] एक लड़का फिक करके हँस दिया। न जाने क्यों माधवी [illegible] राकेश खुश था।

वे लोग लौट आये थे।

राकेश खूब खुश था।

"कैसा लगा ?" गाड़ी में बैठकर उसने पूछा।

माधवी अब तक उस लड़के की बेमतलब हँसी से अस्थिर थी, अब उसे उनका एक-दूसरे को आंख मारकर देखना भी याद आ गया।

"पता नहीं क्यों, अच्छा नहीं लगा," उसने अनायास कहा।

"क्यों ?" राकेश का स्वर चाकू की तरह धारदार था, "तुमने क्या सोचा था, वहां एयरकंडीशंड दफ्तर होगा। जनाब, इस देश में इन्हीं छोटी-छोटी कोठरियों में असली काम होता है।"

"जानती हूं," आहत माधवी ने कहा था, "तुम्हारी फैक्टरी भी किसी आलीशान इमारत में नहीं है।"

राकेश ने बेमन से हुंकारा भरा तो माधवी ने समझा, इस बात से भी वह नाखुश ही हुआ है।

"मेरा ऐसा कोई मतलब नहीं था," उसने कोमल स्वर में कहा, "बस लगा, कहीं कुछ गड़बड़ है। हो सकता है, यह मेरा वहम हो।"

राकेश चुप रहा तो उसने एक फीकी हँसी हँसकर कहा, "हूं भी तो काफी वहमन।"

और उसने अपनी हथेली राकेश के घुटने पर रख दी। उसकी तरफ से कोई जवाब नहीं मिला फिर भी रखे रही।

गाड़ी तंग बस्तियों से निकलकर जमनापुल पार कर गयी, तब राकेश ने कहा, "बीस हजार रुपये की लागत में सात आदमियों को काम मिलेगा यानी सात परिवारों का पालन-पोषण होगा। इसी तरह सब लोग छोटे उद्योग खोलें तो देश की सारी समस्या हल हो जाये।" उसके स्वर में संतोष था और आत्म-प्रशंसा।

माधवी को चुपचाप हां कह देनी चाहिए थी पर पता नहीं क्यों, उसके मुंह से निकल गया, "इतनी कम तनख्वाह में पालन-पोषण क्या होगा ?"

"बेकारी से तो अच्छा है !" राकेश ने डपटकर कहा।

गाड़ी के भीतर चुप्पी छा गयी। हठात् राकेश ने आहत स्वर में कहा, "तुम आदमी को खुश क्यों नहीं होने दे सकतीं !"

माधवी क्या कहती, स्तब्ध बैठी अपने को कोसती रही। वह भी बस, सच के पीछे झाड़ू लेकर पड़ जाती है; क्या जरूरत है हर कोने में कूड़ा टटोलने की।

. .

तभी से राकेश से कुछ पूछने की हिम्मत नहीं रही। आश्चर्य है। पर है।

उस बात को भी एक महीना हो चला। कौशल नही आया। न फोन किया। अजीव बात है। कैसे यह सभव हुआ ? क्या राकेश ने कौशल को उससे मिलने के लिए मना कर दिया ? अच्छा हुआ। समस्या का समाधान हो गया। कितनी वार माधवी खुद राकेश से अनुरोध कर चुकी, कौशल को घर आने से मना कर दे। राकेश ही नही मानता था। हर बार यही कहा, 'मैं क्यों करूं, करना है तो तुम करो।' फिर ? ''चलो, जो हुआ, अच्छा हुआ।

फिर बार-बार यह सवाल मन मे क्यो उठता है ? एक बार राकेश से पूछ जो ले, अनिश्चय समाप्त हो जायेगा। नही, वह नहीं पूछ सकती। राकेश कहेगा, मुझे क्या जरूरत थी उसे मना करने की ? हिम्मत कैसे हुई तुम्हारी मुझपर यह आरोप लगाने की ?

हो सकता है, कौशल खुद न आया हो। आये भी क्यो ? काम-धंधे मे लग गया, पहले की तरह वेकार नही है कि वक्त काटने के उपाय ढूंढ़ता फिरे।

अच्छा, न पूछे राकेश से कौशल के बारे मे, इतना तो पूछ ही सकती है कि कंपोजिंग एजेंसी कैसी चल रही है, तुम्हारा प्रयोग सफल हो रहा है या नही ? पर···हिम्मत नही होती···

आज की रात फिर वही सवाल मन मे घुमड रहा है और बाहर आसमान मे बादल। पहर रात बीत चुकी पर माधवी को नींद नही आ रही। बादलो की मुठभेड दिमाग पर न जाने क्या दस्तक दे रही है। ये गडगडाते बादल वरस क्यो नही रहे ? पूरे शहर पर खाकी तारपलीन की तरह तने हुए हैं। तंबू से बाहर निकलने का उपाय नही है। सभी कुछ तो भीतर सिमट गया है, बाहर है क्या ? सितबर के दैत्य ने एक सास मे पूरी हवा अदर खीच ली, फिर बाहर फेंकी नही। यह कौशल की कहानियों का माहौल तमाम दिल्ली शहर पर कैसे तारी हो गया ? ऐसी दहशत-भरी घुटन पहले देखी नही, महसूस नही की।

मर तो नही गया कौशल ? भूत बनकर उसकी शापित जिजीविषा ने माधवी के शहर को निगल लिया ? अब इस शहर मे हवा कभी नही चलेगी ? बादल नही वरसेंगे ? सूरज और नही निकलेगा ! बस नीम अंधेरे मे जग खाया इस्पाती बादल अकेले आदमी के कुठाग्रस्त आक्रोश की तरह तना रहेगा। हमेशा। या तब तक, जब तक ऊपर टंगा, तैश खाता सूरज एक-एक करके सारे जल-कण चूस न ले। तावूत मे बंद बासी हवा कब तक जिंदा इन्सान का साथ देगी ?

छटपटाकर माधवी उठ बैठी। छत से लटका पंखा रोज की अभ्यस्त गति से घूम रहा है। दीवारों के भीतर कैद बोझिल बासी हवा को चक्राकार घुमा रहा है। कैसे सांस आयेगा ? नथुनों में भरो तो लगता है हवा नहीं, दहशत भीतर

खींच रहे हैं। एक नाकारा आदमी का प्रतिशोध…उफ !

ताजी हवा दम तोड़ चुकी। एक अपरिभाषित बू वातावरण में घुली हुई है। क्या है वह ? पसीने से तर जुराबें, चूहों की बीट, दीवार पर आयी सैलाबी या…! लाशें ऐसे ही धीरे-धीरे सड़ा करती हैं ! सबसे पहले दुर्गंध आती है। एक बार बू आने लगे तो बढ़ती ही जाती है, फिर हाड़-मांस के पुतले को खाद बनते देर नहीं लगती, लाश चाहे नालायक आदमी की हो चाहे जीनियस की !

छत से लटका पंखा फांसी पर टंगे शव की तरह घूम रहा है। घुमा रहा है बू को बराबर। चक्राकार। हवा अब बाकी नहीं रही। जहां है बस बू है। माधवी अब कभी सांस नहीं ले पायेगी। कभी नहीं।

लड़खड़ाती हुई वह उठी और पंखा बंद कर दिया।

बराबर में सोया राकेश कसमसाकर जग गया।

"बत्ती चली गयी क्या ?" उसने कहा।

"कैसा घटाटोप बादल है। देखना, अब प्रलय होगा।"

"बत्ती तो जल रही है, पंखा क्यों नहीं चलता ?" राकेश ने कहा।

"दम घुट रहा है। सांस नहीं आता।"

राकेश ने उठकर पंखा चला दिया।

"बंद कर दो," माधवी ने कहा, "दम घुटता है। बासी हवा में कोई कैसे सांस ले।"

"तुम्हें ताजी हवा की जरूरत कब से हो गयी।" राकेश ने कहा और तुरंत सो गया।

माधवी रात-भर जागती रही। सच है ? ताजी हवा में खुलकर सांस लेने की इच्छा ने ही माधवी को इस दलदल में फंसा दिया है कि अब जरूरत-भर को भी सांस आता नहीं ?

रात गुजर गयी। सवेरा हो गया। बादल न छंटे न बरसे। रह-रहकर अब भी गड़गड़ा उठते हैं। बिजली नहीं चमकती। क्यों नहीं चमकती ? अंधेरा छंटता क्यों नहीं ? पानी क्यों नहीं बरसता ? कौशल आता क्यों नहीं ? मर गया या जिंदा है ? मर गया तो खबर क्यों नहीं मिली ? घटाटोप बादल हों तो दो-एक बार बिजली चमकती ही है। नहीं चमके तो…सवाल मन में गड़गड़ाता रहा तो खुलकर सांस आयेगा कैसे ? सच राकेश, मुझे गलत समझ लिया तुमने। क्यों समझने लगे गलत तुम मुझे। मेरा सांस लेना तुम्हारे लिए अपराध कब से हो गया ?

माधवी और राकेश गर्द-गुबार-भरी चुप्पी के बीच नाश्ते की मेज पर बैठे हैं। बाहर बिन बरसे बादल लटक रहे हैं। राकेश जाने की जल्दी में है, जल्दी-जल्दी नाश्ता निबटा रहा है। माधवी हैरान-सी चुप है, खा नहीं रही।

सहसा बिला चमक बादल गडगडा उठा है। माधवी सिहर गयी है। राकेश ने सीधा उससे कहा है, "कौशल आये तो कहना, मुझसे मिल ले।"

"कौशल! कौशल तो आया नहीं डेढ महीने से।"

"कब से?"

"जब से कपोजिंग एजेंसी लगी है तभी से।"

"उससे कहा था, हर पंद्रहवें दिन आकर हिसाब दिखला जाये। एक महीना हो गया, एक बार भी नहीं आया। तुम कुछ नहीं जानती?"

"नहीं," कहकर माधवी का सिर झुक गया। क्यों? वह क्यों शर्मिंदा है?

"उसका पता-ठिकाना कुछ है तुम्हारे पास?"

"घर का पता है।"

"खत डाल दूं?" राकेश ने उसकी राय मांगी। माधवी ने सोचा, हां कहकर चुप हो जाये, इससे ज्यादा सरोकार उसे नहीं रखना चाहिए पर पिछले महीने की सवादहीनता के टूटने पर मन मे लालच पैदा हो गया कि सवाद आगे बढ़े, दुबारा चुप्पी में न बदले। "इससे अच्छा होगा कि कपोजिंग एजेंसी हो आओ," उसने कहा।

"पता नहीं कौनसी गली मे है, मुझे ठिकाना नहीं मालूम," राकेश ने कहा।

"गये तो थे उस दिन," माधवी ने कहा।

"हां, गाधी नगर की किसी गली मे है, इतना जानता हूं पर ठीक कहां है, नहीं मालूम। उस दिन तो जमना पुल से कौशल साथ गया था, याद नहीं?"

"याद है। पता तो होगा तुम्हारे पास," उसने कहा, "वहा पूछने पर पता चल जायेगा।"

"नहीं, मेरे पास नहीं है," राकेश ने कहा।

हद हो गयी! अनजान आदमी पर इतना भरोसा कि जगह की खोज-खबर तक नहीं है? और वक्त होता तो माधवी राकेश की लापरवाही की काफी भर्त्सना करती पर आज कुछ कहते नहीं बना। चुप्पी साधे बैठी रही।

बादलो ने गड़गड़ाना बद कर दिया। अंधेरा और बढ़ गया। अब बरसेगा शायद, माधवी ने सोचा।

"राजेश्वर मिश्र के यहां उसका आना-जाना है न?" राकेश ने पूछा।

"है तो," चौंककर माधवी ने कहा, "पूछूंगी उनसे।"

राकेश जाने के लिए उठ खड़ा हुआ। बाहर बादलो में बेमतलब बिजली

चमकी और आखिर वे बरस ही पड़े। माधवी को सांस आया। "इतनी वारिश में जाओगे ?" उसने आग्रह के साथ पूछा।

राकेश ने उसके आग्रह को नहीं पहचाना। तिरस्कार के साथ कहा, "और क्या !" और वाहर निकल गया।

दो-तीन दिन और बीत गये। माधवी ने कौशल को ढूंढ़ निकालने के लिए कुछ नहीं किया। वह दुविधा से वाहर नहीं आ सकी। राजेश्वर मिश्र को फोन करे, उनके दफ्तर जा पहुंचे या कौशल कुमार के नाम उसके घर के पते पर खत डाले ? कोई भी रास्ता निरापद नहीं है। कीचड़ में हाथ डालकर खगोलने की इच्छा नहीं हो रही। जो होना है, खुद हो जाये। वादल भी तो आखिर बरस ही दिये थे।

तीन दिन बाद राकेश ने दुवारा पूछा, कौशल का पता चला या नहीं, तो वात और टाली नहीं गयी। राकेश के दफ्तर चले जाने पर उसने राजेश्वर मिश्र को फोन मिला लिया।

"कहिए क्या कर डाला ?" हमेशा की तरह चहकती आवाज में उसने कहा।

"कुछ भी तो नहीं," शुष्क हँसी हँसकर माधवी ने कहा।

"उपन्यास पूरा हो गया ?"

"नहीं तो," माधवी ने कहा तो अचरज के साथ खुद महसूस किया कि इतने दिन उपन्यास आगे बढ़ाये बिना वह कैसे रह सकी !

"चेले को वंबई भेज दिया, उपन्यास लिखा नहीं, फिर क्या करती रहीं, यहीं चली आतीं।"

"किसे वंबई भेज दिया ?" माधवी मतलब की वात पर अटक गयी।

"लीजिए अव यह भी हम वतलायें !" राजेश्वर हँसा।

आज माधवी में लफ्फाज खेल खेलने का सब्र नहीं था, फौरन बोली, "कौशल कुमार वंबई चला गया क्या ?"

"आपको नहीं मालूम ?"

"कव गया ?"

"एक महीना हो गया।"

"यह कैसे हो सकता है !" उसके मुंह से निकला।

"क्यों, बिला इजाजत खिसक गया क्या ?" अपने फिकरे पर राजेश्वर खुद ठहाका मारकर हँस दिया पर आज उसकी हँसी ने माधवी को मुंहतोड़ जवाव देने के लिए नहीं उकसाया।

"तो कंपोजिंग एजेंसी कौन चला रहा है ?" उसने कहा।

"कैसी कंपोजिंग एजेंसी ?"

माधवी की परेशान बेसब्री ने उससे मनुहार करा डाली, "प्लीज," उसने कहा, "मजाक छोड़िए, सच-सच बतलाइए, कंपोजिंग एजेंसी के बारे में आप कुछ नहीं जानते ?"

"नहीं।"

"यह कैसे हो सकता है ? करीब डेढ़ महीना हुआ, राकेश ने कौशल को बीस हजार रुपया दिया था, कपोजिंग एजेंसी खोलने के लिए। एजेंसी खुल गयी थी, हम लोग···"

उसकी बात पूरी भी नहीं हुई थी कि उधर से जोरदार सीटी बजने की आवाज आयी।

"बीस हजार रुपया !" राजेश्वर ने रकम को पूरा महत्त्व देते हुए कहा, "हे भगवान्, तभी बंबई जाकर फिल्म बनवाने की बात कर रहा था। मैंने कहा, भाई मेरे, यू हवा में फिल्में नहीं बना करती तो तैश में आकर बोला, समझ क्या रखा है, यहां भी कोई गिरे-पड़े नहीं हैं! अब समझा किसका नावां बोल रहा था।"

"पर हम लोग खुद जाकर एजेंसी देख आये थे। आपसे जिक्र नहीं आया ?"

दूसरी तरफ काफी देर चुप्पी रही।

"प्लीज, ठीक-ठीक बतलाइए," माधवी ने फिर मनुहार की।

"एक बार जिक्र किया तो था। कह रहा था, राकेश जी और माधवी जी जैसे महान् व्यक्ति पहले नहीं देखे ··"

"वह छोड़िए। यह बतलाइए, एजेंसी के बारे में क्या कह रहा था ?"

"कह रहा था, खोलने का इरादा है।"

"आपको दिखलायी नहीं ?"

"नहीं।"

"तब आपका क्या खयाल है, एजेंसी···"

"आपने खुद देखी थी ?"

"हां।"

"तो होगी !"

"वह बबई चला गया है, यह पक्की बात है ?"

"सौ-फीसदी। चाहे तो उसकी पत्नी से मिलकर और पक्की कर लें।"

"तो क्या कंपोजिंग एजेंसी बद करके चला गया ?" माधवी ने अनमने भाव से प्रश्न किया।

"या कभी खोली ही नहीं !" राजेश्वर हो-होकर हँस दिया, "कमाल के लोग

हैं आप भी ! बहते दरिया में रेत डालेंगे और पूछेंगे, कहां गयी ?" और अपने भाषा-विन्यास पर वह देर तक, खुश होकर, हँसता रहा।

माधवी ने चुपचाप फोन काट दिया। अब ? जाये उसके घर उसकी पत्नी से जवाब-तलब करने ? वितृष्णा से उसका रोम-रोम कांप उठा। वह क्यों जाये ? उसने राकेश से बार-बार मना किया था कि एक अनजान-नाकारा आदमी पर भरोसा मत करो, इतना रुपया मत दो। उसने नहीं माना। अब जो वह चाहे, करे। पर...करे तो तब, जब माधवी उसे बतलाये कि कौशल यहां है नहीं, बंबई भाग गया। और माधवी...चार दिन कट गये, बतलाना हुआ नहीं।

रोज सुबह, बिस्तर छोड़ते हुए माधवी सोचती है, आज कहूंगी, नाश्ते पर। नहीं, नाश्ते पर राकेश जल्दी में होता है, शाम को कहूंगी उसके घर लौट आने पर। नहीं, घर लौटते समय वह बहुत थका हुआ होता है, रात को कहूंगी, बिस्तर पर लेट जाने पर। रात के अकेले दुकेलेपन में कई तरह की बातें की जा सकती हैं। पर रात...अकेलापन-दुकेलेपन में नहीं बदलता...और बदलता है तो माधवी उसे खोना नहीं चाहती। सोचती है, सुबह कहूंगी, पहला प्याला चाय पीते हुए। पर... चार दिन बीत गये; शाम रात में तब्दील होकर सुबह ले आती है और माधवी सोचती रह जाती है कि आज कहेगी जरूर, मौका देखकर...

सुबह आंख खुली जब राकेश को बिस्तर के पास खड़े कहते सुना, "यह क्या है ?"

चौंककर आंखें खोलीं तो देखा, राकेश के हाथ में तार है।

"क्या हुआ ?" घबराकर उसने पूछा।

"मैं पूछ रहा हूं इसका क्या मतलब है ?" राकेश का स्वर अप्रत्याशित रूप से कठोर था।

"किसका ?" उसने बेवकूफ की तरह कहा।

राकेश ने तार उसके ऊपर फेंक दिया।

पढ़कर माधवी बीच अधर में लटक गयी। यह सच है या मजाक ? वह हँसे या रोये ? कौशल का तार था, बम्बई से। चंद सतरें। "मुबारक हो। बढ़िया खबर ला रहा हूं। कल पहुंचूंगा दिल्ली।"

"वह बंबई गया हुआ है, तुमने मुझे बतलाया नहीं ?" उसने सुना, राकेश कर्कश स्वर में कह रहा है।

इस चोट के लिए वह तैयार नहीं थी।

"मुझे मालूम था, यह तुमने कैसे सोच लिया ?" तड़पकर उसने कहा।

"तार से तो यही लगता है।"

"तुम्हें तार का विश्वास है, मेरा नहीं ?"

"किस बात का विश्वास नहीं किया तुम्हारा ?"

"मैं कह जो रही हूं, मुझे मालूम नहीं था।"

"यह तुमने पहली बार अब कहा है।"

"तो झूठ कह रही हूं ?"

"मैंने नहीं कहा।"

"सोचा तो है।"

"मैंने नहीं, तुमने सोचा है। अब जाहिल औरतों की तरह उसे मेरे सिर पर थोप रही हो !" राकेश ने कहा।

माधवी को जैसे लकवा मार गया। जबान जवाब दे गयी। बदन ने हरकत करने से इन्कार कर दिया। स्तब्ध, निर्वाक् वह तार पकड़े बैठी रही। राकेश ने हाथ आगे बढ़ाकर उससे तार लेना चाहा तो अपनी उंगलियों पर उसके हाथ का स्पर्श महसूस करके वह एकदम बिखर गयी। "क्या होता जा रहा है तुम्हें ?" गहरी व्यथा के साथ उसने कहा।

बिना तार लिये राकेश का हाथ हट गया।

"और तुम्हें ? सब कसूर क्या मेरा है ?" उसने कहा।

नहीं, मेरा होगा, माधवी ने कहना चाहा पर शब्दों से पहले हिचकी होंठों से बाहर निकल गयी। उसे भीतर घोटने में शब्द भी वापस घुट गये। राकेश कमरे से बाहर चला गया। माधवी ने सुना, बाहर का दरवाजा खुला फिर बंद हो गया। वह समझ गयी, राकेश घर से बाहर चला गया। उससे कतराकर, बिना नाश्ता किये, उसे आहत-अपमानित छोड़कर। बारह बरस में पहली बार।

विमूढ़ माधवी हाथ में थमे तार को बार-बार पढ़ती रही।

यह कैसा आदमी है जो राकेश का बीस हजार रुपया गबन करके बंबई भाग गया और अब इतनी आराम-तसल्ली के साथ, माधवी के लिए खुशखबरी लेकर दिल्ली लौट रहा है ? इतनी हिम्मत वह कैसे कर सका कि उसका घर लूटकर उसीको मुबारकबाद दे रहा है ! क्या वह मुझे अपनी तरह बेहिस्स, बेहया समझता है ? पर क्यों ? मेरा कसूर क्या है ? उसके पास जवाब हैं और नहीं भी। जवाब जो हैं तसल्ली नहीं देते। एक विराट भयावह प्रश्नचिह्न उसके पूरे अस्तित्व पर हावी होता जा रहा है और वह है कि पक्षाघात से आक्रांत रोगी की तरह निस्पंद पड़ी है।

हैं आप भी ! बहते दरिया में रेत डालेंगे और पूछेंगे, कहां गयी ?" और अपने भाषा-विन्यास पर वह देर तक, खुश होकर, हँसता रहा।

माधवी ने चुपचाप फोन काट दिया। अब ? जाये उसके घर उसकी पत्नी से जवाब-तलब करने ? वितृष्णा से उसका रोम-रोम कांप उठा। वह क्यों जाये ? उसने राकेश से बार-बार मना किया था कि एक अनजान-नाकारा आदमी पर भरोसा मत करो, इतना रुपया मत दो। उसने नहीं माना। अब जो वह चाहे, करे। पर···करे तो तब, जब माधवी उसे बतलाये कि कौशल यहां है नहीं, बंबई भाग गया। और माधवी···चार दिन कट गये, बतलाना हुआ नहीं।

रोज सुबह, बिस्तर छोड़ते हुए माधवी सोचती है, आज कहूंगी, नाश्ते पर। नहीं, नाश्ते पर राकेश जल्दी में होता है, शाम को कहूंगी उसके घर लौट आने पर। नहीं, घर लौटते समय वह बहुत थका हुआ होता है, रात को कहूंगी, बिस्तर पर लेट जाने पर। रात के अकेले दुकेलेपन में कई तरह की बातें की जा सकती हैं। पर रात···अकेलापन-दुकेलेपन में नहीं बदलता···और बदलता है तो माधवी उसे खोना नहीं चाहती। सोचती है, सुबह कहूंगी, पहला प्याला चाय पीते हुए। पर··· चार दिन बीत गये; शाम रात में तब्दील होकर सुबह ले आती है और माधवी सोचती रह जाती है कि आज कहेगी जरूर, मौका देखकर···

सुबह आंख खुली जब राकेश को बिस्तर के पास खड़े कहते सुना, "यह क्या है ?"

चौंककर आंखें खोलीं तो देखा, राकेश के हाथ में तार है।

"क्या हुआ ?" घबराकर उसने पूछा।

"मैं पूछ रहा हूं इसका क्या मतलब है ?" राकेश का स्वर अप्रत्याशित रूप से कठोर था।

"किसका ?" उसने बेवकूफ की तरह कहा।

राकेश ने तार उसके ऊपर फेंक दिया।

पढ़कर माधवी बीच अधर में लटक गयी। यह सच है या मजाक ? वह हँसे या रोये ? कौशल का तार था, बम्बई से। चंद सतरें। "मुबारक हो। बढ़िया खबर ला रहा हूं। कल पहुंचूंगा दिल्ली।"

"वह बंबई गया हुआ है, तुमने मुझे बतलाया नहीं ?" उसने सुना, राकेश कर्कश स्वर में कह रहा है।

इस चोट के लिए वह तैयार नहीं थी।

"मुझे मालूम था, यह तुमने कैसे सोच लिया ?" तड़पकर उसने कहा।

"तार से तो यही लगता है।"

"तुम्हें तार का विश्वास है, मेरा नहीं ?"

"किस बात का विश्वास नही किया तुम्हारा ?"

"मैं कह जो रही हूं, मुझे मालूम नही था।"

"यह तुमने पहली बार अब कहा है।"

"तो झूठ कह रही हूं ?"

"मैंने नही कहा।"

"सोचा तो है।"

"मैंने नही, तुमने सोचा है। अब जाहिल औरतों की तरह उसे मेरे सिर पर थोप रही हो!" राकेश ने कहा।

माधवी को जैसे लकवा मार गया। जबान जवाब दे गयी। बदन ने हरकत करने से इन्कार कर दिया। स्तब्ध, निर्वाक् वह तार पकडे बैठी रही। राकेश ने हाथ आगे बढ़ाकर उससे तार लेना चाहा तो अपनी उगलियो पर उसके हाथ का स्पर्श महसूस करके वह एकदम बिखर गयी। "क्या होता जा रहा है तुम्हे ?" गहरी व्यथा के साथ उसने कहा।

बिना तार लिये राकेश का हाथ हट गया।

"और तुम्हे ? सब कसूर क्या मेरा है ?" उसने कहा।

नही, मेरा होगा, माधवी ने कहना चाहा पर शब्दो से पहले हिचकी होठो से बाहर निकल गयी। उसे भीतर घोटने मे शब्द भी वापस घुट गये। राकेश कमरे से बाहर चला गया। माधवी ने सुना, बाहर का दरवाजा खुला फिर बद हो गया। वह समझ गयी, राकेश घर से बाहर चला गया। उससे कतराकर, बिना नाश्ता किये, उसे आहत-अपमानित छोड़कर। बारह बरस मे पहली बार।

विमूढ माधवी हाथ मे थमे तार को बार-बार पढती रही।

यह कैसा आदमी है जो राकेश का बीस हजार रुपया गबन करके बबई भाग गया और अब इतनी आराम-तसल्ली के साथ, माधवी के लिए खुशखबरी लेकर दिल्ली लौट रहा है ? इतनी हिम्मत वह कैसे कर सका कि उसका घर लूटकर उसीको मुबारकबाद दे रहा है! क्या वह मुझे अपनी तरह बेहिस्स, बेहया समझता है ? पर क्यो ? मेरा कसूर क्या है ? उसके पास जवाब है और नही भी। जवाब जो हैं तसल्ली नही देते। एक विराट भयावह प्रश्नचिह्न उसके पूरे अस्तित्व पर हावी होता जा रहा है और वह है कि पक्षाघात से आक्रात रोगी की तरह निस्पद पड़ी है।

पंद्रह

चार दिन ऐसे गुजरे जैसे बैसाखियों के सहारे चलना सीख रहे हों। अपाहिज-सी सुबह होती। रोजमर्रा की जरूरत-भर की बात करके राकेश घर से निकल जाता। माधवी के इंतजार को अपनी कमर पर ढोने में असमर्थ दिन, किसी तरह लंगड़ा-लंगड़ाकर उस जगह पहुंचता जहां शाम रात में तब्दील होती है। देर करके राकेश घर लौटता···बैसाखी हाथ से छूट जाती। बेसहारा दिन बिस्तर पर अकेला दम तोड़ देता।

कुछ देर माधवी राकेश की पीठ की तरफ मुंह किये कुलबुलाती रहती पर कितनी देर? एक लंबी उसांस भरकर वह करवट बदल लेती और आखिर खुद भी पीठ बन जाती। दो पीठों के बीच तकरार भी मुमकिन नहीं।

उस सुबह के बाद राकेश ने कौशल कुमार का जिक्र नहीं किया। करता, तो माधवी यूं निरुपाय न रहती। कहने को बहुत-कुछ था उसके पास। पर इतनी ताकत नहीं थी कि दीवार बनी पीठ को भेदकर शब्द राकेश के कानों तक पहुंचा सकती। सिर्फ एक बार राकेश उसका नाम ले लेता तो माधवी संभल जाती, गूंगे-लंगड़े दिन को संभाल लेती, सब-कुछ राकेश के सामने उगल देती। उससे छिपाकर रखने लायक है ही क्या उसके पास? इतने दिन चुप क्यों रही? उसका कसूर क्या है, यही न कि वह चुप रही। या यह कि उसने खुद को अपराधी मान लिया···

चार दिन बाद कौशल का फोन आया। थकान से चूर माधवी नाराजगी तक जाहिर न कर सकी।

"कौशल हूं," उधर से आवाज आयी और बेइख्तियार माधवी ने कहा, "लौट आये आप!"

"मेरा तार मिला?" उसने पूछा।

"तार क्यों भेजा?" मुर्दा आवाज में माधवी ने कहा।

"इतना खुश था कि भेजे बगैर रह न सका।"

झटका खाकर माधवी के भीतर की वितृष्णा फुंफकार उठी। "कंपोजिंग एजेंसी बीच में छोड़कर बम्बई क्यों गये आप?" उसने कहा।

"अजी, मेरी खबर सुनेंगी तो एजेंसी-वेजेंसी सब भूल जायेंगी," कौशल ने किलककर कहा।

एक तिक्त हँसी हँसकर माधवी ने कहा, "आप तो हर पंद्रहवें दिन राकेश को हिसाब दिखलाने वाले थे, फिर उन्हें इत्तिला किये बगैर दिल्ली छोड़कर कैसे चले

गये !"

"हिसाब भी दिखला दूंगा। अभी क्या बिगड़ गया ?"

"दिखलायेंगे तो तब जब कुछ होगा दिखलाने को। एजेंसी ठप्प पड़ी है तो..."

"किसने कहा, ठप्प पड़ी है। लड़का देख रहा है, मजे से चल रही है।"

"कौन लडका ?"

"मेरा बड़ा लड़का, विट्टू।"

"विट्टू ! उसे तपेदिक हो गयी थी न ?"

"अरे हा, वह तो बतलाना ही भूल गया। बाद मे टेस्ट करवाया तो पता चला, तपेदिक नही है, वैसे ही बुखार था। अब ठीक है, बिल्कुल।"

रुपया दिया गया था तपेदिक का इलाज करवाने के लिए और तपेदिक कभी थी नही ! नही, गलत है। रुपया मागा गया था लडके का इलाज कराने के लिए, दिया नही गया था। दिया गया था, अनागत मे हिस्सेदारी कमाने के लिए। इतनी सस्ती और आसानी से मिल जाने वाली चीज नही है। फिर गम कैसा ? माधवी अपने मे गर्क थी और कौशल था कि बोले चला जा रहा था।

"एजेंसी की फिक्र मत कीजिए। एकदम बढिया चल रही है। और बबई गया था आपके काम से। वैसे मेरे लिए अपने और आपके काम मे कोई फर्क नही है। आपके लिए अलबत्ता..."

"बिना बतलाये क्यों गये ?" माधवी ने बात काटकर पूछा।

"काम पूरा होने से पहले आपसे जिक्र नही करना चाहता था।"

"ऐसा क्या था ?" अनचाहे माधवी के मन मे कौतूहल जन्म लेने लगा था।

"था ! अदाजा लगाकर बतला दें तो मान जायें आपको।"

"मुझे नही मालूम। आप ही बतलाइए।"

"फोन पर नही। घर पर बुलाइए तो तफसील से बतलाऊ। बात ऐसी है कि मुह मीठा किये बिना नही बतला सकता।"

"बतलाना तो फोन पर ही होगा।"

"हर्गिज नही।"

"आपकी कहानी पर फिल्म बन रही है, यही न ?" माधवी ने उसे कोंचा।

"जी नही। फिल्म बन जरूर रही है पर मेरी नही, आपकी कहानी पर।"

"क्या ?"

"जी !"

"पर कैसे ? मैंने किसी फिल्म वाले को अपनी कहानी नही दी।"

"आपको देने की जरूरत क्या है ? हम जो हैं सेवा करने के लिए।"

"मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा। कौन वना रहा है ? किस कहानी पर !"

"घर वुलाइए तो वतलाऊं। फोन पर इतनी भारी खवर नहीं सुनायी जा सकती।"

"घर पर नहीं..."

"एक घंटे से ज्यादा नहीं वैठूंगा।"

"पहले राकेश से मिल लीजिए," माधवी ने कहा, "वे वेहद नाराज हैं। आपको इस तरह उनसे विना कुछ कहे जाना नहीं चाहिए था।" राकेश का चेहरा याद करके माधवी का सारा उत्साह खत्म हो गया।

"उनसे कल सुवह मिल लूंगा। माफी मांग लूंगा देर करने की। आप नाहक परेशान हो रही हैं। इतनी जवरदस्त खवर रात-भर पेट में पड़ी रही तो अफारे से मर जाऊंगा।" कौशल ने इतने सहज-सौम्य ढंग से कहा कि माधवी पिघलने लगी।

"अच्छा, ऐसा करें..." उसने कहना शुरू किया कि "आधे घंटे में पहुंचता हूं," कहकर कौशल ने फोन काट दिया।

"हलो ! हलो !" उसे रोके रखने को माधवी जोर से चीखी पर फोन कट चुका था।

आधा घंटा वीता तो दुविधा-जड़ माधवी फोन के वरावर में ही वैठी थी। दरवाजे की घंटी घनघनायी तो ऐसे चौंकी जैसे जलजला आ गया हो। पर उठकर दरवाजे तक नहीं गयी। घंटी रुक-रुककर वजती रही। आखिर हरिचरण ने रसोई से निकलकर दरवाजा खोला और कौशल भीतर आ गया। उसके सामने से होकर अपनी हमेशा की कुर्सी में जम गया। फक चेहरा लिये माधवी अपनी जगह वैठी रही।

"तो खिलाइए मिठाई," कौशल ने कहा।

ठस्स माधवी वैठी रही, उठने का उपक्रम नहीं किया।

"अच्छा, यह वतलाइए, आपकी सवसे वड़ी महत्त्वाकांक्षा क्या है !" कौशल ने चुग्गा डाला।

"पता नहीं," उसने अस्फुट स्वर में कहा।

"भूल गयीं ! आपने एक वार कहा था, आपकी एक ही महत्त्वाकांक्षा है कि मणि कौल आपकी कहानी पर फिल्म वनायें।"

कोई भूला-विसरा सपना याद आ जाये, ऐसे माधवी ने कहा, "शायद।"

"वस तो मिठाई खिलाइए," कौशल ने उछलकर कहा।

उसका हाथ मेज पर रखी ऐशट्रे पर जाकर लगा और वह फर्श पर गिरकर झन्न से टूट गयी।

झन्न से ही माधवी की तंद्रा टूटी। यंत्रचालित-सी वह उठी और फर्श पर विखरे रंगीन कांच के टुकड़े समेटने लगी।

"ओह, सॉरी," कौशल ने लापरवाही से कहा फिर बोला, "खाली चाय से काम नहीं चलेगा, वैसे आपने तो खैर अभी चाय को भी नहीं पूछा।" कहकर वह पूरे आत्मविश्वास के साथ हँसा।

हाथ में सहेजे टुकड़े लिये माधवी अपनी जगह वापस आ गयी। हरे कांच के झिलमिलाते टुकड़े उसकी गोद में आ गये। अनायास उसके हाथ टुकड़ों को आपस में जोड़कर ऐशट्रे का आकार देने लगे।

"अरे, छोड़िए भी उसे," कौशल ने कहा।

"कितना खूबसूरत ऐशट्रे था!" माधवी कह उठी।

"अगली बार आऊंगा तो लेता आऊंगा," कौशल ने लापरवाही से कहा, "अब मेरी खबर···"

"आप लेते आयेंगे!" अपार आश्चर्य के साथ माधवी ने कहा।

"हां-हां।"

माधवी हँस पड़ी। बुरी तरह अपमानित करने वाली हँसी। "जानते हैं क्या कीमत थी उसकी?" उसने कहा, "बेलजियन कट-ग्लास का था; पांच सौ में भी नहीं मिलेगा यहां!"

"ठीक है," कौशल उसी लापरवाह अंदाज में बोला, "मणि कौल कहानी के लिए जो पैसा देंगे, "उसमें से आपके लिए एक ऐशट्रे जरूर लेता आऊंगा।"

"क्या! कौन पैसा देंगे?" माधवी ने चकित भाव से पूछा।

"डेढ़ घंटे से यही बतलाने की कोशिश कर रहा हूं कि मणि कौल आपकी कहानी पर फिल्म बना रहे हैं।"

दुर्लभ बेलजियन कट-ग्लास के अमूल्य टुकड़े माधवी के हाथ से छूटकर कालीन पर बिखर गये। उसने उनकी तरफ झुककर देखा तक नहीं। विस्मय और जिज्ञासा से भरा एक और 'क्या!' उसके मुंह से निकला और अपलक दृष्टि कौशल पर टिक गयी।

"जी!" कौशल ने विजयोल्लास से कहा।

"यह कैसे हो सकता है! मेरी उनसे कभी कोई बात नहीं हुई।"

"मेरी तो हुई है।"

"आपकी क्यों?"

"पूरी बात सुननी है तो मिठाई खिलानी होगी।"

"घर में तो है नहीं।"

"तो बाहर चलिए, हम खिलाते हैं," कौशल ने कहा पर माधवी ने मना कर दिया। बहुत आग्रह किया पर नहीं मानी। आखिर वह बोला, "बहुत कजूस हैं आप। खैर छोड़िए, थोड़ी-सी चीनी ले आइए, वही फांककर कह दूंगा।"

"चाय बनवाती हूं," लज्जित माधवी ने कहा।

"चाय बनती रहेगी, पहले चीनी ले आइए, बात बतलाने लायक तो बनूं।"

सलज्ज हँसी हँसकर माधवी चीनी की कटोरी ले आयी। गंभीर श्रद्धा के साथ, कौशल ने एक चम्मच चीनी उठाकर फांक ली, फिर बोला, "अब सुनिए। पिछले महीने मणि कौल दिल्ली आये थे। एक मित्र ने उनसे मिलवाया। मेरी कहानियां पढ़ीं और पसंद कीं। कहने लगे, 'मैदान' और 'आवाज' पर फिल्म बनाना चाहते हैं। मैंने फौरन आपकी कहानी 'आधा सच' का जिक्र कर दिया। वह विवेचना की कहानी थी, कि मणि मुग्ध हो गया। पांच-छह बैठकें हुईं उसके साथ। साहब, कायल हो गये हम उसके जीनियस के और वह हमारा लोहा मान गया। काफी बहस-मुबाहसे के बाद तय हुआ कि तीनों कहानियों को एक सूत्र में पिरोकर फिल्म बनायी जाये और नाम रखा जाये, आधा सच!"

"तीनों को मिलाकर? पर···" माधवी ने संशय प्रकट करना चाहा तो कौशल बात काटकर बुलंद आवाज में बोला, "नहीं-नहीं, आप कोई झंझट नहीं करेंगी। नाम आपकी कहानी पर ही रखा जायेगा।"

"मैं तो यह कह रही थी कि तीनों कहानियों पर एकसाथ···"

"बिल्कुल!" कौशल ने फिर बात काट दी, "सब तय हो चुका है। पच्चीस-पच्चीस हजार रुपया वह हम दोनों को देगा। अगले महीने दिल्ली आयेगा तो अनुबंध साथ लेता आयेगा।"

"पर···"

"पर-वर कुछ नहीं। आप कोई बाधा नहीं देंगी। होने दीजिए मेरी दो कहानियां और आपकी एक। पैसा दोनों को बराबर मिलेगा। मैंने तो मणि कौल से भी कह दिया है, मुझे इसका कोई मलाल नहीं है। कहने लगा, भई है तो तुम्हारे साथ ज्यादती पर फाइनेन्सर के लिए दोनों लेखक एक बराबर हैं। तो मैंने कहा, मुझे मिला, उन्हें मिला, एक ही बात है। फिल्म बननी चाहिए। पैसा मेरे लिए कोई मानी नहीं रखता।"

"पर···"

"नहीं-नहीं-नहीं! हजार बार नहीं! पैसा आपको पूरा लेना होगा। मैं आपकी एक नहीं सुनूंगा।"

माधवी रुपये-पैसे के बंटवारे के बारे में अभी नहीं सोच रही थी। उसे कहानी पर फिल्म बनने पर ही विश्वास नहीं था।

"यह सब बाद की बातें हैं," मधुर स्वर में उसने कहा, "मैं पहले यह समझना चाहती हूं कि वे तीनों कहानियों पर एकसाथ फिल्म क्यों बनाना चाहते हैं। और वह भी दो अलग लेखकों की कहानियों पर। सत्यजित रे ने एक फिल्म ऐसे बनायी थी, मुझे याद आता है, 'तीन कन्या' नाम से। पर थीं सब कहानियां रवीन्द्रनाथ ठाकुर की और तब भी छोटी-छोटी कहानियों पर टुकड़ा-टुकड़ा बनी फिल्म मुझे

विशेष प्रभावशाली नही लगी थी। तीन कहानियों के बजाय अगर वे···"

"आप मणि कौल को समझती क्या हैं? कहानियों को अलग-अलग नही फिल्मायेगा वह। तीनों को जोडकर एक अभूतपूर्व स्क्रीनप्ले लिखा गया है, दिखलाऊं?"

"स्क्रीनप्ले लिखा भी गया?"

"जी हां, ये देखिए।" क्लिप से नत्थी किये चार टंकित पृष्ठ उसने उसे थमा दिये।

पढ़कर माधवी चकित-मुग्ध रह गयी। यथार्थ की बारीक पकड़ और कल्पना की स्वच्छंद उड़ान से बुना, संपूर्ण सत्य को उद्घाटित करता, फंतासी का मोहक मायाजाल!

"वाह!" उसके मुंह से निकला, "वाकई अभूतपूर्व है!"

"देखा आपने, तीनों कहानियों का मूल सूत्र एक है; जीवन में आधे सच और आधे झूठ का मिश्रण। बस इसी सूत्र को पकड़कर मैंने उन्हें इस तरह आपस में बुना है कि कोई कह नहीं सकता···"

"आपने बुना है या मणि कौल ने?"

"बुना मैंने है, क्रेडिट मणि कौल को मिलेगा।"

"स्क्रीनप्ले आपने लिखा है?"

"सीनारियो का सारा काम मैंने करके दिया है। फिल्म के हिसाब से फाइनल स्क्रीनप्ले मणि कौल का लिखा समझ लीजिए।"

"आप इतना अच्छा स्क्रीनप्ले लिख सकते हैं, मैं सोच भी नही सकती थी।"

"आप सोचना चाहती कहा है वरना हम तो जाने क्या-क्या कर सकते है!" कौशल ने स्निग्ध मुस्कराहट के साथ कहा।

माधवी की नसों का तनाव कम होता जा रहा था। वह भी मुस्करा दी।

"स्क्रीनप्ले लिखने की बात मणि से करना मुमकिन नही था। वह उसे अपने क्षेत्र में दखलंदाजी समझता। मैंने दो-तीन सीनारियो लिखकर यूंही उसे पकडा दिये, कहा, सिनेमाटोग्राफी के बारे में हम ज्यादा कुछ जानते तो नहीं पर देख लीजिए, शायद कुछ आपके काम का हो। पढ़कर मणि वाह-वाह कर उठा। कहने लगा, विजुअल की तुम्हारी पकड़ बेमिसाल है। मेरा बस चले तो इस काम के लिए तुम्हें अलग पैसे दिलवाऊं पर क्या करूं, हमें अपने ढग से स्क्रीनप्ले लिखवाना पड़ता है और उसके लिए मेहनताने के पैसे भी देने पडते हैं। पर क्रेडिट में तुम्हारा नाम मेरे नाम के साथ जायेगा। हम तो इसीमें खुश हैं, माधवी जी, पैसा न कभी हमें मिला, न मिलेगा।"

माधवी दो-तीन बार सीनारियो पढ गयी। "वाकई चमत्कृत करने वाली चीज है," उसने कहा।

"कोई सुझाव हो तो दीजिए। मैं चाहता हूं, लोग फिल्म देखें तो कह उठें, ऐसी चीज हिंदुस्तान में पहले नहीं बनी।"

"उसके लिए मेरे सुझावों की जरूरत नहीं पड़ेगी। सारा काम तो आप कर ही चुके हैं।"

"तो तय रहा," कौशल बोला, "पच्चीस हजार रुपया आपको मिलेगा और पच्चीस मुझे।"

"नहीं-नहीं," माधवी को कहना पड़ा, "आपका हिस्सा ज्यादा होना चाहिए। दो तिहाई काम आपने किया है बल्कि उससे भी ज्यादा···" कहते-कहते उसे खयाल आया कि मणि कौल जो पैसा देगा, उसमें से कौशल आसानी से कंपोजिंग एजेंसी के लिए लिया गया रुपया लौटा सकता है। पर मुंह खोलकर कह नहीं पायी।

"मैंने किया, आपने किया, एक ही बात है। काम होना चाहिए। मैं तो बस एक चीज चाहता हूं, फिल्म में कोई कमी न रहे। पैसा आपको मिला, मुझे मिला, एक ही बात है। बल्कि मैं तो मणि से कहने वाला हूं कि अनुबंध आपसे करे, सारा रुपया आपको दे; उसमें से जितना चाहें, आप मुझे दे दें।"

इससे तो कह देता, कंपोजिंग एजेंसी के लिए दिया गया रुपया काटकर मुझे दे दें, बात व्यावहारिक धरातल पर रहती। माधवी सहज बनी रह सकती थी।

"जिस दिन आपने कहा कि आपकी महत्त्वाकांक्षा है कि मणि कौल आपकी कहानी पर फिल्म बनायें, उसी दिन मैंने तय कर लिया था कि जब तक आपकी इच्छा पूरी नहीं हो जायेगी, मैं मरूंगा नहीं। कहीं तो आपके काम आऊं। जानती हैं, मेरी महत्त्वाकांक्षा क्या है? बस यह कि मर जाऊं तो आप मुझे स्नेह और सद्भावना के साथ याद करें।"

माधवी का अंतर्मन भीग गया। आंखें नम हो आयीं। शरीर में स्फुरन होने लगा। वाह, क्या आदमी है!

उसने सुना, वह पूछ रहा है, "उपन्यास आगे लिखा?"

"नहीं," उसने कहा।

"क्यों?"

माधवी के पुलकित शरीर को गुदगुदाती एक नन्ही शैतान बालिका बोल उठी, "क्योंकि आप यहां नहीं थे।"

"अब तो मैं आ गया हूं," कौशल ने इतनी गंभीरता से कहा कि वह हँस पड़ी।

"अरे," उसने कहा, "आप तो सच मान गये!"

"मेरे लिए आपकी हर बात सच है।"

"और जो दो विरोधी बातें एकसाथ कहूं तो?"

"तो उनमें से जो सच होगी, मुझ तक पहुंच जायेगी।"

"तो सुनिए, मेरे उपन्यास लिखने-न लिखने का आपसे कोई तअल्लुक नहीं है।"

"फिर लिखा क्यों नही ?"

"बस, नही लिखा।"

"पर क्यो ?"

"होगा कोई निजी कारण।"

"क्या ?"

"बतलाना जरूरी नही है।"

माधवी की पुलक गायब हो चुकी थी। मन की खरोचें उभरने लगी थीं। वह नही चाहती थी कि वापस हताशा के उसी गढे मे दफन हो जाये जिसमे पिछले महीने गर्क रही है और जहां से यह सनसनीखेज खबर अचानक उसे बाहर खीच लायी है।

"छोड़िए," उसने कहा, "इस वक्त हम उससे कही ज्यादा दिलचस्प बात कर रहे हैं।"

उसकी बात पूरी नही हुई थी कि कौशल बोल उठा, "राकेश जी और आपके संबध तो ठीक हैं न ?"

क्षण-भर को माधवी भौचक रह गयी पर जल्दी ही सभलकर जोर देकर बोली, "बिल्कुल ! राकेश और मेरे संबध ठीक क्या हैं, आप नहीं जानते वरना ऐसी बात सपने में भी आपके दिमाग मे न आती।"

बात जितनी जोर से कही जा सकती थी, उसने कह दी, पर एक अनाम डर उसे भीतर तक मथ गया। वाकई क्या आदमी है ! एकदम मन की बात सूघ लेता है।

पर इस खबर को सुनने के बाद सब ठीक हो जायेगा। सारी सवादहीनता समाप्त हो जायेगी। खुशी के अतिरेक में राकेश और माधवी एक-दूसरे को गले लगा लेंगे, बांहो मे जकड लेंगे, नाचेंगे, गायेंगे, झूम-झूमकर खुशी मनायेंगे। मणि कौल। मामूली नाम नही है। मणि कौल ! मणि कौल ! मंदिर की घंटी की तरह नाम उसके मन मे बजने लगा और एक लापरवाह मदहोशी उसपर छाने लगी। 'मणि कौल मेरी कहानी पर फिल्म बना रहे हैं और मैं नाच नही रही, गा नही रही, छत से चिल्ला-चिल्लाकर आने-जाने वालों को खबरदार नही कर रही! जश्न मनाने के बजाय कुर्सी पर पड़ी बासी मुर्दे की तरह गंधा रही हू। नहीं ! जश्न होगा ! कौशल कुमार भी क्या याद करेगा, माधवी खुशी मनाना खूब जानती है !'

सिर से पांव तक स्फुरित होकर माधवी उछलकर खडी हो गयी।

"व्हिस्की पियेंगे ?" उसने कहा।

"क्या ?!" अचंभित कौशल ने सिसकारी भरी।

"हां, कुछ धमाका होना चाहिए। मिठाई से काम नहीं चलेगा। खबर के लायक जश्न होना चाहिए। दूं?"

"दे दीजिए," बमुश्किल कौशल के मुंह से निकला।

एक गिलास में पैग बनाकर माधवी ने कौशल को थमा दिया।

"और आप?" उसने कहा।

माधवी अलमस्त भाव से हँस दी। "मैं उन लोगों में से हूं जो पानी पीकर मदहोश होने की ताब रखते हैं। यह देखिए।"

अपने गिलास में ठंडा पानी डालकर उसने खनकती हँसी के साथ कहा, "चियर्स!"

"चियर्स।" कौशल ने यंत्रवत् दुहराया।

माधवी ने अपना गिलास उसके गिलास से टकरा दिया और कहा, "हमारी सफलता को।"

फिर गिलास से चुस्की भरकर मस्त भाव से बोली, "मय में वह मस्ती कहां जो मेरे मस्ताने में है।" और खिलखिलाकर हँस पड़ी।

कौशल मंत्रमुग्ध, एकटक उसे देखता रहा, हंसी में शरीक नहीं हुआ।

"कहीं यह मेरी कहानी की तरह आधा सच तो नहीं।" कहकर माधवी फिर खिलखिलायी, "कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि मणि कौल मेरी कहानी पर फिल्म बनायेंगे। चियर्स और चियर्स!" दो बार अपना गिलास कौशल के गिलास से टकराकर उसने घूंट भरा कि देखा, सामने राकेश खड़ा है।

दो गिलासों के टकराने की आवाज इतनी तेज तो नहीं होती कि कमरे के हर कोनें से लौट-लौटकर आती रहे? फिर क्या है कि माधवी के हाथ का गिलास बदस्तूर घनघनाये जा रहा है? कौशल का गिलास तो गजों दूर है उससे। एक त्रिकोण बनाये वे तीनों अपनी-अपनी जगह एकदम चुप खड़े हैं, उस शोर के भंवर में कैद, जो दो गिलासों के आपस में टकरा जाने से पैदा हुआ था और अपनी धुरी पर चक्कर काटे चला जा रहा है। शोर कम हो तो माधवी कुछ कहे···

"राकेश जी को नमस्कार," कौशल ने कहा।

राकेश ने प्रत्युत्तर दिया होगा, शोर के कारण माधवी सुन नहीं पायी। अब माधवी की बारी है। अपनी बात फौरन कह देनी चाहिए, इससे पहले कि यह शोर उसके दिलोदिमाग पर हावी होकर हमेशा के लिए उसे गूंगा कर दे।

"मेरे गिलास में पानी है," उसके मुंह से निकला।

"तो?" राकेश ने कहा।

कितनी जोर से चीखा होगा वह कि कमरे का तमाम कोलाहल बर्फ की तरह जम गया। राकेश बर्फीली पहाड़ की चोटी पर पहुंच गया और माधवी नीचे तल-हटी के सपाट धरातल पर रह गयी। बर्फ पर चढ़ना आसान नहीं है, पांव फिसल-

फिसल जाता है।

"मैं नाटक कर रही थी," माधवी ने कहा।

राकेश ने गौर से उसे देखा।

"खुश होने का!" वह चीत्कार कर उठी।

"आपके गिलास में भी पानी है?" राकेश ने कौशल से पूछा।

"जी नहीं!" कौशल ने कहा। धनुष की टंकार-सी आवाज क्यों गूंजी इसकी? माधवी ने चौंककर उसकी तरफ देखा। इसके चेहरे पर छाया विश्वविजयी दर्प कितना वीभत्स है।

"आप भी हमारी खुशी में शरीक होइए न," वह राकेश से कह रहा है, "मणि कौल हमारी कहानियों पर फिल्म बना रहे हैं।"

"हमारी···?"

"जी। मेरी और माधवी जी की कहानियों पर।"

"ओह!" राकेश ने ऐसे कहा जैसे कोई भारी भोथरा पत्थर माधवी के सिर पर दे मारा हो।

"मुझे पहले नहीं मालूम था! अभी पता चला···" माधवी सफाई देने लगी तो बात काटकर राकेश ने कौशल से पूछा, "इसीलिए आप बंबई गये थे?"

"जी हां, जैसे ही बात पक्की हुई, वापस चला आया।"

"एजेंसी का क्या किया?"

"लड़का देख रहा है। बढ़िया चल रही है।"

"इतने दिन हिसाब क्यों नहीं दिखलाया?"

"बच्चा है। सकोचवश आपके पास आया नहीं होगा।"

"आगे क्या करने का इरादा है?"

"यह कह रहे थे, मणि कौल जो पैसा देंगे, उसमें से एजेंसी का पैसा लौटा देंगे," माधवी बीच में बोल पड़ी।

"लगता है," राकेश ने सर्द आवाज में कहा, "मेरे पैसे वापस करने की फिक्र इनसे ज्यादा तुम्हें है।"

माधवी के पांव उखड़ गये। इतना जबरदस्त धक्का खाकर बर्फ पर कौन टिका रह सकता है!

"माधवी जी बिल्कुल ठीक कह रही हैं," कौशल ने कहा, "मणि कौल से मैंने कह दिया है कि फिल्म का पूरा पैसा माधवी जी के नाम से दे।"

"तो?"

"जी?"

"फिजूल बात है। आपके हवाई किलों से मेरा कोई सरोकार नहीं है। मैं अब तक का हिसाब जानना चाहता हूं। कल लेकर आइए, मेरे दफ्तर में।"

"कल तो नहीं हो सकेगा।"

"क्यों ?"

"आज तो मैं लौटा हूं।"

"तो ?"

"मैंने आपसे पहले ही कहा था, हिसाब-किताब मुझे आता नहीं। एक दिन में कैसे बनाऊंगा ?"

"साफ क्यों नहीं कहते कि आप जानते ही नहीं, आपके पीछे काम हुआ भी है या नहीं और हुआ है तो कितना।"

"काम बराबर हो रहा है।"

"मुझे बिना बतलाये आप बंबई चले कैसे गये ?" राकेश का स्वर और सख्त हो गया।

"आप भूल रहे हैं, राकेश जी, मैं आपका मुलाजिम नहीं हूं।" कौशल ने तमककर कहा।

क्षण-भर राकेश उसकी तरफ देखता रहा, फिर धीमे से हँस दिया, बोला, "हां, मुलाजिम नहीं, मेहमान हैं। और ह्विस्की लीजिएगा ?"

अब जाकर, राकेश के आने के इतनी देर बाद, कौशल के चेहरे की रंगत उड़ गयी।

"गलती हो गयी," उसने कहा, "पहले एजेंसी का हिसाब लाना चाहिए था, तब यह खबर। याद रखना चाहिए था कि आप व्यापारी हैं, कलाकार नहीं।"

"कलाकार होना आदमी को सब जिम्मेवारियों से बरी नहीं कर देता," राकेश ने कहा।

"तो हिसाब आपको कल ही चाहिए ?"

"यकीनन।"

"अच्छा तो चलें," उसने कहा और आगे बढ़कर एक कागज माधवी को पकड़ा दिया।

दो रुपये का स्टॉम्प पेपर था। उसपर कौशल का शपथपत्र छपा हुआ था। सत्यापन, अनुप्रमाणित, अभिसाक्षी जैसे कानूनी शब्दों के बीच से जो माधवी के पल्ले पड़ा वह कौशल का हलफनामा था, "मैं, कौशल कुमार, ऊपर उल्लेखित अभिसाक्षी ·· घोषित करता हूं, यह कि (१) अभिसाक्षी वृत्ति से लेखक है और एतथ द्वारा अपनी अब तक लिखी गयी और भविष्य में लिखी जाने वाली पुस्तकों से संबंधित सभी प्रतिलिपि अधिकार (कापीराइट) श्रीमती माधवी चौधरी के नाम पृष्ठांकित करता हूं।

(२) "यह कि वह रॉयल्टी वसूल करने और प्रकाशकों व मुद्रकों के साथ व्यवहार करने की एकल हकदार होंगी।"

"क्या है यह !" नासमझ महसूस करते हुए माधवी ने कहा।

"अपनी जिम्मेवारी पूरी कर रहा हूं," कौशल ने सगर्व कहा।

राकेश ने माधवी के हाथ से कागज छीन लिया। गौर से पढ़ा और बोला, "वैसे रॉयल्टी तो आप एडवांस ही लिया करते होंगे !"

"आगे से नहीं लूंगा," कौशल ने कहा, "मेरे पास जो पूंजी है, मैंने पूरी-की-पूरी माधवी जी को अर्पण कर दी। इससे अधिक कोई करोड़पति भी नहीं दे सकता। जहां तक आपके हिसाब का सवाल है, कल लेता आऊंगा। तो चलूं ?" उसकी दृष्टि माधवी की तरफ घूम गयी। न चाहते हुए भी माधवी के फक पड़े चेहरे पर हल्की लाली दौड़ गयी। कहा उसने कुछ नहीं। कहा राकेश ने भी कुछ नहीं। कौशल बाहर निकल गया। भीतर चुप्पी छायी रही।

तुम बहुत गलत प्रयोग कर बैठे राकेश, माधवी ने कहना चाहा। यह आदमी खुद ऊपर नहीं उठेगा पर हमें जरूर नीचे गिराता जायेगा, खुद अपनी नजरों में। एक-दूसरे से नजरें न चुरायें तो शायद बचे रह सकें वरना···चोर-नजरों से माधवी ने राकेश को देखा जरूर पर जो कहना चाहती थी, नहीं कहा। उसके पांव धरती से उखड़ चुके थे। अधर में लटका इन्सान कुछ नहीं कह सकता।

एक पैग शराब की क्या बिसात कि कौशल के सिर चढ़कर बोले। दस पैग पीकर भी उसके कदम लड़खड़ाते नहीं, जबान बहकती नहीं। उसकी बातें लोगों को बहकी-बहकी लगती जरूर है पर उसका तअल्लुक शराब से नहीं होता। कौशल जब पूरी तरह तार्किक होता है तभी लोग उसे बिल्कुल दीवाना मानकर चलते हैं। समाज के नियम युक्ति पर नहीं, पुनरावृत्ति पर टिके है। जो बार-बार होता आया है, वही ठीक है; जो पहली बार हो रहा है, एकदम गलत। नहीं, इतनी सीधी-सरल विभाजन-रेखा नहीं है। पहली बार होने वाली चीज भी उस दर्जे की हो सकती है कि बार-बार दुहरायी जा सके। जो दुहराया जा सके वह ठीक है, जिसे दुहराने की ताकत औसत आदमी में न हो, वह गलत।

दरअसल जब आदमी खुद को प्यार करता है और दूसरों को केवल बर्दाश्त, तो उसके कदम अनायास समाज-स्वीकृत परिपाटी पर पड़ते हैं। इधर-उधर लड़खड़ायें भी तो जल्द वापस आ जाते हैं। हटकर चलते भी हैं तो बस दो-चार कदम और वह भी नये-पुराने रास्तों के बीच ऐसा संतुलन बनाकर, कि बहुत शीघ्र, उन जैसे अन्य स्वनामधन्य सामाजिक प्राणी उनकी सहायता को आ जुटते हैं और दोनों को मिलाकर एक कर देते हैं। लोग एक ही बात जानते हैं, यह कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है और इसलिए समाज उस आदमी को मान्यता देता है जो समाज में रहकर अपने लिए जिये और उस व्यक्ति को पागल बतलाता है जो समाज से बाहर रह-

कर समाज के लिए जीने की कोशिश करे। जैसे ही आदमीअपने विवेक को सामाजिक नीति से ऊपर रखने लगता है, समाज के लिए वह विवेकहीन हो जाता है।

कौशल समाज से नफरत करता है और खुद को सिर्फ बर्दाश्त। नफरत वह अपने से भी करता है पर नफरत के काबिल बनने के लिए खुद को नहीं, समाज को जिम्मेवार मानता है। जो भी वह करता है, जिस किसीके साथ, इसी तर्क के अंतर्गत करता है। ऐसा आदमी बहक कैसे सकता है ? बहका हुआ तो समाज है, जो घिसी-पिटी लीक से बायें-दायें पड़ते उसके कदमों को लड़खड़ाने का नाम देता है। कौशल कभी लड़खड़ाया नहीं। इसीलिए तो आज माधवी के घर जाते वक्त फिल्म का स्क्रीनप्ले ही नहीं, अपना वह हलफनामा भी जेब में डालकर चला था !

फिर क्या हुआ कि आज सिर्फ एक पैग शराब पीकर, उस घर से निकलते-निकलते उसके कदम डगमगाने लगे, निगाहें बहकने लगीं और जोर-जोर से हँसने को जी चाहने लगा ?

हवा के बहाव के साथ डगमगाते हुए उसने जेब में हाथ डालकर सिगरेट निकालनी चाही तो खाली जेब ने स्क्रीनप्ले की याद दिला दी। उसे तो वह माधवी के घर ही छोड़ आया ! तो जाये लौटकर मांगने के लिए ? पति-पत्नी क्या अब तक वैसे ही आमने-सामने बुत बने खड़े होंगे ? अब तक तो उनके पैर जमीन के भीतर धंसकर उन्हें एक मंच प्रदान कर चुके होंगे। महान् व्यक्तियों को मंच मिलना ही चाहिए जहां खड़े होकर वे दुखी-हारी गरीब जनता को उसकी जिम्मेवारियां याद दिला सकें। कौशल को याद दिलाने की ज़रूरत नहीं है। अपनी जिम्मेवारी निभाना खूब जानता है। उसका हलफनामा पढ़कर बेचारी माधवी'''उसके चेहरे पर मुस्कराहट खिच गयी। तो जाये उस आदर्श दम्पति के घर और मांगे अपने कलाकार का दाय ? स्क्रीनप्ले नहीं होगा तो फिल्म कैसे बनेगी ? मणि कौल बेचारा'''!

सहसा बेतहाशा दौड़कर वह बस-स्टॉप के पास खड़े पीपल के पेड़ से लिपट गया और बुदबुदा उठा :

"तुम्हें एक भेद की बात बतलाता हूं, किसीसे कहना मत। कहोगे भी कैसे ? तुम ठहरे बेजबान, ठूंठ। पर मैं हाड़-मांस का बना इन्सान हूं, नहीं कहूंगा तो पेट फूलने लगेगा। गरीब आदमी का पेट नहीं फूलना चाहिए; देखने वालों को गलतफहमी हो सकती है। उसे संभ्रांत आदमी समझ बैठेंगे तो बहुत गड़बड़ हो जायेगी। संपूर्ण वर्ग-विभाजन खतरे में पड़ सकता है। तो सुनो, हे स्थितप्रज्ञ वृक्ष, मेरा एक मित्र है, रवि त्यागी और उसका एक मित्र है मणि कौल। तो मणि कौल मेरा मित्र हुआ। हुआ न ? मित्र का मित्र और क्या हो सकता है ! अब मेरा एक मित्र हुआ मणि कौल और एक माधवी चौधरी। श्रीमती माधवी चौधरी ! मेरी तमाम मिल्कियत की वारिस !" वह ठठाकर हँसा और हँसी

रुकने पर बुदबुदाता गया, "तो मणि कौल और माधवी चौधरी भी मित्र हुए। हुए न ? होना ही पड़ेगा। तर्कशास्त्र के असूल बदले नहीं जा सकते।

"मणि कौल बढ़िया आदमी है, मेरी तरह उपेक्षित जीनियस ! प्रशंसक हैं, पैसा नहीं। माधवी जी के पास पैसा है और प्रशंसक की दृष्टि भी। दोनों को मिला दूं तो···!

"अच्छा जाने दो। यह बतलाओ सीनारियो बढ़िया लिखा गया है न ? फिल्म जोरदार बनेगी और जरूर बनेगी। चार दिन मैं किसीके साथ गुजार दूं और वह मेरी बात से प्रभावित हुए बगैर रह जाये, असंभव है। जहां तक जीनियस का सवाल है, मणि कौल क्या है मेरे सामने ? हां, तो मैं कह रहा था···क्या कह रहा था···जाने दो···नशा उतरने लगा है। पूरा सच मैं सिर्फ नशे में बोल सकता हूं। सच की परिभाषा जानते हो न, तरुवर देवता ? कल्पना के हसीन गुब्बारे को जंग लगी सुई चुभाकर फोड डालने को सच कहते हैं। और यह काम सिर्फ बड़े आदमी कर सकते हैं। मेरे जैसा आदमी तो जिंदा ही गुब्बारों के सहारे रहता है। तभी तो दस पैग ह्विस्की पीकर भी मुझे नशा नहीं होता। नशा होता है तब, जब गुब्बारा कुछ ज्यादा ऊंची उडान भर लेता है और तब मैं···!

"छोड़ो। देखो, बस आ रही है, मैं चला···"

पेड के तने से अपने को अलग झटककर कौशल बस की तरफ दौड़ा, ऐसे जैसे नकाब फेंककर भुतहा सच उसका पीछा कर रहा हो। बस मे चढकर उसने अपनी आंखें कसकर बंद कर ली। मैं जो चाहता हूं वही देखता हूं। इतना कमजोर नहीं हूं कि पीछे से आ रहे हमलावर के शिकंजे मे फंस जाऊं। मै न चाहूं तो दुनिया की कोई ताकत मुझे पीछे मुडकर देखने पर मजबूर नहीं कर सकती।

सोलह

सब-कुछ एकसाथ होता है। बहुत ही घिसा-पिटा जुमला है। सच की तरह।

कभी-कभी एक 'होना' दूसरे 'होने' की काट बन जाता है और दरार के बीच से आदमी बच निकलता है। ऐसा न हो तो···

माधवी और राकेश के बुत बैठक से चलकर खाने की मेज तक गये, फिर वहां से उठकर सोने के कमरे मे, पर बदन पर पुते पलस्तर के भीतर से निकलकर इन्सानी रिश्ता कायम न कर सके। जबान थथराती रही, आंखें जमी रहीं ··· चुप्पी की दीवारों में चिने हुए थे कि फोन की घंटी घनघना उठी।

कौशल ! जेहन में बिजली का झटका लगा। माधवी के हाथों ने फोन उठाने से इन्कार कर दिया।

राकेश ने फोन नहीं उठाया। बिस्तर पर सपाट लेटा छत को घूरता रहा।

फोन बजता गया।

माधवी की निगाहें राकेश के पास से होती हुई वापस छत की तरफ जा रही थीं कि बीच में राकेश की नजरों से टकरा गयीं। क्षणिक मुठभेड़ के बाद राकेश ने आंखें फेर लीं पर माधवी चोट खा चुकी थी। फोन उसे उठाना पड़ा।

कौशल नहीं था।

सिर में चढ़ा खून सर्र से नीचे उतरा। अप्रत्याशित निष्कृति भी एकदम बर्दाश्त नहीं होती। पलंग की पाटी का सहारा लेकर उसने खुद को संभाला ही था कि एक बार फिर खून सिर चढ़ गया। बहन ममता का घबराहट से भरा स्वर क्या कह रहा है, समझ में आ गया था। मां को जबरदस्त दिल का दौरा पड़ गया है !

"ओह भगवान्, मैं फौरन आ रही हूं," कहते-कहते गले से हिचकी निकल गयी।

राकेश से कुछ कहना नहीं पड़ा। हिचकी में बंधे शब्द उसने सुन लिये। "चलो," उसने कहा और माधवी से पहले ही कमरे से निकल गया। जल्दी-जल्दी सीढ़ियां उतरकर, गाड़ी में पास बैठकर मां के घर, तिलक रोड, जाते-जाते उनके बीच की चुप्पी खुद-ब-खुद आत्मीय हो गयी। माधवी ने अपना हाथ राकेश की बांह पर रख लिया।

सुबह तक मां की तबीयत इतनी जरूर संभल चुकी थी कि डाक्टर ने उन्हें खतरे से बाहर घोषित कर दिया पर साथ ही यह भी ताकीद कर दी कि 'एनजाइना' का दर्द अगर इसी तरह उठता रहा तो स्थिति कभी भी गंभीर रूप ले सकती है। लिहाजा उन्हें फौरन अस्पताल में दाखिल कर देना चाहिए। मां किसी हालत में भी अस्पताल जाने के लिए तैयार नहीं थीं। आखिर डाक्टर इस बात के लिए राजी हो गया कि आक्सीजन आदि का प्रबंध करके फिलहाल उन्हें घर पर ही रखा जाये पर घर वाले इस बात का पूरा खयाल रखें कि किसी किस्म का शोरगुल या परेशानी उनके आराम में विघ्न न डाले।

माधवी और ममता ने तय किया कि वे बारी-बारी से मां के पास रहेंगी। पेथेडीन का इंजेक्शन लेकर मां सो गयीं तो ममता घर चली गयी और राकेश दफ्तर। माधवी उनके पास रह गयी।

पेथेडीन के नशे में मां सो क्या रही थीं, बेहोश पड़ी थीं। चेहरे से दर्द की शिकनें मिट गयी थीं, एक बालसुलभ चिकनाहट वहां फैल गयी थी। होंठ नीचे को लटककर अनमनी मुस्कराहट में फैल गये थे। निस्पंद देह और विकार-रहित मुख मृत्यु की याद दिला रहा था। माधवी का दिल भर आया। उसने अपना

हाथ बिस्तर पर निर्जीव पड़े उनके हाथ पर रख दिया। हाथ गरम था, नब्ज चल रही थी। माधवी आंसू पी गयी। आंखें बंद करके हाथ की गरमायी महसूस करती हुई, बचपन की यादों में खो गयी। ममता के लौटकर आने तक, वह ऐसे ही अपलक मां को निहारते हुए, उनके पास बैठे रहना चाहती थी।

फोन की घंटी बजी तो वह ऐसे चौंककर उठी जैसे भूत देख लिया हो। भागकर चोंगा उठाया और आवाज को दबाकर अधिक-से-अधिक धीमा करके कहा, "हलो।"

"कौशल हूं!" उधर से चिल्लाकर कहा गया।

"यहां फोन क्यों किया ?" गुस्से से उफनते शब्दों को भी घोटकर फुसफुसाहट से ऊपर नहीं उठने दिया जा सकता था।

"इतनी ढीली आवाज में क्यों बोल रही हैं ? क्या हो गया ?"

"देखिए, मां की तबीयत बहुत खराब है। मैं बात नहीं कर सकती। फोन रख दीजिए," संयत रहने की कोशिश करते हुए उसने समझाकर कहा।

"मुझसे नाराज हैं क्या ?"

"आपने सुना नहीं, मां की तबीयत…"

"वह तो मैंने सुन लिया। पर आप इतनी ढीली क्यों हो रही हैं ? कुछ हो गया क्या ?"

"जी हां !" माधवी के मन में नफरत के बलबले उठ गये, "मां को दिल का दौरा पड़ा हुआ है। फोन रख दीजिए।"

"मुझे आपसे मिलना है," उधर से आवाज आयी।

"क्या ?! आप पागल तो नहीं हैं !" हैरत ने गुस्से और नफरत तक को जज्ब कर लिया। "मैं कह रही हूं फोन रख दीजिए!" कहकर उसने फोन काट दिया और क्षण-भर वहीं खड़ी हांफती रही। ठंडा पानी पीकर अपने को प्रकृतिस्थ किया और वापस मां के कमरे की तरफ चल दी।

आधे रास्ते पहुंची थी कि फोन की घंटी फिर बजी। चील की तरह झपटकर उसने चोंगा उठाया और सख्त स्वर में 'हलो' उगल दिया।

"कल मैं स्क्रीनप्ले आपके घर छोड़ आया था, वह मुझे चाहिए।"

"ईडियट!"

"क्या ?"

"मैंने मना किया है फिर बार-बार यहां फोन क्यों कर रहे हैं ?" अंत तक आते-आते उसका गुस्सा आत्म-दैन्य में डूब गया, यहां तक कि आंखों में आंसू आ गये।

"स्क्रीनप्ले कब लूं ? मणि कौल आ रहा है दिल्ली, उसे देना है।"

"यहां नहीं है…"

"तो घर से ले लूंगा। आप वापस कब पहुंचेंगी?"

"स्क्रीनप्ले आप मेरे घर छोड़ किस खुशी में गये थे?"

"जानबूझकर नहीं छोड़ा। मैं आपका काम कर रहा हूं और आप हैं कि···"

"ठीक है। पोस्ट से भेज दूंगी।"

"पर मुझे तो कल चाहिए। मणि कौल कल ही पहुंच रहा है।"

"तब कुछ नहीं हो सकता।"

"वाह, आपने कह दिया और नहीं हुआ। मेरी सारी मेहनत अकारथ नहीं हो जायेगी? रात को तो घर लौटेंगी, मैं किसी वक्त आकर ले जाऊंगा। ग्यारह, बारह, एक बजे···"

यह आदमी तो पागल है, माधवी के मन में बजा। पर फौरन उसने अपनी गलती महसूस की। पागल नहीं एकदम होशियार है। सजग, खुदगर्ज, आत्मग्रस्त, सेडिस्म की हद तक आत्मलीन। ऐसे आदमी से मां की बीमारी का जिक्र करना मेंढक के गंदे पोखर में हाथ डालने जैसा है।

"ले जाइएगा आठ बजे," उसने शब्दों को चाबुक की तरह सरसराते हुए कहा, "पर यहां फोन मत कीजिएगा, समझे!"

"मुझे क्या जरूरत है···"

"मैं फोन काट रही हूं। दुबारा मत मिलाइएगा।" उसने सख्त स्वर में कहा और फोन काट दिया।

कुछ देर वह वहीं खड़ी रही, कहीं फिर न बज उठे। मन में घृणा का इतना तीव्र ज्वार उठ रहा था कि खड़े रहना मुश्किल हो रहा था। सिर में घुमेर उठ रही थी, आंखों के आगे अंधेरा छा रहा था और उल्टी के साथ रुलाई फट पड़ने को हो रही थी। उसके हाथ में चाबुक होता तो इस आदमी को···

भीतर के कमरे से मां के कुनमुनाने की आवाज सुनायी दी तो भागकर वह उनके पास जा पहुंची। मां ने एक बार आंखें खोलीं, इधर-उधर देखा, फिर बंद कर लीं। पेथेडीन का नशा अभी बाकी था। नींद में खलल डाला इसी फोन ने था। एक बार फिर नफरत का बलगम उसकी छाती और गले में लिसड़ गया। किसी तरह यह आदमी मर नहीं सकता, उसने गहरे अवसाद के साथ सोचा।

शाम सात बजे ममता और राकेश दोनों तिलक रोड पहुंच गए। ममता मां के पास रह गयी, माधवी राकेश के साथ घर लौट आयी। राकेश का व्यवहार इतना सौहार्दपूर्ण था कि घर पहुंचने पर, पहले दिन की सारी तनाजनी भूलकर वह मनुहार कर उठी, "आठ बजे वह ईडियट कौशल कुमार अपना स्क्रीनप्ले लेने आयेगा। मैं उससे मिलना नहीं चाहती। प्लीज, वह आये तो स्क्रीनप्ले उसे पकड़ा

देना, बैठक की मेज पर पड़ा है।"

"यहां आयेगा ?" राकेश के माथे पर शिकन उभर आयी।

"क्या करूं ? मुझे तो पता भी नही था, उसे इसकी जरूरत है। मां के घर फोन करके उसने···"

"पहले कहती तो मैं तीन बजे उसे दे देता। दफ्तर तो आया ही था।"

"मुझे क्या पता था, वह उल्लू का चरखा इसे यहां छोड़ गया है। अब कहता है, कल मणि कौल दिल्ली आ रहे हैं, उन्हें देना है। बार-बार तिलक रोड फोन मिलाकर मां को डिस्टर्ब कर रहा था। तंग आकर मैंने···" कहते-कहते माधवी रो पडी।

"पता नही तुम इतनी कमजोर कब से हो गयी।" राकेश ने लंबी सांस भरकर कहा।

"एकदम जोंक है। पता नही कहां से आ चिपका है खून चूसने को!"

"अच्छा, धीरज रखो, मैं दे दूंगा," राकेश ने कहा तो वह एकदम उसकी छाती से आ लगी। "मां ठीक हो जायेंगी न ?" उसने कहा।

"बिल्कुल। जरूर। बहुत जल्दी। अपने को सभालो !" लाड़-भरे शब्दों से राकेश उसे थपकता रहा।

राकेश का अपनापन पाने के लिए अब मुझे कमजोर बच्चे की तरह सुबकना पडता है, उसके मन मे उठा पर उसने सुबकना बंद नही किया। राकेश का स्पर्श ही संबल था इस समय।

आठ बजने से पहले वह आलोक और समीर को लेकर अपने सोने के कमरे मे बंद हो गयी। समीर तो बुलाते ही पास आ लेटा पर आलोक को बैठक के पास से हटाये रखना इतना आसान नही था। बडी मुश्किल से यह कहकर कि उसे बहुतसी बातें समझानी हैं जिससे वह उसकी अनुपस्थिति मे समीर की देखभाल कर सके, उसे अपने पास बैठने के लिए राजी किया। मा की बीमारी के बारे में देर तक खूब समझाकर कहा, फिर भी अगले दिन दुपहर को उसके घर पर न रहने की बात सुनकर समीर एकदम रो पड़ा। उसे समझाने के बजाय माधवी खुद रो दी।

आलोक ने उसे बांह से पकड़कर हिलाया, फिर ठीक राकेश की नकल करता हुआ बोला, "पता नही तुम इतनी कमजोर कब से हो गयी।"

माधवी का रोना एकदम रुक गया पर समीर था कि सुबके जा रहा था। उसकी पीठ पर एक लाड-भरा धौल जमाकर आलोक ने कहा, "अरे रोता क्यो है बुद्धू ! मम्मी नही होंगी तो क्या हुआ ? मैं तो हूंगा। दोनों मिलकर हरिचरण के साथ कचे खेलेंगे। मम्मी मना करती हैं न ?" आखिरी बात उसने माधवी को आंख मारकर, फुसफुसाकर समीर के कान मे कही।

माधवी के होंठों पर क्षीण-सी मुस्कराहट खेल गयी। समीर ने सुबकना बंद कर दिया पर हथियार नहीं डाले। ठुनककर बोला, "सुबह तुम आलू के परांठे बनाकर जाना। हरिचरण की बनायी रद्दी सैंडविच लेकर नहीं जाऊंगा स्कूल।"

"पक्का!" माधवी ने कहा और देर तक उसके सिर पर हाथ फेरती रही। आलोक को भी बातों में अटकाये रखा। कमरे से बाहर वह तभी निकली जब राकेश ने आकर बतला दिया कि कौशल आकर लौट गया है।

अगली सुबह, जल्दी उठकर अपना वादा निभाने माधवी रसोईघर में जा घुसी। एक चूल्हे पर परांठे सेंकने शुरू किये तो दूसरे पर खीर भी चढ़ा दी। बनाकर जायेगी, समीर खुश रहेगा। सात बजे होंगे कि राकेश ने आकर कहा, "कौशल का फोन है। बात करोगी या मना कर दूं?"

"कह दो, नहीं हूं," वितृष्णा से सिहरकर उसने कहा कि एक भयावह डर उसे मथ गया। अभी बात नहीं की तो तिलक रोड फोन करेगा। बार-बार। कल की तरह···हो सकता है, यहां से समझाकर कहे तो समझ ही जाये, वहां फोन आता है तो मारे गुस्से के ठीक से बात करना मुश्किल हो जाता है। बाकी परांठे हरिचरण से सेंकने को कहकर वह फोन के पास चली गयी।

"कल रात क्या हुआ। कहला दिया, तबीयत खराब है," कौशल ने कहा।

"तो?"

"आपसे जरूरी मिलना है। मणि कौल से बात करने से पहले। स्क्रीनप्ले पर आपके पास कोई सुझाव हो तो···"

"मेरे पास कोई सुझाव नहीं है।"

"मेरे पास तो हैं। फाइनल करने से पहले आपसे बात करना जरूरी है। किस वक्त आऊं?"

"किसी वक्त नहीं। आप इन्सान हैं या हैवान? आपकी समझ में इतनी-सी बात नहीं आती कि मां को छोड़कर इधर-उधर घूमना मेरे लिए संभव नहीं है।"

"आप वहां कब जा रही हैं?"

"अभी। फौरन।"

"तो पांच मिनट के लिए मुझसे मिलती जाइए। मैं स्कूटर लेकर त्रिवेणी पहुंच रहा हूं।"

"असंभव!"

"तो ग्यारह बजे आ जाइए।"

"नहीं!"

"आपको साथ न देना हो तो पहले कहा कीजिए, अब मैं मणि कौल से क्या कहूं ?"

"स्क्रीनप्ले है तो आपके पास, दे दीजिएगा।"

"आपसे बात किये बिना फाइनल कैसे कर सकता हूं ?"

"अरे बाबा, मुझसे क्या खाक बात करेंगे। मैंने तो स्क्रीनप्ले लिखने को कहा नहीं था और न मुझे लिखना आता है।"

"कैसे नहीं आता! आप नाटक लिख सकती हैं, इतने बढ़िया संवाद लिख सकती हैं, तो स्क्रीनप्ले क्या चीज है आपके लिए ? मुझसे बढ़िया लिखेंगी।"

"होगा!" उसकी खुशामद पर माधवी का मन थूकने को हो रहा था।

"अच्छा, ऐसा करते है, ग्यारह बजे मैं त्रिवेणी पहुंच जाता हूं, वहां से आपको फोन करूंगा। स्थिति ठीक हुई तो आ जाइएगा।"

"मैं उस वक्त मां के पास हूंगी।"

"वहीं कर लूंगा।"

"कैसे कर लेंगे!" माधवी अपनी पूरी ताकत लगाकर चीख पड़ी, "हजार बार कह चुकी हूं, वहां फोन नहीं करना है। मां की तबीयत खराब हो जाती है।"

"ठीक है, मैं मणि से मना कर देता हूं, हमें फिल्म नहीं बनवानी।"

"इसमें मना करने की क्या बात है ?" अनायास माधवी के मुंह से निकला तो कौशल ने फौरन बात पकड़ ली। बोला, "आपको जब इसमें कोई दिलचस्पी नहीं है तो मुझे बेकार खपने की क्या जरूरत है! मैं मना कर देता हूं।"

माधवी चुप रही। मणि कौल को मना वह नहीं करना चाहती, पर मां को छोड़कर इस आदमी से बात करना भी सह्य नहीं है।

"मणि कौल आपसे मिलना चाहे तो क्या कहूं ?" सहसा कौशल ने ललक-कर पूछा।

माधवी का असमंजस और बढ़ गया। "वह तो मां की तबीयत पर निर्भर करता है। कुछ संभल गयी तो···" उसने कहा।

"आज तीन बजे के लिए तय कर लूं ?"

"कितने दिन हैं वे यहां ?"

"कल जा रहा है।"

"तब···पता नहीं···"

"ऐसा करते हैं," कौशल एकदम सहज, नपे-तुले स्वर में कहने लगा, "मैं और मणि कौल तीन बजे त्रिवेणी पहुंच जाते हैं। स्थिति ठीक रही तो आप आ जाइएगा नहीं तो मैं संभाल लूंगा। ठीक है ?"

"हां," कहती माधवी अपने सख्त शब्दों पर लज्जित हो आयी। लगा समझा-

कर कहने से कौशल समझ सकता है। "देखिए," उसने कहा, "आपको समझना चाहिए, मैं आजकल कितनी परेशान हूं। तिलक रोड फोन बजता है तो मां डिस्टर्ब होती हैं और लंबी बातचीत से तो उनकी तबीयत...देखिए, कितनी भी जरूरी बात क्यों न हो, जिंदगी और मौत का सवाल ही क्यों न हो, आप वादा कीजिए कि वहां फोन नहीं करेंगे।"

"बिल्कुल नहीं करूंगा," कौशल ने तुरंत कहा, "बात को ऐसे कहें तो मैं हमेशा मानने को तैयार हूं। आप फिक्र मत कीजिए, मैं सब संभाल लूंगा। आप अपना खयाल रखिए। बस, आने की कोशिश जरूर कीजिएगा।"

"ठीक है," माधवी ने सहज भाव से कहा।

फोन नीचे रखा तो देखा, राकेश, आलोक और समीर—तीनों की निगाहें उसपर टिकी हुई हैं।

"मणि कौल से मिलने की बात है, आज तीन बजे, चली जाऊं?" उसने कहा।

"जरूर जाना चाहिए," राकेश ने कहा।

इतने में आलोक फट पड़ा। "तुम तो कह रही थीं, नानीजी बीमार हैं," उसने अपमानित करने वाले स्वर में कहा और उसकी बात पूरी होने से पहले ही समीर रो दिया, "हमें कुछ नहीं मालूम। तुम डेढ़ बजे घर लौट आना, बस!"

परेशान, लाचार माधवी ने राकेश की तरफ देखा।

"आज डेढ़ बजे, मम्मी नहीं, पापा घर आयेंगे," राकेश ने फौरन बच्चों से कहा, "फिर हम तीनों जायेंगे नानीजी को देखने, मम्मी वहीं मिलेंगी। ठीक? चलो, अब जल्दी करो, नहीं तो बस निकल जायेगी।"

माधवी ने गद्गद भाव से राकेश को देखा।

"जाओ, अब तुम भी तैयार हो जाओ," राकेश ने कहा, "तीन बजे मैं तिलक रोड आ जाऊंगा मां के पास। तुम हो आना।"

माधवी खुश हो गयी। सच, राकेश साथ हो तो कुछ भी मुश्किल नहीं।

ठीक तीन बजे राकेश बच्चों को साथ लेकर तिलक रोड पहुंच गया। आलोक और समीर, दोनों खूब खुश नजर आ रहे थे। पापा का साथ कभी-कभी मिलता है न। मम्मी तो रोजमर्रा की जरूरतों में से एक है। "रास्ते में आइस्क्रीम खाकर आये हो न," उसने कहा।

"तुम्हें कैसे मालूम?" समीर बोला।

"सूरत से पता चल रहा है!" माधवी हँस पड़ी। मन वाकई खुश था। मणि कौल से मिलने का उत्साह, राकेश का स्नेहपूर्ण व्यवहार, बच्चों की ओर से

करते चलें। कैसा रहेगा?"

"अच्छा रहेगा। पर यह तो मणि कौल के सोचने की वात है।"

"अजी, मणि तो हर वात में हमारी राय मांगता है!" कौशल ने इतने दंभ के साथ कहा कि माधवी हँस पड़ी।

"मणि आता ही होगा। पूरा स्क्रीनप्ले डिस्कस करने का वक्त नहीं है। कोई मजेदार वात सुनाइए।"

माधवी का चेहरा व्यंग्य से विकृत हो गया। "राकेश को हिसाव दिखला दिया?" उसने पूछा।

"जी हां।"

"सव ठीक है?"

"विल्कुल। आपको नहीं वतलाया उन्होंने? सव-कुछ एकदम फिट-फाट है। राकेश जी ने यह जरूर कहा है कि इस वारे में मैं उन्हींसे वात करूं, आपसे नहीं।"

"उनकी वात ठीक है। मैं सिर्फ इतना जानना चाहती हूं कि एजेंसी चल तो ठीक रही है?"

"सौ-फीसदी। जव आप मेरे लिए इतनी परेशान हैं तो कैसे हो सकता है कि ठीक न चले?" कौशल ने आत्मीय मुस्कराहट के साथ कहा।

खतरे की गंध पाकर माधवी फौरन पीछे हट गयी। "मेरी परेशानी राकेश के लिए है," उसने कहा।

"वनिए मत!"

"क्या मतलव!"

"उनके लिए होना तो लाजिम है पर कुछ मेरे लिए भी है, मैं जानता हूं। आपको खुश करने के लिए मैं जान पर खेल जाऊंगा। एजेंसी एकदम वढ़िया चलेगी। चलेगी क्या, चल रही है। राकेश जी से पूछ देखिएगा। कल सव गिला-शिकवा मिट गया। वढ़िया आदमी हैं, राकेश जी, वहुत वढ़िया!"

"किस तरह?" माधवी ने शंकित होकर पूछा। कहीं और रुपया तो नहीं ऐंठ लिया इसने राकेश से? वढ़िया आदमी ज्यादातर यह उसी को वतलाता है जो इसके जाल में फंसकर सोने के अंडे दे।

"हर तरह।" कौशल खीखी करके हंस दिया, "आपको उनके वढ़िया होने में कोई शक है?"

माधवी मात खा गयी। जवाव नहीं सूझा। वैरे को वुलाकर दो प्याले चाय का आदेश दुहरा दिया।

"जहां तक मेरा सवाल है," कौशल ने भीगे सुर में अलापा, "मेरे पास जो कुछ है, आपको दे चुका; मेरे और आपके वीच कोई हिसाव-किताव नहीं हो

सकता। जो भी मैं हूं, कभी हो सकता हूं, सब आपके नाम लिख चुका हूं। आप…"

"हा, वह बात भी आपसे करनी थी। यह कागज आप वापस ले लीजिए। मैं स्वीकार नहीं कर सकती।" माधवी को वह हलफनामा भूल ही चुका था। अब याद आया तो पर्स में से उसे बाहर निकाल लिया।

"नहीं !" कौशल इस तरह चीखा कि आसपास की मेजों पर बैठे लोग मुड़कर उन दोनों को घूरने लगे। "ऐसा मत कीजिए ! मेरे विश्वास को मत ठुकराइए ! मैं मर जाऊंगा ! गरीब आदमी हूं ! कभी किसीको कुछ नहीं दिया। लेता ही रहा हूं। एक ही चीज मुझे मिली है, लिखने की प्रतिभा। उसे देने का अधिकार मेरा है, केवल मेरा ! आप मेरी प्रतिभा को ठोकर मारेंगी तो मैं बेमौत मारा जाऊंगा। ऐसा मत कीजिए ! नहीं !"

अंतिम 'नहीं' पर फिर उसकी आवाज ने जुबिश खायी। जिन लोगों ने पहले सुनकर अनसुना कर दिया था, वे भी अब उन्हें देखकर मुस्कराने लगे।

"अच्छा-अच्छा, ठीक है, बाद मे बात करेंगे। यहा कुछ मत कहिए," माधवी ने घबराकर कहा। समाज के बीच बेपर्दा होने के डर से कागज वापस पर्स में डाल लिया और मुह नीचे करके चाय के घूंट भरने लगी।

"आप मेरे अकेलेपन से वाकिफ नहीं हैं," कौशल कहता गया पर धीमे सुर मे, "मेरा कोई नहीं है इस दुनिया में।"

"क्या बात कर रहे हैं," माधवी ने हंसकर कहा, "आपकी पत्नी है, बच्चे है, दोस्त न भी हों तो परिवार है। भरा-पूरा।"

"अब आपसे क्या कहूं। मैं अपनी बात कभी कहता नहीं। पत्नी से मेरे संबंध बिल्कुल खत्म हो चुके हैं। जब से आपको जाना है, उसके पास जाना बंद है। बहुत नाराज है वह मुझसे और…"

"चुप रहिए !" माधवी ने सिहरकर कहा, "यह मुझे बतलाने की जरूरत नहीं है।"

"ठीक है। मैं तो सिर्फ यह कह रहा था कि मेरी पत्नी मायके जाने को कह रही है। मैं उसे रोकूंगा नहीं। अधिकार नहीं है रोकने का। पर आप इस सबके लिए अपराधी महसूस न करें। मैंने जानबूझकर यह रास्ता चुना है। सच का। जब मेरे मन मे उसके लिए प्यार नहीं रहा…"

"मैं कह रही हू, चुप रहिए !" थर-थर कांपती माधवी उठकर खड़ी हो गयी। "आप मेरा अपमान कर रहे हैं। मैं यह सुनने के लिए तैयार नहीं हूं। मैं जा रही हूं !" पर्स उठाकर वह दरवाजे की तरफ मुड़ गयी।

"मणि आ गया !" कौशल ने चिल्लाकर कहा।

"कहां ?" माधवी ठिठक गयी।

"अभी घुसा है अंदर।"

माधवी वापस कुर्सी पर बैठ गयी। दो मिनट गुजर गये।

"कहां हैं?" माधवी ने पूछा।

"नहीं, गलती हो गयी पहचानने में। यह तो कोई और है।"

"आपको उन्हें साथ लेकर आना चाहिए था!" माधवी ने खीजकर कहा।

"किसमें?" उसने गरीब आदमी के अभिमान के साथ कहा, "मेरे पास कौनसी गाड़ी है!"

"पूरा एक घंटा बरबाद हो गया। चलिए, फोन करके पूछते हैं।"

"उसका फोन नम्बर तो मेरे पास है नहीं।"

"फिर बात कैसे हुई थी, आपके यहां भी फोन नहीं है।"

"उसने एक मित्र के हाथ संदेश भिजवाया था।"

"तो आप उनसे संपर्क कैसे करेंगे?"

"उसीके पास जाऊंगा, वह फोन मिला देगा।"

"इससे तो अच्छा है, उसे फोन करके मणि कौल का नंबर ले लीजिए।"

"वह देगा नहीं।"

"क्यों?"

"मणि कौल पसंद नहीं करता। अपने मित्र के यहां ठहरा है, उसे पसंद नहीं वहां कोई फोन करे।"

"फिर क्या करें," माधवी ने परेशान होकर कहा, "मुझे तो अब जाना है। पता नहीं वे आयेंगे भी या नहीं।"

"आर्टिस्ट आदमी है, मनमौजी। कहीं अटक गया होगा।"

"बेकार इतनी परेशानी उठायी," माधवी ने लंबी सांस भरकर कहा, "राकेश को भी परेशान किया। खैर चलती हूं।"

"बैठिए न थोड़ी देर।"

"नहीं, चार बज गये। बहुत देर हो गयी।"

"मणि आता तब भी तो बैठतीं।"

माधवी ने इशारे से बैरे को बुलाया और पैसे चुकाने लगी।

"कमाल है," कौशल ने कहा, "मणि से मिलने के लिए आपके पास वक्त है, मुझसे मिलने को नहीं!"

"जाहिर है," माधवी ने ठंडे स्वर में कहा और बाहर निकल गयी।

घर पहुंचकर पता चला मां की तबीयत बेहतर है तो लगा, कुछ देर और बैठ ही लेती त्रिवेणी में। हो सकता है, मणि कौल आये हों बाद में। मणि कौल आये

नहीं, सुनकर राकेश को काफी अचरज हुआ, फोन पर संपर्क नहीं हो सकता, जानकर और चकराया पर माधवी के कहने पर कि 'आर्टिस्ट आदमी है, मन मौजी,' समझौता करता हुआ बोला, "चलो, अगली बार पहले से खत डालकर मिलने का वक्त तय कर रखना। मैं अब बच्चों को लेकर जा रहा हूं। उन्हें घर छोड़कर फैक्टरी निकल जाऊंगा। तुम तो बाद में ही आओगी।"

सुनकर माधवी का मन हल्का हो गया। राकेश से बात होती है तो लगता है, सब-कुछ अपने हाथ में है। हर बात का ठोस कारण है और तर्कसंगत परिणति। और कौशल से बात होते ही सब तर्क गड्डमड्ड हो जाते हैं। हर चीज अधर में जा लटकती है, गुरुत्वाकर्षणविहीन। जो घटता है, अकारण। जो नहीं घटता, घटित से अधिक वास्तविक बनकर तलवार की तरह सिर पर लटक जाता है। लटका रहता है तब तक, जब तक कहानी पूरी होकर कागज पर न उतर जाये। ऐसा न हो तो कभी कुछ न बदले। धरती का आकर्षण पल-भर के लिए भी किसीको न छोड़े। फिर कोई क्यों कला में नये, बेहतर जीवन की तलाश करेगा? जब आधा सच, सच नहीं लगता तभी तो आदमी पूरे सच की तलाश करता है।

शाम को छह बजे कौशल का फोन आया। वहीं मां के घर।

"फिर आपने यहां फोन किया?" फौरन उसने कहा। आजकल धरती को छोड़कर ऊपर उड़ने की उसकी कोशिशें कम होती जा रही हैं।

"मणि से बात हो गयी। कल ग्यारह बजे मिलने को कह रहा था, मैंने कह दिया आपका आना संभव नहीं है।"

"क्यों? यह क्यों कह दिया!" बेसाख्ता उसके मुंह से निकला।

"आप ही ने तो कहा था, आपके पास वक्त नहीं है।"

"उनसे मिलना था तो आ जाती थोड़ी देर के लिए। मुझसे बिना पूछे मना क्यों कर दिया?"

"पूछता कैसे? आपने वहां फोन करने को मना किया था।"

"तो अब क्यों किया?" माधवी ने फुफकारकर कहा।

"आप ग्यारह बजे आ जाइए। मैं मणि से संपर्क करने की कोशिश करता हूं।"

"अब रहने दीजिए। बाद में खत डालकर अगली बार मिलने के लिए वक्त ले लेंगे।"

"आप आइए तो। अव्वल तो वह आयेगा और न आया तो स्क्रीनप्ले पर बात कर लेंगे।"

"आज जब मैंने कहा था तब क्यों नहीं की ?"

"हबड़-दबड़ में मूड नहीं बना।"

"हबड़-दबड़ तो कल भी रहेगी। मेरा आना संभव नहीं है।"

"समझा। मणि से मिलने आना संभव है, मुझसे नहीं। इसलिए कि मणि कौल बड़ा आदमी है; नामवर है और आपके हिसाब से मैं मामूली आदमी हूं, आपका कर्जदार..."

"अरे बाबा," माधवी संतुलन खोकर चिल्ला पड़ी, "मणि कौल दो दिन को आये हैं, आपकी तो हर रोज की चढ़ाई है।"

"मैं तो आप ही का काम कर रहा हूं। मेरा क्या है; मना कर देता हूं उसे।"

'जरूर कर दीजिए। इस चिख-चिख से तो अच्छा है, फिल्म न बने," खीजकर माधवी चिल्लायी कि भीतर से मां की कमजोर और परेशान आवाज आयी, "कौन है ?"

"बंद कीजिए फोन !" कहकर उसने चोंगा नीचे पटक दिया।

ममता मां के कमरे से निकलकर बाहर आयी। "किससे बात कर रही हो ? मां परेशान..."

"है एक ईडियट। अब आये तो तू उठाना और कह देना, मैं चली गयी।"

उसकी बात खत्म भी न हुई थी कि फोन फिर बजा। ममता ने उसकी कही बात दुहरा दी। फोन कट गया। मां ने परेशान आवाज में एक बार फिर पूछा, "कौन है ? बार-बार फोन क्यों करता है ?"

"है एक जोंक पर आप फिक्र मत कीजिए, झटक देंगे उसे," माधवी ने हंसकर टाल दिया पर पूरा शरीर घृणा से कांप गया।

·

दो घंटे बाद घर पहुंची तो दरवाजा खोलते ही आलोक ने कहा, "दो घंटे से हर पांच मिनट पर कौशल कुमार महाराज का फोन आ रहा है तुम्हारे लिए। मना क्यों नहीं करतीं उस लल्लू को..."

उसे जवाब देती, इससे पहले ही फोन बज उठा। झपटकर उसने उठाया और गाली देने की तरह 'हलो' कहा। कौशल ने फौरन अपनी रेलगाड़ी चालू कर दी।

"अरे कहां रह गयी थीं ? मारे चिंता के मैं तो बेहाल हो गया।"

"किस खुशी में ? मेरे लिए चिंता करने का अधिकार आपको किसने दिया ? मैं कहां थी, यह आपको बतलाने की जरूरत कैसे हो गयी ?" एक वाक्य में मन की सारी नफरत न उंडेल पाने के कारण माधवी कहती चली गयी। पर कौशल

की गँडे के खाल पर खरोंच तक नहीं आयी।

"आप हमारी चिंता नहीं करतीं तो इसका मतलब यह तो नहीं कि हम भी न करें। कहां थीं ?" उसने कहा, खासे आशिकाना अंदाज में।

"आपसे मतलब ?" माधवी ने थूककर कहा।

"ठीक-ठाक तो हैं न ?"

"जी नहीं ! मां की तबीयत फिर खराब हो गयी, आपके बार-बार फोन···"

"मणि से बात हो गयी। कल ग्यारह बजे त्रिवेणी आ जाइएगा।"

माधवी चुप रही।

"आयेंगी न ?" आवाज फिर लहक उठी।

"देखूंगी।"

"नहीं आयीं तो सब गुड़ गोबर हो जायेगा। मणि से अनुबंध की बात करनी है।"

माधवी के मुंह में ढेरों खट्टा थूक जमा हो गया था, बोलना मुश्किल हो रहा था। "मैं फोन रख रही हूं," उसने कहा।

"क्यों, बात करने की सुविधा नहीं है क्या ?" कौशल ने कहा तो माधवी को लगा, जवाब देने की कोशिश की तो उल्टी हो जायेगी। बिना कुछ कहे उसने फोन काट दिया और पस्त-हिम्मत वहीं बैठी रही। क्षण-भर बाद फोन फिर चिंघाड़ा तो माधवी भागकर गुस्लखाने में जा पहुंची। फोन बजता रहा।

राकेश ने आकर चोंगा उठाया। कौशल का नहीं था। पर माधवी अब सुकून महसूस करने तक की हालत में नहीं थी।

घुमेर खाते सिर को हाथों से थामे, वह मुंह नीचे लटकाकर वाश-बेसिन में उल्टी करती रही।

"स्साला ! मां का···!" भद्दी गाली के साथ कौशल ने जेब में पड़ा आखिरी रुपया उछालकर जमीन पर पटका और चप्पल के नीचे दबा लिया।

बस, यह बचा है नामुराद, वह बुदबुदाया, पूरे-का-पूरा दस का नोट मैडम को फोन मिलाने में उठ गया। काहे का कर्जदार हूं मैं उनका ? उनके बीस हजार जैसे मेरे बीस। इतना रुपया तो हर हफ्ते फोन मिलाने में निकल जाता है मेरा। अठन्नी-अठन्नी करके जेब खाली होती है और···हाय ! नीचे झुककर उसने चप्पल के नीचे से रुपया उठाया और होंठों तक ले जाकर चूम लिया।

"हाय, मेरे आखिरी सहारे, बतला तेरा क्या करूं ?" आवाज में कशिश भरकर उसने कहा, "मिला लूं फोन एक बार और ?"

तब घर जाने का बस का भाड़ा नहीं बचेगा। दो बसें बदलकर घर पहुंचना होता है। अस्सी पैसे लगते हैं पूरे। एक फोन करने पर बचेगी केवल एक अठन्नी, यानी पचास पैसे।

ठीक है, दिल्ली के ऐतिहासिक लाल किले पर उतरकर दस पैसे के चने खरीदेंगे और ठूंगते-ठूंगते घर तक टहल लेंगे। चारेक मील का रास्ता है, घंटे-भर में तय हो जायेगा। डाक्टरों का कहना है, पैदल घूमना सेहत के लिए मुफ़ीद होता है यानी गरीब आदमी के सेहत के लिए। पैसे वालों को फल-फ्रूट का सेवन अधिक लाभ पहुंचाता है। बेचारे बड़े लोग! मुसीबत है जीना। बैठे-बैठे थक जाते हैं; भूख लगती नहीं, नींद गायब हो जातीं है; बदन पर चर्वी चढ़ती चली जाती है। दिमागी सुकून मिल नहीं पाता। डाक्टर कह-कहकर थक जाता है, दिमाग को ठंडा रखिए, हल्की-फुलकी गपशप कीजिए, ताश-गॉल्फ जैसे खेल खेलिए, चाहें तो किसी खुशनुमा बाग में टहल आइए पर बेचारे, गाड़ी से कुर्सी तक और कुर्सी से गाड़ी तक की कवायद से फुर्सत मिले तब तो! नींद की गोली खाकर किसी तरह रात गुजारते हैं और सुबह फिर शुरू। गरीब आदमी की मौज है; जब चाहे बस से उतरकर पैदल चलना शुरू कर दे, कोई टोकने वाला नहीं है। थककर नींद बढ़िया आती है, खाना फौरन हजम हो जाता है। भरपेट न खा पाओ तो और अच्छा है सेहत के लिए; दिल का दौरा नहीं पड़ता!

जेब में पैसा हो तो आदमी को चाय, कॉफी, शराब, जाने क्या-क्या खुराफात सूझती रहती है। कौशल को ही लो। सुबह-सुबह चाय की कुछ ऐसी तलब उठी कि बीवी के 'पत्ती नहीं है! शक्कर नहीं है!' के ऐलान बर्दाश्त न कर पाया और जेब से सारे पैसे निकालकर उसके हाथ पर दे मारे। इकलौता दस का नोट बचाकर रखा, बस। कितनी बड़ी गलती हो गयी। कम-से-कम एक बोतल दारू के लायक पैसे तो बचाकर रखता। कल तीन बजे जाकर तो नसीब हुए थे, काफी जद्दोजहद के बाद। शब्दों का जाल बिछाना मछली पकड़ने के लिए जाल फेंकने से कम मेहनत नहीं मांगता। याद करके वह हंस दिया। वाह, जवाब नहीं है तुम्हारा, कौशल कुमार! माधवी का पति क्या चीज है तुम्हारे सामने, हद-से-हद एक बड़ी मछली! वह हंसा पर बीच कहकहे रुक गया। हंसने लायक गरमाई नहीं है जेब में। बीवी की रोनी सूरत पर नाहक तरस खा गया। उसका तो धर्म है रोना। हम जैसे लोगों के पास एक अदद बीवी ही तो होती है अपनी मर्दानगी साबित करने के लिए। रोयेगी नहीं तो हमें मर्द कौन मानेगा। उसकी बीवी बेचारी है भली। ज्यादती को मर्द के प्यार का इजहार समझकर स्वीकार करती है और खूब सुर में चीखती-चिल्लाती है। मजा आ जाता है। समझदार भी है। कितनी खुश हुई थी भलीमानुस यह जानकर कि माधवी जैसी अमीर औरत उन-पर मेहरबान है। पर कुछ दिन पैसा क्या मिल गया, आदतें बिगड़ गयीं। आजकल

किल्लत होने पर सबसे पहले कौशल की चाय पर मुहर लगाने लगती है। और तो और, मायके जाने की धमकी भी दे देती है। जैसे वहां टकसाल खुली है! अगली गाड़ी से बिलाटिकट वापस रवाना न कर दिया तो उसका नाम कौशल नहीं। साली! जानती भी है पैसा निकलवाने के लिए कितनी भाग-दौड़ करनी पड़ती है, कितने नमकीन झूठ बोलने पड़ते है! खामख्वाह उसपर तरस खा गया। पी आता चाय बाजार में जाकर। बच्चों के लिए प्याज-रोटी का जुगाड़ तो हिन्दुस्तानी माएं कर ही लेती हैं; कोई मजाक है, भारतीय मां जैसी मां संसार-भर में नहीं मिल सकती। शरच्चन्द्र कहते हैं···कहते होंगे! यहां हलक सूख रहा है। कल माधवी के घर से लौटते वक्त जो एक बोतल चढ़ायी थी, उसका नशा···कब का उतर गया।

तो अब? चलकर करे फोन और उसके बाद चार मील की सेहतमंद कवायद? और जो माधवी अब तक घर न पहुंची हो तो? कैसे हो सकता है? डेढ घंटा हो गया तिलक रोड से चले और अब तक घर नहीं पहुंची? कहां रह गयी बीच में? अरे, जरूर पहुंच चुकी होगी, साले झूठ बोल रहे होंगे! पर कौन? तिलक रोड वाले या बच्चे? चली नहीं कि पहुंची नहीं? कितना बुनियादी सवाल है! कहां करे फोन? घर पर या तिलक रोड? तिलक रोड करेगा तो···

माधवी की मा को दिल का दौरा पडा है, वे डिस्टर्ब होंगी। वाह, साहब, वाह! मेरी मां को दिल का दौरा पडा था तो बिल्कुल बिना डिस्टर्ब हुए आराम-तसल्ली से यमराज के पास पहुंच गयी थी। पहली बार पडा तभी वैद्यजी ने कह दिया था, रामजी का बुलावा आ जाये तो कौन टाल सकता है। यह तो दरवाजे पर पहली खटखट है। दो बार और द्वार खडखडायेगा और जीव भवसागर तर जायेगा। हमारे शहर अलीगढ के वैद्य विलासचंद बेचारे बडे धर्मात्मा थे। भगवान पर अगाध विश्वास और श्रद्धा रखते थे। मुफ्त की दवा-दारू देकर उसके काम में दखल नहीं देते थे। अच्छी तरह जानते थे कि दवा दे दो तो दाम वसूल करने के लिए कुछ लोगों से महीनों चिख-चिख करनी पड़ती है। इतने दिन ऐसे मरीज जियें कि नहीं, क्या भरोसा है।

धन्य हो वैद्यजी, कौशल की मां डडे से पीटकर कपड़ों का मैल निकालती हुई भगवान को प्यारी हुई। क्या साफ-शफ्फाफ मौत थी। बिस्तर पर एक दिन नहीं लेटी, डिस्टर्ब बेचारी कैसे होतीं? दरअसल यह अंग्रेजी का 'डिस्टर्ब' शब्द बना ही उन लोगों के लिए है जिनके कपड़े धुलते समय भी इतने साफ होते हैं कि डंडे से पीटने की जरूरत नहीं पडती।

थू! बलगम का थक्का जमीन पर थूककर वह फिक्क से हंस पड़ा। चलो, हमें क्या, टॉस किये लेते हैं। है न सरकारी सिक्का अपने पास। देखें अशोक चक्र

ऊपर आता है या गेहूं की वाली। चक्र आया तो तिलक रोड फोन करेंगे, गेहूं की वाली आयी तो माधवी के घर।

उसने जेव से रुपया निकालकर उछाला और चप्पल के नीचे दवा लिया। धीरे से चप्पल अलग सरकाई तो देखा, चक्र नहीं है। चलो, जाने दो। आज और नहीं करेगा तिलक रोड फोन। हां, कल ग्यारह वजे मिलने में उसने आनाकानी की तो···देख लेगा! कल तक के लिए हथियार का इस्तेमाल स्थगित; अव चलो घर का नंवर मिलाओ, अभी नहीं, आधे घंटे वाद। तव तक जरूर घर पहुंच जायेगी। वतला चुकी है न सैकड़ों वार, आठ वजे वच्चे खाना खाते हैं और वह उनके खाने के वक्त घर जरूर पहुंच जाती है। और यह भी कि आठ-साढ़े आठ के वीच फोन न किया करे, खाने के वीच वे लोग डिस्टर्व होते हैं। फिर वही कमवख्त डिस्टर्व! होने दो कमवख्तों को डिस्टर्व। वह अपनी सुविधानुसार फोन करेगा, आधे घंटे वाद, आठ और साढ़े आठ के वीच।

जहेकिस्मत! फोन माधवी ने ही उठाया।

"अरे, कहां रह गयी थीं? मारे चिंता के मैं तो वेहाल हो गया।" उसने आवाज में शहद घोलकर कहा।

"किस खुशी में···" उधर से जिस सख्त, नफरत से सनी आवाज में जवाव आया, उसने मजवूर कर दिया कि वह आगे न सुने। फोन का चोंगा कान से हटाकर नीचे लटका दिया। वड़ा कारसाज तरीका है वचाव का। जो माधवी कहे, सुनो नहीं, वस इतना मालूम रहे कि कुछ कहा जा रहा है। कल्पना की पतंग की डोरी कायदे से हिलाते चलो तो अल्फाज खुद-व-खुद जेहन में उतरने लगेंगे। फिर उधर से आ रही आवाज की हल्की-हल्की थापें जैसे ही गायव होने लगें, अपनी वात कह डालो।

मामूली कल्पना-शक्ति का आदमी नहीं है कौशल। सपने और सच्चाई को यूं मिलाकर रखता है कि हातिमताई भी दूध-का-दूध और पानी-का-पानी नहीं कर सकता। पूरी वात जिस दिन लोगों को पता चलेगी···वह धीमे से मुस्कराया जैसे कल का मीठा सपना आज फिर देख रहा हो और उधर से आती आवाज के वंद होते ही वोला, "आप हमारी चिंता नहीं करतीं तो इसका मतलव यह तो नहीं कि हम भी न करें। कहां थीं?"

"···"

"ठीक-ठाक तो हैं न?"

"···"

"मणि से वात हो गयी। कल ग्यारह वजे त्रिवेणी आ जाइएगा।"

"···"

"आयेंगी न?" और अव कौशल ने चोंगा फिर कान पर रख लिया।

"देखूंगी।"

"नहीं आयीं तो सब गुड़-गोबर हो जायेगा। मणि से अनुबंध की बात करनी है।" उच्च श्रेणी के अभिनेता की तरह कौशल ने अपनी आवाज में मनुहार और चेतावनी का अद्भुत तालमेल बिठला लिया।

"मैं फोन रख रही हूं," माधवी ने कहा।

एक बार उसने फोन रख दिया तो दुबारा मिलाने के लिए कौशल के पास अठन्नी नहीं है। एक जुमला-भर बोलने की मोहलत है। तो…

आवाज में ज्यादा-से-ज्यादा कशिश पैदा करके उसने कहा, "क्यों, बात करने की सुविधा नहीं है क्या?"

फोन कट गया।

'बेचारी', कौशल बुदबुदाया, 'बात करने तक की सुविधा नहीं है।'

परियों की कहानी के राजकुमार की तरह उसने एक लंबी सांस भरी। आह, बेचारी, किले में कैद ओस की बूंद-सी नाजुक राजकुमारी! मैं तुम्हें आजाद करूंगा, जरूर करूंगा, अपनी जान पर खेलकर। देखते हैं कौन ज्यादा ताकतवर है, दैत्य का श्राप या मेरी जिजीविषा। मैं, कौशल कुमार…आह! एक दर्दीली मुस्कराहट चेहरे पर ओढ़े वह बस-स्टॉप की तरफ चल दिया; यूं जैसे उड़ने वाले घोड़े पर सवार बस कील घुमाने-भर का इंतजार कर रहा हो।

सत्रह

मैं हर्गिज-हर्गिज ग्यारह बजे त्रिवेणी नहीं जाऊंगी, सुबह आंख खुलते ही माधवी ने प्रण किया। मणि कौल आकर लौट गये तो…लौट जायें! मणि कौल! अनायास एक स्वस्थ्य उत्तेजना की लहर शरीर में दौड़ गयी। मणि कौल उसकी कहानी पर फिल्म बना रहे हैं, वह चाहे तो उनके समक्ष खड़े होकर उनसे बातचीत कर सकती है, एक प्रशंसक की तरह नहीं, पार्टनर की तरह। कैसी बेबसी है। वह मिलना चाहती है, मिल सकती है, फिर भी न मिल सकने या न टक करना होगा। कौशल बीच में न होता "हर चीज के बीच में यह कैसे टपक पड़ता है…ऐसे आदमी जल्दी मरते भी तो नहीं!

जो हो, वह त्रिवेणी नहीं जायेगी। अनुबंध मणि कौल डाक से भेज देंगे। *सीनारियो के बारे में बात करनी होगी तो…तो क्या होगा? मिल लेने से* कितनी बातें साफ हो जाती हैं, बातचीत के लिए रास्ता खुल जाता है, एक-दूसरे

से संपर्क करने का सूत्र प्राप्त हो सकता है, अभी तो देखो न, फोन नंबर तक नहीं है। तो ··?

नहीं, वह नहीं जायेगी। कौशल के व्यवहार के वाद···अपमान सहकर वह फिल्म नहीं वनवायेगी। अपमान? मानो तो अपमान है, न मानो तो···! जी कड़ा करके एक वार आदमी सह ले तो···वह सह भी ले पर राकेश के सामने किस मुंह से कहेगी कि जो हुआ उसके वावजूद वह आज त्रिवेणी जायेगी क्योंकि वह फिल्म बनवाने का लालच नहीं छोड़ सकती। आखिर आदमी अपने को कितना छोटा करे, कोई हद होती है। होती है? हां-हां, होती है! वह नहीं जायेगी; हर्गिज-हर्गिज नहीं जायेगी!

एक वार आदमी दुविधा की गिरफ्त से वाहर निकलकर फैसला कर ले तो सव-कुछ आसान हो जाता है। माधवी ने राकेश के साथ वैठकर नाश्ता किया और उससे कहा कि दफ्तर जाते समय उसे तिलक रोड छोड़ता जाये।

"तवीयत ठीक है तुम्हारी?" राकेश ने पूछा।

"विल्कुल!" उसने चहककर कहा और एक टोस्ट खत्म करके दूसरे पर मक्खन लगाने लगी।

"रात···?"

"ऐसे ही जी मिचला गया था, अव विल्कुल ठीक हूं।"

"लगता तो यही है वरना तुम और दो टोस्ट!" राकेश हंस पड़ा। माधवी भी।

हंसी-खुशी निवटकर वे तिलक रोड पहुंच गये। मां की तवीयत भी आज माधवी को अपनी मनःस्थिति के उपयुक्त पहले से काफी वेहतर मिली। माधवी को अंदर आते देख वे मुस्करा दीं। वहुत दिनों वाद उनके चेहरे पर स्वस्थ स्मिति देखने को मिली। माधवी का मन खुश हो गया।

मरीजा के खाने-पीने, स्पंज-सफाई आदि का काम खुशी-खुशी निवटाकर वह उनके पलंग के वरावर वाली आरामकुर्सी पर; वाकायदा आराम करने के इरादे से, वैठ गयी। पर उससे पहले रिकॉर्ड-प्लेयर पर रविशंकर का सितार लगाना न भूली। राग-विहाग की मधुर स्वर-लहरी ने मां को दुलराया तो वे एक वार फिर मुस्करायीं, चेहरे पर सुकून उभरा और उन्होंने आंखें वंद कर लीं। कुछ पल माधवी उनकी शांत मुखमुद्रा देखकर विश्रांति अनुभव करती रही, फिर अपनी आंखों को भी झपक जाने दिया। रात अच्छी तरह सो नहीं पायी थी, अव संगीत की थपकियों पर खुद को वह जाने दिया।

वीस मिनट वाद रिकॉर्ड खत्म हुआ तो वह चौंककर उठी और दुवारा वही रिकॉर्ड चला दिया। नींद टूटकर भी नहीं टूटी। जैसे ही कुर्सी से टेक लगायी, दुवारा सो गयी।

नीद में उसे लगा, बाहर दरवाजे की घंटी बार-बार बज रही है। काफी खीज महसूस हुई पर जैसे ही समझ में आ गया कि घंटी उनकी नही, ऊपर वालों की बज रही है, वह शात हो गयी। एक बार आंखें खोलकर मां की तरफ भी देख लिया, वे परेशान नही हैं, आराम से सो रही हैं। अवचेतन मन कैसे जान लेता है, समस्या हमारी नही, किसी और की है, उसके लिए नीद खराब करने की जरूरत नही है; सोचकर माधवी हल्के से मुस्करा दी, सच, आदमी के स्वार्थ की सीमा नहीं है! पता नही, ऊपर वाले दरवाजा खोल क्यों नही रहे? होगा। हमें क्या? लगता है, रिकॉर्ड खत्म होने को है, हो जायेगा तो दूसरा लगाने के लिए उठूगी तभी बाहर जाकर देख आऊंगी, ऊपर वाले नही होंगे तो घंटी बजाने वाले से कह दूगी, बहुत हुआ भाई, अब जाओ।

"जो भी हैं, यहां से चले जाइए!" माधवी आवाज को ऊंचा उठने से भरसक रोक रही थी; धीमे सुर में ही तीखा जहर घुला हुआ था।

"जाइए जल्दी!" उसने कहा और दरवाजा वंद करने लगी।

"समझ क्या रखा है आपने!" कौशल जोर से चीखा "कर्ज दिया है इसका यह मतलव नहीं कि खरीद लिया है मुझे!"

"चिल्लाइए मत!" माधवी ने धीमी पर सख्त आवाज में डपटकर कहा।

"एक-एक पैसा लौटा दूंगा आपका!" कौशल और जोर से चीखा, "आप क्या समझती हैं, मैं कुत्ता हूं कि रोटी के दो टुकड़े डाल दिये और जो चाहे करवा लिया!"

"प्लीज, धीरे वोलिए, मां की तवीयत खराव हो जायेगी," घवराकर माधवी ने कहा।

"मैं अभी जाकर वेच आता हूं एजेंसी को!" कौशल पूरा दम लगाकर चीखा।

माधवी सिर से पांव तक पसीने से भीग गयी। इस आदमी के सामने मां की वीमारी का नाम क्यों ले लिया? अव यह उसकी कमजोरी का भरपूर फायदा उठाकर जोर-जोर से चीखता चला जायेगा। क्या करना चाहिए जिससे यह चुप हो? नौकर को वुलाकर धक्के मरवाकर वाहर कर सकती है पर तव तक यह इसी तरह चिल्लाता रहा तो?

उसने स्वाभिमान को थूक की तरह भीतर घोट लिया और मधुर स्वर में कहा, "प्लीज, इस वक्त चले जाइए। शाम को घर पर फोन कीजिएगा, यहां वात करना ठीक नहीं है।"

"क्यों ठीक नहीं है?" कौशल और ऊंची आवाज में चीखा, "मैं डंके की चोट पर कह रहा हूं, एजेंसी वेच दूंगा। दस-पांच हजार रुपया जो मिलेगा, लाकर आपके मुंह पर दे मारूंगा। वाकी की पाई-पाई भी चुका दूंगा। रात-दिन काम करूंगा, वीवी-वच्चों को जहर दे दूंगा पर आपका उधार रखकर नहीं मरूंगा!"

"माधवी," भीतर कमरे से मां की घवराई आवाज आयी, "माधवी।"

"प्लीज, चले जाइए यहां से," माधवी ने रोकर कहा और अंदर जाने को मुड़ गयी।

"हां-हां, जा रहा हूं। अभी पार लगाता हूं एजेंसी को! आपके टुकड़ों पर पलने वाला पालतू कुत्ता नहीं हूं। दिखला दूंगा मैं भी, वड़ा आदमी कौन है!"

वाहर खड़ा कौशल जोर-जोर से चीखता रहा।

भीतर मां को दुवारा दिल का दौरा पड़ गया।

थकी मांदी, बेहाल माधवी रात देर से घर पहुंची तो कौशल का फोन आया। आवाज सुनते ही उसने चोगा नीचे पटक दिया।

घंटी दुबारा बजी, बजती रही। माधवी बेशर्म बनी अपने कमरे में बैठी रही।

यह आदमी नहीं तो कुत्ता भी नहीं है। कुत्ते की वफादारी इसमें नहीं है। यह तो भेड़िया है, जो घात लगाकर हर आते-जाते अकेले कमजोर इंसान पर पूरी तैयारी के साथ हमला करता है और फिर शिकार को तुरंत नहीं, धीरे-धीरे कई दिनों में खाता है, उसने सोचा।

घंटी बजनी बंद हो गयी। शायद राकेश ने फोन उठा लिया।

आज जो कुछ हुआ, राकेश को बतलाना होगा। अब और बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। इस आदमी का पेट नहीं भरेगा। यह वह जोंक नहीं, जो भरपेट खून चूस लेने पर, फूला पेट लिये नीचे गिर पड़े। जोंक की तरह यह सहज प्रवृत्ति से शोषण नहीं करता। यह आदमी का बच्चा है; लिहाजा एक दिमाग भी है इसके पास। सोचने-विचारने की शक्ति, तर्कबुद्धि, स्वार्थपरक विवेक, कुटिल जीवन-दर्शन; बहुत सारे मददगार हैं इसके। खून चूसकर यह बाहर उगल देगा और दुबारा आ चिपकेगा बदन से। जैसे-जैसे खून की खूराक पेट में आयेगी, इसका लालच बढ़ता जायेगा, क्षुधा शांत होने के बजाय और लपलपायेगी; तमाम उम्र बीत जायेगी, इससे पीछा नहीं छूटेगा, जब तक मौत का फरिश्ता न आकर···

माँ बीमार न होती तो माधवी इसकी बकझक से उदासीन हो जाती। पत्थर की मूर्ति पर खरोंच डालते चले जाना इतना आसान नहीं होता। खून की बूंद देह से निकले नहीं तो जोंक को चिपटे रहने में तकलीफ होने लगती है। पर मां के रहते कुछ नहीं हो सकता। उन्हें हर हालत में इसके हमले से बचाकर रखना होगा। पुलिस से आरक्षण नहीं मांगा जा सकता? एक आदमी को क्या हक है कि किसी के घर में इस तरह जबरदस्ती घुस आये! राकेश से पूछना चाहिए।

माधवी उठकर खड़ी हुई कि जैसे भूचाल आ गया! तेजी से राकेश कमरे में आया और बम के विस्फोट की तरह उसका सवाल गूंजा, "तुमने उसे एजेंसी बेचने को कहा है?"

"क्या हुआ?" घबराकर उसने कहा।

"कहा है तुमने?" तमतमाकर राकेश ने सवाल दुहराया। इतने गुस्से में माधवी ने पहले उसे कभी नहीं देखा।

"किससे?" हतप्रभ होकर वह बोली।

"किससे क्या? उसी कमबख्त कौशल कुमार से। तुमने उससे कहा है कि पांच हजार में एजेंसी बेच डाले?"

"नहीं तो। किसने कहा?"

"उसीने। फोन आया था अभी। तुम्हें पूछ रहा था। मैंने पूछा, क्या काम है

तो बोला, एजेंसी का सौदा हो गया है पांच हजार में।"

"पूरी कहानी सुनोगे ?" क्लांत भाव से माधवी ने कहा और उस दिन की पूरी कहानी कह डाली, फिर बोली, "रुपया खोकर भी पीछा छूटे तो छुड़ा लेना चाहिए।"

"दिमाग खराब तो नहीं हो गया ?" राकेश ने कहा, "जानती भी हो बीस हजार का टाइप है दूकान में। और सामान भी है। कोई मजाक है, पच्चीस हजार की चीज पांच हजार में बेच डालेगा ! अभी दुबारा फोन आयेगा उसका। उससे कहो, एजेंसी बेचने का अधिकार उसे नहीं है। मैं कह चुका हूं। पर वह शायद तुम्हारे हुक्म का इंतजार कर रहा होगा !"

"मैं कहूं उससे ? उसकी वजह से मां को दिल का दौरा पड़ गया और तुम मुझसे कह रहे हो···"

"तुम भी तो संतुलन खोकर बात करती हो। समझाकर कहतीं तो चुप करा सकती थीं उसे।"

माधवी को जैसे लकवा मार गया। क्या कह रहा है राकेश ?

"मैं क्या उसके पैर छूती ?" उसने कहा।

"जरूरत पड़ने पर गधे को बाप बनाना पड़ता है," राकेश ने कहा, "सब्र से काम लेना तो तुम जानतीं ही नहीं।"

"तुम क्या चाहते हो, एक बदमाश आदमी मुझे परेशान करे और मैं···"

"अब वह बदमाश हो गया। कल तक दोस्त और जीनियस था !" राकेश ने विद्रूप के साथ कहा।

"हां। मुझे नहीं मालूम था वह इतना लीचड़ आदमी है। उसे रुपया दिया क्यों ?"

"मैंने दिया है ?"

"तो किसने दिया है ?"

"ठीक है, दिया है। तुम्हारे कहने से। अब जो मैं कहता हूं, तुम वह करो। उससे कहो एजेंसी उसके बाप की नहीं है कि आधे-पौने दाम पर बेच देगा। ठीक ग्राहक की तलाश करे, तब बेचे।"

"और जो वह दुबारा तिलक रोड आ धमका ?" माधवी ने त्रस्त स्वर में कहा।

"अरे, समझाकर मना करो उसे।"

"हम पुलिस में इत्तिला नहीं कर सकते ?"

"बच्चों जैसी बातें मत करो। पुलिस इसमें क्या करेगी ? लिखा-पढ़ी करके तो रुपया दिया नहीं है।"

"मैं रुपये की बात नहीं कर रही। पर जिस तरह वह घर में घुस आया और

मेरा नाम लेकर पुकारा ! मा को दुबारा···" वह सुबक उठी ।

"अपने को संभालो," राकेश ने कठोर स्वर मे कहा, "जाकर हाथ-मुंह धो लो । स्वस्थ मन से बात करोगी तो स्थिति को संभाल सकती हो । इतनी कमजोर नहीं हो ।"

हूं । कमजोर हू । माधवी ने चीखकर कहना चाहा । मुझे तुम सभाल लो । जाने दो रुपया । सख्ती से उससे कहो मुझसे सपर्क न करे । मुझे इस दलदल से बाहर निकाल लो, राकेश । तुम मेरे पति हो, तुम्हारा कर्तव्य है कि मेरी रक्षा करो । मा को बचाये रखने के लिए यदि मुझे उससे मिलना पड़ा, बात करनी पड़ी तो मेरा व्यक्तित्व टूट जायेगा, हस्ती मिट जायेगी । मौत से भी भयानक है अपने व्यक्तित्व को यू मिटने देना । ऐसा मत होने दो, राकेश ।

उसने राकेश का चेहरा पढा । माथे पर उभरी शिकनों और कसे होठों को नजरअदाज करके कही हमदर्दी का चिह्न खोजने की कोशिश की । बिजली के झटके की तरह उसने महसूस किया कि राकेश के शरीर पर जो चेहरा है, वह राकेश का नही, नितात अपरिचित आदमी का है । कब राकेश का चेहरा गायब हो गया और यह नया चेहरा उसकी जगह आ लगा, माधवी को पता क्यों नहीं चला ? कहा गया उसका वह शात-सौम्य मुख ? कब माधवी इतनी गहरी नीद सो गयी कि उसने देखा नहीं कि राकेश के चेहरे का सारा आब आक्रोश के रेगिस्तान ने सोख लिया है । अपने साथ मुझे भी दलदल मे खींच लिया, उसने साफ सुना, किसीने तिरस्कार के साथ कहा है । किसने कहा ? राकेश के होठ तो खुले नहीं, मुरझाये फूल-से बद हैं । उसका शुष्क चेहरा सामने है, जबान न सही, माथे पर खिंची हर शिकन यही कह रही है ।

कौशल का फोन तो आना ही था । मौत की तरह ।

चोंगा माधवी के हाथ मे था, मुर्दा शरीर से उठती दुर्गंध की तरह ।

कौशल बोल रहा था । "मैं भरी सभा मे पैर छूकर आपसे माफी मागने को तैयार हू । सुबह के अपने दीवानेपन के लिए बहुत शर्मिंदा हू । पर यह कहते हुए मुझे कोई शर्म नहीं है कि आपसे अतिरिक्त प्रेम के कारण ही ऐसा हुआ । पिछले दिनों आप इतनी कटी-कटी रही कि बर्दाश्त नही हुआ । एक पागलपन मुझपर सवार हो गया । उसी पागलपन मे आपके घर जा पहुचा···"

माधवी चुप थी ।

"मणि को लेकर आप परेशान न हो । मेरी उससे बात हो गयी है । वह अगले महीने की पच्चीस तारीख को दिल्ली आ रहा है, अनुबंध पर दस्तखत कराने । पर उससे पहले वह चाहता है कि मैं आपसे अथॉरिटी लैटर लेकर उसे दे दू जिससे

उसे दिखलाकर, वह पैसे का इंतजाम कर ले। केवल औपचारिकता है पर पूरी तो करनी ही पड़ेगी।"

माधवी चुप रही।

"मैं आपका काम इसलिए नहीं कर रहा क्योंकि आपने मुझे पैसा दिया है, बल्कि आपके साहित्य के प्रशंसक के नाते कर रहा हूं। एजेंसी बेचकर रुपया मिलने के बाद जो बकाया रहेगा, उसे मैं पूरा करूंगा, कभी-न-कभी; जैसे भी होगा; अपनी जान पर खेलकर।"

यही वह संकेत था जिसपर उसे बोलना था। मन की जुगुप्सा और वितृष्णा पर काबू पाकर माधवी ने कहा, "नहीं, कंपोजिंग एजेंसी नहीं बिकेगी।"

"आपका हुक्म नहीं है तो नहीं बिकेगी," कौशल ने अतिनाटकीय भावुकता से कहा तो बिलबिलाकर माधवी ने जोड़ा, "मेरा मतलब है जब तक ठीक ग्राहक नहीं मिलता, नहीं बिकेगी।"

"अथॉरिटी लैटर कब लूं ?" कौशल ने पटरी बदल ली।

"डाक से भेज दूंगी," यंत्रवत् माधवी ने कहा।

"नहीं-नहीं, हमारे यहां डाक बहुत देर से पहुंचती है। मुझे कल ही चाहिए। तिलक रोड आकर ले लूं ?"

माधवी सुन्न रह गयी। इतना बेशर्म भी कोई आदमी हो सकता है !

वह चुप रही। "हल्लो-हल्लो" कौशल चीखने लगा।

सहसा माधवी के मस्तिष्क में बिजली कौंध गयी। यह बेशर्मी नहीं 'ब्लैकमेल' है ! कौशल चेतावनी दे रहा है, उसकी बात मानी नहीं गयी तो वह तिलक रोड जा पहुंचेगा।

"हल्लो ! हल्लो ! हल्लो !" कौशल बराबर चीख रहा है। चिल्लाकर फेंका गया हर 'हल्लो' नुकीली चोंच मारकर माधवी के शरीर का मांस नोच रहा है।

"मैं दस बजे त्रिवेणी आकर दे दूंगी," नुची-खुसटी आवाज में उसने कहा।

"ठीक है, मैं पौने दस पहुंच जाऊंगा।"

"फोन रख रही हूं।"

"पहले यह बतलाइए, आपने मुझे माफ कर दिया ?"

"नहीं !" माधवी के रुंधे गले से निकला। बहुत कोशिश करने पर भी वह अपने को 'हां' कहने लायक नहीं बना पायी। आधा सच आदमी बोल भी ले पर पूरा झूठ ?

"आप मुझे माफ नहीं करेंगी तो मैं भी खुद को माफ नहीं करूंगा। भरपूर सजा दूंगा।"

"..."

"ठीक है। जब तक क्षमा नहीं मिलेगी, मैं अन्न को हाथ नहीं लगाऊंगा। भूख

हड़ताल पहले भी कर चुका हूं। कारखाने की हड़ताल के दौरान। तब ग्यारह दिन बाद समझौता हो गया था। पर इस बार, कितने भी दिन क्यों न बीत जायें, मैं हड़ताल नहीं तोड़ूंगा। आपके प्रति किये गये अपराध का प्रायश्चित्त करने में मेरी जान चली गयी तो परम सुख से मरूंगा मैं।"

वाकई यह आदमी इतनी आसानी से मर सकता है? काश ऐसा हो सकता! राकेश ने इसे रुपया न दिया हुआ होता तो माधवी मुक्त-कंठ से कहती, "जरूर। इस सुख से आप कदापि वंचित न रहिए। खाना छोड़कर मरिए चाहे जहर खाकर, मेरी तरफ से क्षमा आपको नहीं मिलेगी।"

अब नहीं। वह अच्छी तरह जानती है, उसके इतना कहते ही वह कहेगा, मैं एजेंसी पांच हजार में बेच रहा हूं और यह कहने तिलक रोड आ धमकेगा। कोई छुटकारा नहीं है। ब्लैकमेल से निबटने के दो ही तरीके होते हैं, बचपन में पढ़े जासूसी उपन्यास उसे याद आ गये; जो वह कहे, करते चलो या ब्लैकमेल करने वाले को जान से मार दो!

माधवी पसीना-पसीना हो गयी। हकलाकर उसने कहा, "मैंने आपको माफ कर दिया।"

"शुक्रिया! शुक्रिया!" कौशल ने चटखारा लेकर कहा, "मैं जानता था मेरी मौत का खयाल आप बर्दाश्त नहीं कर सकेंगी। धन्य हूं मैं, मुझे मेरे प्रेम का प्रतिफल मिल गया। मुझे मालूम था, कभी-न-कभी आप…"

शब्द कानों में गरम सीसा घोल रहे थे। माधवी ने फोन का चोंगा कान से हटाकर नीचे लटका दिया और उबकाई लेकर जोर से रो पड़ी।

कौशल के शब्दों की ध्वनि उसकी रुलाई के शोर में दब गयी। फिर भी यह अहसास बना रहा कि वह बोले चला जा रहा है और वही सब, जो नाकाबिले-बर्दाश्त है, फिर भी बर्दाश्त करना है।

वह दूने वेग से रोने लगी।

कौशल बोलता रहा।

माधवी रोती गयी।

आखिर फोन कट ही गया।

कौशल टेलीफोन बूथ से बाहर निकल आया। हाथ की मुट्ठी खोलकर हथेली सामने फैलायी और दुबारा मुट्ठी बंद कर ली।

'खाली मुट्ठी में बंद तमाम दुनिया!' वह बुदबुदाया और ठहाका मारकर हँस पड़ा। हमेशा की तरह हँसने की प्रक्रिया में उसके मुंह में ढेर सारा कड़वा पानी भर आया। थू करके उसने उसे बीच सड़क उगल दिया।

इसमें हँसने की क्या बात है, उसने अपने को फटकारा। गंभीर चिंतन का विषय है। मेरा हाथ बिल्कुल खाली है फिर भी सब-कुछ मेरी मुट्ठी में है। मेरी मौत के खयाल से दहलकर माधवी ने मुझे माफ कर दिया। यही नहीं, मेरे प्यार के इजहार पर कोई बंदिश नहीं लगायी। मन लगाकर मुझे सुना, एक बार ना-नुकर नहीं की। औरत इससे ज्यादा कर भी क्या सकती है! कौशल ने कहा, 'मुझे मेरे प्रेम का प्रतिफल मिल गया। मुझे मालूम था, कभी-न-कभी आप मेरे प्यार का मूल्य समझ लेंगी। मैं आपके लिए उसी तरह अनिवार्य हो जाऊंगा जैसे आप मेरे लिए हैं। पुरुष के प्यार में ताकत हो तो, हो नहीं सकता कि स्त्री के दिल में प्यार न उपजे। स्त्री तो उर्वरा है। जन्मदात्री। प्रेम का बीज गिरे और फले नहीं, कैसे हो सकता है! अब मैं जी-जान से लिखूंगा, किसीसे डरूंगा नहीं। जिस दिन तुम मुझे मेरा प्राप्य दोगी, मैं अमर हो जाऊंगा। और तुम दोगी जरूर। तुम साक्षात् अन्नपूर्णा हो, देने में कटौती कैसे करोगी। अन्न दोगी, प्रेम नहीं, इतनी क्रूर तुम नहीं हो सकतीं। नहीं हो, मैं जानता हूं। तभी तो तुम मेरी प्रेरणा हो, मेरी गुरु, मेरी अंतरात्मा। आज से एक नये कौशल का जन्म हुआ है, पुराना कौशल कुमार मर गया। तुम्हें अब कभी शिकायत का मौका नहीं मिलेगा।' इतना कुछ कहा कौशल ने और माधवी ने कहने दिया। एक बार टोका नहीं, बाधा नहीं दी, नकारा नहीं।

कल दस बजे माधवी त्रिवेणी में मिलेगी। ग्यारह नहीं, दस। बेसब्री सब इस तरफ नहीं, उस तरफ भी है। 'अथॉरिटी लेटर' ऐसी चीज नहीं है जो पहली दफा में सही-सही बन जाये। कुछ-न-कुछ कसर रह ही जाती है ऐसे कामकाजी पत्रों में। तीन-चार बार मिलना होगा तब जाकर निर्दोष ड्राफ्ट बन पायेगा। फिर सीनारियो को फाइनल रूप देना है। जब तक वह पूरा होगा, मणि कौल के दिल्ली आने की प्रतीक्षा आरंभ हो जायेगी। माधवी से मिलते रहना होगा। कितनी सुखद है भविष्य की कल्पना! बस, आज के लिए इतना काफी है। उड़ने वाले घोड़े को थकाना नहीं चाहिए। चलने दो दुलकी चाल। और चले चलो खरामा-खरामा घर की तरफ। एक बार वहां पहुंच गये तो पटकनी खाकर नीचे गिरना ही है। जहां मच्छर, मक्खी और तिलचट्टे इतनी आजादी से पलते हों वहां कल्पना के नाजुक चौपायों के लिए जगह नहीं बचती।

पहुंचते ही पत्नी कहेगी, आटा नहीं है, शक्कर नहीं है, चाय की पत्ती नहीं है। अचानक जमीन पर पटका गया कौशल आंखें घुमाकर देखेगा, कहीं कुछ नहीं है। बस वह है, उसके खाली हाथ और परिवार की मांगें।

छोड़ो! जो है उसके बारे में क्या सोचना? वह तो है ही। और रहेगा। कौशल अच्छी तरह जानता है, उसकी तरह के लोग मुक्के उछाल-उछालकर कितने भी भाषण क्यों न दे लें, बदलेगा कुछ नहीं। कम-से-कम उसके जीवनकाल

मे नही। अभी तो दुश्मन को ठीक से पहचाना तक नही। व्यक्ति को व्यक्ति मानकर चलने का मोह बाकी है। यह विश्वास पूरी तरह जगा नहीं कि दुश्मन अच्छा-बुरा नही होता, बस दुश्मन के गिरोह का आदमी होता है। वर्ग-चेतना को परिपक्व होने मे न जाने कितने दशक लगेंगे। पर तब तक हाथ-पर-हाथ रखकर नही बैठा जा सकता। बड़ी लड़ाई लड़ने के लिए अपने को तैयार करना पड़ता है। और उसके लिए जरूरी है कि छोटी-छोटी मुठभेड़ो में जीत हासिल करके अपना हौसला बढाते रहे। एक-एक सर्वहारा एक-एक बुर्जुआ को हरा सके, यह भी कोई कम नही। और इससे बडी हार एक बुर्जुआ के लिए क्या हो सकती है कि उसकी धर्मपत्नी उसीके एहसानो के बोझ तले दबे, उसके कर्जदार से प्रेम करे। और दया करो मुझपर, श्रीयुत राकेश चौधरी, तुम्हारी बीवी मेरी मुट्ठी मे है!

एक बार फिर, खुले हाथ की मुट्ठी बाधकर उसने हवा मे उछाल दी और जमीन से दो हाथ ऊपर, अरबी घोड़े पर सवार, इठलाता हुआ सडक पर बढ चला।

दु:साध्य था कि उसके वाद से पैदल चलने को स्वीकार करना पड़ा था; हालांकि उसका मतलव था, आधा घंटा देर करके तिलक रोड पहुंचना और उतनी देर कौशल को और सहना।

दस वजे के वजाय साढ़े ग्यारह वजे तिलक रोड पहुंचती तो मां कुछ कहतीं नहीं, गहरे दुख से विंधी शिकायती नजरों से उसे देखकर रह जातीं। पर ममता चुप नहीं रहती। साफ कह देती, "इतनी देर करके आती हो, तुम्हें मां की जरा फिक्र नहीं है। यह तो सोचा करो, रात-भर उनके पास रहकर मुझे सुवह जल्दी घर लौटना चाहिए। माधवी सिर झुका लेती, कहती कुछ नहीं। कौशल से कहे सहानुभूति के शब्द गले में फांस की तरह अटके रहते हैं, कुछ कहने लायक नहीं छोड़ते। सच तो यह है, माधवी औरत नहीं रह गई, मशीन वन चुकी है। चावी-भरे यंत्र की तरह दिन-भर मां की देखभाल करती है और शाम को घर लौटने पर विस्तर पर निढाल पड़ जाती है, आने वाले कल को झेलने के लिए अपने कल-पुर्जों में तेल डालती है; घर, पति, वच्चे कहां किस हाल में हैं, देखने की ऊर्जा वची नहीं रहती। वह नही जानती, आलोक-समीर कव स्कूल जाते हैं, कव लौटते हैं, क्या खाते हैं; खाते हैं भी या नहीं।

तीस दिन से रोज दस वजे···

कभी अथॉरिटी लेटर में एक पंक्ति और जोड़नी होती है; कभी उसकी दो प्रतियां और टाइप करके देनी होती हैं, कभी मणि कौल का पत्र आ जाता है, जिसे देखना माधवी के लिए जरूरी होता है और जो, कौशल त्रिवेणी पहुंचने पर देखता है कि साथ लाना भूल गया है, जिससे अगले दिन फिर वही दस वजे त्रिवेणी में मिलना जरूरी हो ज़ाता है, जव पता चलता है कि पत्र तो कौशल से कहीं खो गया; वस में साली भीड़ भी तो कितनी रहती है, धक्के-पर-धक्के लगते चले जाते हैं, अपने पास कौन साली गाड़ी है, गिर-गिरा गया होगा कहीं; मगर कोई वात नहीं, उसमें जो लिखा है उसे जवानी याद है। वार-वार वह खत का मजमून दोहराता है, माधवी को सुनने में दिलचस्पी हो, चाहे नहीं। नहीं है, कहने से माधवी कतराती है क्योंकि उसका मतलव है, उसकी हजार विद्रूप-भरी उक्तियां सुनने में आधा-पौना घंटा और वरवाद कर देना, चाहे त्रिवेणी में वैठे रहकर, चाहे तिलक रोड पर मां की कोठी के ठीक सामने, काइयां नजरों के हमलों की चोट सहते, खड़े रहकर। लिहाजा न सुनकर सुनने का नाटक करना पड़ता है, शायद ऐसा करने से कल की यातना से छुटकारा मिल जाये! पर अगली सुवह कौशल को वह पत्र घर में पड़ा मिल जाता है; घर क्या दड़वा है, कहीं जगह हो तो चीज ठौर-ठिकाने से रखी जाये, वे लोग इंसान थोड़ा हैं, सुअर हैं सुअर; वेहतर है कि माधवी जी उसे अपनी कोठी में महफूज रखें और त्रिवेणी न आ सकें तो कौशल तिलक रोड आकर दे जायेगा। धमकी कारगर होती है और

माधवी अगली सुबह दस बजे त्रिवेणी पहुंच जाती है और उस दिन कौशल फिर पत्र लाना भूल जाता है, जिससे···

अंतहीन सिलसिला है यंत्रणा का !

एक-एक करके तीस दिन बीत रहे हैं। मां की हालत बिगड़ती जा रही है और माधवी···

"क्या होता जा रहा है तुम्हें ?" खीजकर एक दिन ममता ने कहा।

"परेशान हूं," माधवी के मुह से निकला।

"क्या परेशानी है ?"

माधवी क्या कहती ! कुछ देर सामने ताकती रही, फिर बोली, "यही···मां की बीमारी···"

ममता ने अजीब अविश्वसनीय दृष्टि से उसे देखा, मां की इतनी चिंता है तभी बारह बजे से पहले यहां पहुंचने की फुर्सत नही मिलती !

माधवी का चेहरा जर्द पड़ गया। ममता की तरफ से नजरें घुमाकर उसने शून्य में टिका दी। एक वहशत-भरा पगलाया भाव उनमे उभर आया।

"क्या हुआ, बतलाती क्यों नही ? तुम्हें देखकर तो लगता है, कोई तुम्हें ब्लैकमेल कर रहा है।"

माधवी का बदन इतनी जोर से थरथराया कि लगा बेहोश होकर गिर पड़ेगी। ममता ने कंधो से पकड़कर उसे थाम लिया, बोली, "प्लीज, मुझे बतलाओ क्या हुआ है, मैं जरूर तुम्हारी मदद कर सकूंगी।"

माधवी की आंखों मे आंसू आ गये। मदद ? क्या मदद करोगी तुम ? मेरी मदद करने का बस एक तरीका है, कौशल कुमार को मार डालो। नही, तुम नही कर सकती, कोई मेरी मदद नही कर सकता। अपनी मदद मुझे खुद करनी होगी। मेरे सामने रास्ता साफ हो गया है। मैं कौशल कुमार को मार डालूंगी। ब्लैकमेल से निबटने का एक ही तरीका है, ब्लैकमेलर का खात्मा। मुश्किल क्या है ? मां को देखने रोज दो-दो डाक्टर आते हैं। किसीसे भी नुस्खा लिखवा लूंगी, कह दूंगी, अपने बीमार बूढे कुत्ते को 'सुलाने' के लिए साइनाइड चाहिए। पुराने परिचित डाक्टर हैं, बिला हील-हुज्जत नुस्खा लिख देंगे। फिर केमिस्ट से 'दवा' लेनी होगी और अगली सुबह, दस बजे त्रिवेणी पहुंचने पर, कौशल की चाय मे मिला देनी होगी। वह अपनी बातो मे इस तरह मसरूफ रहता है कि उसकी आंखों के सामने ही मिलायी जा सकती है। या उससे कहेगी, बाहर जाकर एक पान ले आये उसके लिए। मीठी आवाज मे कहेगी तो लपककर चला जायेगा। बस किस्सा खत्म ! आज डाक्टर आकर लौट चुके। अब कल आयेंगे। ठीक है, कल नुस्खा लिखवायेगी, परसों त्रिवेणी जाते समय खरीदेगी और···

उसकी पूरी देह में अपार परितोष व्याप गया। जरा भी उत्तेजना महसूस

नहीं हुई, बस सुकून का अहसास सिर से पांव तक उसे भिगो गया। जैसे नींद की गोली खाई हो। इतने दिन नाहक बरबाद किये। आज से बहुत पहले यह कर गुजरना था। खैर···अब···बस···दो दिन और हैं···एक तृप्त मुस्कराहट उसके होंठों पर फैल गयी, आंखें नींद से झपक उठीं।

"अब क्या हुआ ?" ममता ने कहा।

"बहुत दिनों से सोयी नहीं। नींद आ जाये तो···" कहते-कहते वह जमुहाई ले उठी।

"नींद की गोली क्यों नहीं ले लेतीं ?" ममता ने भौंचक मुद्रा में कहा।

"वही करूंगी···चलूं अब," एक और जमुहाई लेकर वह उठ खड़ी हुई।

रोज की तरह आज भी माधवी घर पहुंचते ही सीधी बिस्तर पर जा लेटी। फर्क इतना था कि आज लेटते ही नींद आ गयी। खाना खाने के लिए राकेश को उसे झकझोरकर उठाना पड़ा और आधा-पौना खाकर वह दुबारा बिस्तर पर जाकर सो रही।

बारह घंटे सो लेने के बाद, सुबह तरोताजा देह लेकर उठी। बहुत दिन बाद। हाथों से बाल संवारकर आइने में देखा तो लगा, गरदन पर नया चेहरा उग आया है। इस नये चेहरे का रंग निखरा हुआ है, होंठ खिले-खिले हैं, आंखों के नीचे काले गड्ढे नहीं हैं। आंखें भी बुझी-बुझी कांतिहीन नहीं, बल्कि खूब चौड़ी खुली हैं और दिप-दिप कर दमक रही हैं।

"क्या हुआ !" राकेश कह उठा, "बड़ी खूबसूरत लग रही हो आज !"

"देखते जाओ," माधवी खिलखिला दी, "अब रोज लगेंगे।"

राकेश की निगाहों में एक मुग्ध अकुलाहट भर गयी। बहुत दिन बाद।

"मन में आ रहा है, आज फैक्टरी न जाऊं," उसने कहा।

माधवी की इच्छा हुई, उसे बांहों में समेट ले और अपना सिर उसकी गोदी में रखकर सो जाये और···सोती रहे, देर तक। पर आज नहीं। तिलक रोड पहुंचना है। जल्दी। ऐसा न हो कि डॉक्टर आकर लौट जायें।

"न-न," उसने मधुर हास्य के साथ कहा, "ऐसा गजब न करना। फिर तो रोज-रोज घर बैठना पड़ेगा।"

राकेश भी हँसा। "रात की ड्यूटी तो नहीं है न !" उसने कहा।

सलज्ज भाव से माधवी ने गरदन हिला दी, नहीं।

"तुम्हें लेता हुआ आऊं ?"

इस बार भी माधवी ने गरदन हिलाकर उत्तर दिया, हां।

"पूरी दुलहिन लग रही हो," राकेश ने कहा और सचमुच, याददाश्त के किसी

धुंधले कोने में छिपे शादी के पहले दिन की तरह, उसकी एक उंगली हल्के से अपनी उंगली से दबा दी। लजाकर माधवी ने सिर झुका लिया। देह फिर परितोष से भर गयी। क्या हुआ, उसे धुंधला-सा खयाल आया, अब किसी चीज से उत्तेजना क्यों नही होती ? क्या इस कदर थक चुकी ? अच्छा है। उत्तेजना, आवेग, आवेश चाहती भी नही। बहुत भोग चुकी। अब चाहती हू बस शांति और सुकून। दो दिन और हैं फिर···लम्बी नींद···

त्रिवेणी में खुल्लमखुल्ला सामने बिठलाकर जहर देने पर पुलिस उसे छोड़ेगी नही, यह जानती है। कौशल को देने के बाद खुद भी·· साइनाइड या फांसी ?

"क्या सोचने लगी ?" राकेश ने फुसफुसाकर पूछा।

माधवी ने आंखें उठाकर उसे देखा। मन ही मन कहा, मरने दो मुझे, मरना ही पड़ेगा। इस जोंक से छुटकारा पाने का और कोई तरीका नही है। इस तरह तिल-तिल कर मरने से अच्छा है, साइनाइड की एक चुटकी लू और ··

"तुम्हारा उपन्यास पूरा हो गया ?" उसने सुना, राकेश पूछ रहा है।

"क्या !" उसने ऐसे कहा जैसे पेट में गोली लग गयी हो।

"उपन्यास पूरा हो गया तुम्हारा ?" राकेश ने प्यार से पूछा। प्यार आने पर उसे उसकी रचनाओं का खयाल बरबस आता है।

"नही," उसने कहा और फिर दुहराती ही गयी, "नहीं-नहीं-नही !"

"क्या हुआ ?" राकेश ने कहा।

"कुछ तो नही," उसने हँसकर कहा और चेहरा छुपाने को मुड़ गयी।

नही, वह साइनाइड नही ले सकती, पहले अपना उपन्यास पूरा करना होगा।

आलमारी खोलकर उसने उपन्यास की पांडुलिपि निकाल ली। कितने महीने हो गये ! कवर पर धूल जमी है, भीतर पन्ने पीले पड़ने लगे हैं···

एक-एक पन्ने को हाथ से सहला-दुलराकर पलटा·· ऐसा क्यों लग रहा है जैसे बरसों पहले पढ़े किसी और के उपन्यास के पन्ने पलट रही है ? यह उसीने लिखा है न ? अधूरा है या पूरा हो चुका ? जानती तो है, अधूरा है। फिर ऐसा क्यों लग रहा है, कब का पूरा हो चुका ? लिखने को कुछ बाकी नही है ?

नही, बाकी है। बहुत कुछ बाकी है। यह अधूरा है ! इसे पूरा करना होगा। नही, वह साइनाइड नही ले सकती।

वह पन्ने पलटती रही। अंदर का 'नहीं' चुनौती बनने के बजाय विषाद में बदलने लगा। मन गहरे अवसाद में डूब गया। उपन्यास की लाश···

"मम्मी !" तभी समीर ने आकर पुकारा।

पीले कागजों के पुलिंदे को तेजी से बिस्तर पर पटककर उसने झपटकर समीर को अंक में भर लिया और ताबड़तोड़ उसके गालों पर चुंबन जड़ दिये।

"क्या करती हो !" भौंचक समीर ने अपने को छुड़ाते हुए रुआंसे स्वर में

कहा," "पांच रुपये दो, बस निकल जायेगी।"

माधवी ने उसे पकड़कर एक बार फिर चूम लिया। तब पांच रुपये उसके हाथ पर रखे। वह लाल सुर्ख होकर कमरे से बाहर दौड़ गया।

"आलोक !" माधवी ने आवाज लगायी।

आलोक पास नहीं आया। जाने को तैयार वहीं दरवाजे के पास खड़े रहकर बोला, "मैं जा रहा हूं।"

"एक मिनट इधर तो आओ," माधवी ने कहा।

"देर हो रही है," कहकर वह एकदम बाहर भाग गया।

राकेश खिलखिलाकर हँस दिया, "कहीं उसे मत चूम लेना। किसीको मुंह दिखलाने लायक नहीं रहेगा। इतना ही मन है तो मेरे पास आ जाओ।"

माधवी उसके पास आ गयी। "शाम को जल्दी आना," उसने कहा और मन का सारा प्यार उंगलियों में समेटकर राकेश के सिर के बाल सहला दिये।

उसके चले जाने पर कमरे में लौटी तो बिस्तर पर पड़े पुलिंदे ने पास बुला लिया। उठाकर किसी बीमार के सिर की तरह गोद में रख लिया। उसपर हाथ फेरने लगी। पर आंखों का सूनापन नहीं मिटा। स्याही में बिजली नहीं कौंधी। अभी नहीं, उसने अपने से कहा, बाद में इसे पूरा करूंगी। जरूर। कौशल जब नहीं रहेगा, मेरी अस्मिता पर पड़ी धूल की परतें साफ हो जायेंगी तब···अभी कुछ नहीं सोचना मुझे, कुछ नहीं कुरेदना। झाड़न उठाकर उसने कवर पर पड़ी धूल को रगड़कर साफ किया। फिर एक बड़ा-सा कागज का लिफाफा ढूंढ़ निकाला और उसके भीतर डालकर, उसे सुरक्षित रख दिया···बाद के दिनों के लिए···

वह शीशे के सामने जा खड़ी हुई। हर कोण से अपना चेहरा निहारकर मन लगाकर श्रृंगार करने लगी···बहुत दिन बाद।

ताजा-खिला चेहरा लिये, सुबह दस बजे से पहले तिलक रोड पहुंची तो ममता खुश होकर बोली, "वाह, आज तो खूब जंच रही हो।"

"रात खूब सोयी," माधवी ने कहा।

"बढ़िया है। बस, अब कल भी इसी तरह जल्दी आ जाना।"

"जरूर। पर आज शाम तू जल्दी आना। तेरे जीजाजी मुझे लेने आयेंगे।" कहते-कहते माधवी नववधू की तरह लजा गयी।

ममता क्षण-भर उसका चेहरा पढ़ती रही, फिर बोली, "बात क्या है, कह तो ऐसे रही हो जैसे बारात लेकर आ रहे हों।"

माधवी उन्मुक्त भाव से हँस दी।

"कुछ है जरूर," ममता ने कहा, "कहो तो मिठाई लेकर आऊं ?"

"तेरी शादी की सालगिरह है क्या ?" मां बोल पड़ीं, फिर खुद ही जोड़ा, "नहीं, वह तो अगले महीने है।"

बहुत दिन बाद मां के मुंह से इतना सहज-मधुर वाक्य सुना। "तबीयत कैसी है ?" रुंधे कंठ से उसने पूछा।

"कल और आज मे काफी बेहतर हुई है," ममता ने कहा।

"हां," मां ने कहा, "बहुत दिन बाद आज कुछ खाने का मन है। क्या सब्जी बनाओगी···परवल बनाओ न ?"

"मैं बनाती हूं" माधवी ने चहककर कहा, "तू जा ममता, जा और जल्दी आ।" और बरबस गुनगुनाती हुई वह रसोईघर की तरफ चल दी।

साढ़े दस बजे कौशल का फोन आया। आना ही था। दस बजे माधवी त्रिवेणी पहुंची जो नहीं। उस वक्त वह डाक्टर भार्गव से नुस्खा लिखवा रही थी। साढ़े दस बजे कौशल से बात करते वक्त नुस्खा उसके हाथों मे था। डाक्टर भार्गव मां की तबीयत बेहतर होने की डाक्टरी पुष्टि कर चुके थे। यानी जो-जो महत्त्वपूर्ण था, घट चुका था। कौशल का फोन तो पत्र के नीचे घिसटे पुनश्च की तरह था, बस। माधवी ने उसे अन्यतम सहजता से लिया।

हमेशा की तरह आज भी कौशल आधा घंटा झक मारता रहा पर उसे विचलित नहीं कर सका। पर्स में डाक्टर भार्गव का नुस्खा जो था। दृढ़ता के साथ वह एक ही बात दुहराती रही, "आज नहीं, कल मिलूंगी, नौ बजे।"

"कल जरूर मिलेंगी न।" कौशल ने कहा।

"जरूर," माधवी ने कहा तो उसकी आवाज पेशेवर नर्तकी की तरह बल खा उठी।

"बड़ी खुश हैं आज।"

"बहुत।"

"तब, आ जाइए न।"

"नहीं, कल।"

"कल कोई खास बात है क्या ?"

"बहुत !"

"क्या बात है, बतलाइए न ?"

"कल।"

"बात तो बतला दीजिए। आ कल जाइएगा।"

"कल।"

"वतलाइए न, मैं वहुत धैर्यहीन आदमी हूं।"

"कल।"

आखिर उसकी आवाज की खनक से हारकर कौशल ने हथियार डाल दिये।

"कितने वजे आयेंगी ?" उसने पूछा।

"नौ वजे। ठीक नवें घंटे पर। तत्काल !"

"कैसी मूड में हैं आज ?"

माधवी हँस पड़ी। "मैंने पहले भी आपसे कहा है, मूड पुल्लिग है, स्त्रीलिंग नहीं। मेरा मूड कहता है, कल का इंतजार करो।"

उसने फोन काट दिया पर उसके पास वनी रही। जानती थी न, दुवारा वजेगा। पर आज इस अपेक्षित प्रतीक्षा ने दिमाग की नसों पर जोर नहीं डाला। वल्कि घात लगाती विल्ली की तरह चूहे के पास आने की वाट जोहती रही।

फोन नहीं वजा। आश्चर्य ! है और नहीं भी। वात-वात पर उत्तेजित हो जाने वाला कौशल उसकी आवाज की मस्ती से इतना विचलित हो गया होगा कि कल तक का इंतजार उसे प्रहर्षपूर्ण लगा होगा। कल सुवह तक वह अपनी उत्तेजना को कोड़े मार-मारकर उस पराकाष्ठा पर पहुंचा लेगा जहां करीव-करीव हिस्टीरिया की जकड़ में होगा। जैसे ही वह त्रिवेणी पहुंचेगी, वह प्रश्न पर प्रश्न उगलने शुरू कर देगा। एक के वाद एक, रह-रहकर वही एक, जैसे कै कर रहा हो। न चाहकर भी माधवी उत्तर देगी तो लगेगा उसकी उल्टी समेट रही है। माधवी ने तो कभी अपने वच्चों की उल्टी नहीं समेटी। जरूरत पड़ने पर राकेश आगे वढ़कर साफ कर देता। राकेश ! ओह, राकेश !

सुना है, साइनाइड मुंह में डालते ही आदमी तत्काल खत्म हो जाता है। सामने वैठा, जोर-जोर से वोल रहा कौशल चाय का एक घूंट भरेगा और··· दुमकटा प्रश्न उत्तर नहीं मांगेगा। कौशल की गरदन लटक जायेगी। होंठ खुल आयेंगे। आंखें ऊपर को टंग जायेंगी। माधवी चुप रहेगी। शब्दों की वेश्यावृत्ति से छूटकर चाय का लंवा घूंट भरेगी और···

होने दो जो होगा। पुलिस आयेगी, गिरफ्तारी होगी···माधवी नहीं जानती आगे क्या होगा। पूरा सच सिमटकर एक लम्हे में समा गया है। वह पुरसकून लम्हा, जव कौशल की आवाज अचानक शव्द को छीलकर वंद हो जायेगी। उसके वाद और पहले के क्षण नाटक के दृश्यों से ज्यादा कुछ नहीं हैं। माधवी एक अभिनेत्री है जो कल एक प्रवल नाटक में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने जा रही है। वस। पूर्णविराम !

शाम को राकेश की गाड़ी का हार्न बजा तो माधवी ने उसके भीतर आने का इंतजार नहीं किया। भागती हुई बाहर निकली और उसके उतरने से पहले, दूसरी तरफ का दरवाजा खोलकर गाडी में बैठ गयी।

"क्या हुआ ?" चकित राकेश ने पूछा, "मां से न मिलूं ?"

"नहीं, घर चलो।"

राकेश ने बहस नहीं की, गाडी चला दी। माधवी उसके पास खिसक आयी और उससे सटकर बैठ गयी। राकेश की बांह ने उसके कंधे घेर लिये।

"एक्सीडेंट हुआ तो पुलिस तुम्हें पकडेगी, मुझे नहीं," राकेश ने कहा और खिलखिलाकर हँस पडा। शादी से पहले, दोनों घूमने निकलते थे तो राकेश हर बार यही कहा करता था। राकेश के साथ माधवी भी हँस दी और देर तक हँसती चली गयी। राकेश के चुप हो जाने के बहुत देर बाद तक।

राकेश ठगा-सा रह गया। "क्या हुआ," उसने कहा, "इतना क्यों हँस रही हो ?"

"क्यों, हँसने के लिए नुस्खा लिखवाना पडता है क्या ?" माधवी बोली और बेतरह हँस दी।

"इतना हँसने के लिए जरूर लिखवाना चाहिए," राकेश ने कहा।

"लिखवा तो लिया, अब बनवा लेते हैं," माधवी ने कहा, "गाडी रोको।"

"क्या मतलब ?"

"रोको न।"

राकेश ने गाडी रोक दी।

"अभी आयी," कहकर माधवी उतर गयी और सामने दवा की दूकान में घुस गयी। पांच मिनट बाद लौटी तो राकेश ने उत्सुकता से पूछा, "क्या कर आयी ?"

"सिरदर्द की दवा लायी हूं। बडी कारगर दवा है। गोली अंदर और दर्द चुप।"

"चुप नहीं, बाहर," राकेश ने कहा।

"नहीं, चुप !" माधवी ने कहा और देर तक हँसती रही।

राकेश के माथे पर बल पड गये। माधवी ने देखा तो हँसी रोक सजीदा हो गयी।

"कुछ ज्यादा हो गया न, अब नहीं हँसूगी," उसने कहा और चुपचाप बैठ गयी। अब राकेश हँस दिया और बांह से घेरकर उसे पास समेट लिया।

अगले चौराहे पर लाल बत्ती मिलने पर गाडी जैसे ही रुकी, फटेहाल बच्चों ने उसे घेर लिया। 'इवनिंग न्यूज, इवनिंग न्यूज' की पुकार चारों तरफ रिरिया उठी। "क्या तरीका है अखबार बिकवाने का !" उसे याद आया कौशल ने एक

"कल।"

"बतलाइए न, मैं बहुत धैर्यहीन आदमी हूं।"

"कल।"

आखिर उसकी आवाज की खनक से हारकर कौशल ने हथियार डाल दिये।

"कितने बजे आयेंगी ?" उसने पूछा।

"नौ बजे। ठीक नवें घंटे पर। तत्काल !"

"कैसी मूड में हैं आज ?"

माधवी हँस पड़ी। "मैंने पहले भी आपसे कहा है, मूड पुल्लिग है, स्त्रीलिंग नहीं। मेरा मूड कहता है, कल का इंतजार करो।"

उसने फोन काट दिया पर उसके पास बनी रही। जानती थी न, दुबारा बजेगा। पर आज इस अपेक्षित प्रतीक्षा ने दिमाग की नसों पर जोर नहीं डाला। बल्कि घात लगाती बिल्ली की तरह चूहे के पास आने की बाट जोहती रही।

फोन नहीं बजा। आश्चर्य ! है और नहीं भी। बात-बात पर उत्तेजित हो जाने वाला कौशल उसकी आवाज की मस्ती से इतना विचलित हो गया होगा कि कल तक का इंतजार उसे प्रहर्षपूर्ण लगा होगा। कल सुबह तक वह अपनी उत्तेजना को कोड़े मार-मारकर उस पराकाष्ठा पर पहुंचा लेगा जहां करीब-करीब हिस्टीरिया की जकड़ में होगा। जैसे ही वह त्रिवेणी पहुंचेगी, वह प्रश्न पर प्रश्न उगलने शुरू कर देगा। एक के बाद एक, रह-रहकर वही एक, जैसे कै कर रहा हो। न चाहकर भी माधवी उत्तर देगी तो लगेगा उसकी उल्टी समेट रही है। माधवी ने तो कभी अपने बच्चों की उल्टी नहीं समेटी। जरूरत पड़ने पर राकेश आगे बढ़कर साफ कर देता। राकेश ! ओह, राकेश !

सुना है, साइनाइड मुंह में डालते ही आदमी तत्काल खत्म हो जाता है। सामने बैठा, जोर-जोर से बोल रहा कौशल चाय का एक घूंट भरेगा और··· दुमकटा प्रश्न उत्तर नहीं मांगेगा। कौशल की गरदन लटक जायेगी। होंठ खुल आयेंगे। आंखें ऊपर को टंग जायेंगी। माधवी चुप रहेगी। शब्दों की वेश्यावृत्ति से छूटकर चाय का लंबा घूंट भरेगी और···

होने दो जो होगा। पुलिस आयेगी, गिरफ्तारी होगी···माधवी नहीं जानती आगे क्या होगा। पूरा सच सिमटकर एक लम्हे में समा गया है। वह पुरसकून लम्हा, जब कौशल की आवाज अचानक शब्द को छीलकर बंद हो जायेगी। उसके बाद और पहले के क्षण नाटक के दृश्यों से ज्यादा कुछ नहीं हैं। माधवी एक अभिनेत्री है जो कल एक प्रबल नाटक में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने जा रही है। बस। पूर्णविराम !

शाम को राकेश की गाड़ी का हार्न बजा तो माधवी ने उसके भीतर आने का इंतजार नही किया। भागती हुई बाहर निकली और उसके उतरने से पहले, दूसरी तरफ का दरवाजा खोलकर गाडी मे बैठ गयी।

"क्या हुआ ?" चकित राकेश ने पूछा, "मां से न मिलूं ?"

"नही, घर चलो।"

राकेश ने बहस नही की, गाडी चला दी। माधवी उसके पास खिसक आयी और उससे सटकर बैठ गयी। राकेश की बांह ने उसके कंधे घेर लिये।

"एक्सीडेंट हुआ तो पुलिस तुम्हे पकड़ेगी, मुझे नहीं," राकेश ने कहा और खिलखिलाकर हँस पडा। शादी से पहले, दोनो घूमने निकलते थे तो राकेश हर बार यही कहा करता था। राकेश के साथ माधवी भी हँस दी और देर तक हँसती चली गयी। राकेश के चुप हो जाने के बहुत देर बाद तक।

राकेश ठगा-सा रह गया। "क्या हुआ," उसने कहा, "इतना क्यों हँस रही हो ?"

"क्यों, हँसने के लिए नुस्खा लिखवाना पड़ता है क्या ?" माधवी बोली और बेतरह हँस दी।

"इतना हँसने के लिए जरूर लिखवाना चाहिए," राकेश ने कहा।

"लिखवा तो लिया, अब बनवा लेते हैं," माधवी ने कहा, "गाड़ी रोको।"

"क्या मतलब ?"

"रोको न।"

राकेश ने गाडी रोक दी।

"अभी आयी," कहकर माधवी उतर गयी और सामने दवा की दूकान में घुस गयी। पांच मिनट बाद लौटी तो राकेश ने उत्सुकता से पूछा, "क्या ले आयी ?"

"सिरदर्द की दवा लायी हूं। बड़ी कारगर दवा है। गोली अंदर और दर्द चुप !"

"चुप नही, बाहर," राकेश ने कहा।

"नही, चुप !" माधवी ने कहा और देर तक हँसती रही।

राकेश के माथे पर बल पड़ गये। माधवी ने देखा तो हँसी रोक गंभीर हो गयी।

"कुछ ज्यादा हो गया न, अब नहीं हँसूंगी," उसने कहा और चुपचाप बैठ गयी। अब राकेश हँस दिया और बांह मे घेरकर उसे पास समेट लिया।

अगले चौराहे पर लाल बत्ती मिलने पर गाड़ी जैसे ही रुकी, फटेहाल बच्चों ने उसे घेर लिया। 'इवनिंग न्यूज, इवनिंग न्यूज' की पुकार चारों तरफ गूंज उठी। "क्या तरीका है अखबार बिकवाने का !" उसे याद आया कौशल ने एक

दिन कहा था, "भिखारियों ने भीख न मांगी, सेठों के अखबार बेच दिये। मजूरी ज्यादा क्यों दें, भिखारियों को भिखारी रहने दिया जाये, तभी मुनाफा डबल होता है। थू!"

इन फटेहालों में कुछ या काफी लंगड़े-लूले-अपाहिज भी होंगे, उसने महसूस किया पर आंख उठाकर उनकी तरफ देखा नहीं और न अखबार खरीदने के लिए पर्स टटोला।

"लेना एक," पचास पैसे का सिक्का उसकी तरफ बढ़ाकर राकेश ने कहा। और फिर अपनी तरफ की खिड़की से हाथ बढ़ाकर एक खुद भी ले लिया।

"दो-दो का क्या करोगे?" माधवी ने कहा।

"करना क्या है, ले लो," राकेश ने कुछ सख्ती से कहा तो उसने सबसे करीब खड़े बच्चे की हथेली पर सिक्का डाल दिया, उसकी तरफ देखा तब भी नहीं। अखबार आकर उसकी गोदी में गिर गया।

गाड़ी चल दी। वह अखबार उठाकर सरसरी निगाह उसपर दौड़ाने लगी।

अखबार से नजर उठायी तो देखा, मेडिकल इंस्टीट्यूट की इमारत सामने है। अभी इसीको लेकर एक खबर पढ़ी है। "इसमें समाजसेवी सुशीला पाठक की अपील निकली है," उसने राकेश से कहा, "इंस्टीट्यूट में सोलह बरस के एक गरीब लड़के का आपरेशन होना है। पांच हजार रुपया लगेगा। लड़के के पिता के लिए इतना रुपया जुटा पाना संभव नहीं है। इसलिए लोगों से अपील की है कि वे कुछ-न-कुछ दान दें। अजीब बात है, सरकारी अस्पताल में लोग क्यों दान दें। सरकार को पैसा लगाना चाहिए।"

राकेश ने भी देखा, सामने इंस्टीट्यूट की इमारत है। उसने गाड़ी धीमी कर ली। "देना चाहती हो तो दे देते हैं," उसने कहा।

"क्या पता झूठ ही हो," माधवी ने कहा, "चलो न, गाड़ी क्यों रोक रहे हो?"

राकेश तनिक झिझका फिर गाड़ी तेज कर दी। पर कुछ दूर जाने पर बोला, "इंस्टीट्यूट सरकारी अस्पताल नहीं है। और हो भी तो हर किसीका मुफ्त आपरेशन करने की हमारी सरकार की कोई पॉलिसी नहीं है। कुछ पैसे देना चाहो तो जाकर दे सकते हैं।"

"जाने दो," माधवी ने कहा, "रोज कुछ-न-कुछ होता ही रहता है।"

अखबार को मोड़कर उसने गाड़ी के फर्श पर डाल दिया और अपना सिर राकेश के कंधे पर टिका दिया।

गाड़ी गति पकड़ने लगी।

"आगे कहीं गजरे वाला दिखे तो रोकना," कुछ ठहरकर माधवी ने कहा।

राकेश मुस्करा दिया।

"पर खरीदना एक, दस-बारह नहीं," माधवी ने फिर कहा।

राकेश हंस दिया। "एक-दो तो, तुम जानती हो, हम खरीदते नहीं। शृंगार करना है तो पूरा करो वरना…"

झट से माधवी ने उसे होंठों पर चूम लिया। बीच सड़क। राकेश फिर नहीं बोला।

गाड़ी की रफ्तार तेज होती गयी।

सुबह आंख जल्दी खुल गयी।

दरअसल सुबह हुई नहीं थी। अंदर-बाहर रात के आखिरी पहर का सन्नाटा था, जाग उठने से जरा पहले का ठहरा-ठहरा स्पंदन लिये। अंधेरा चितकबरा पड़ने लगा था, पूरी तरह छंटने से पहले उस बेआवाज दस्तक का इंतजार कर रहा था, जो बिला नागा रोज पड़ती ही है।

माधवी उठकर बच्चों के कमरे में चली गयी। अंदर जीरो पावर का बल्ब जल रहा था। बाहर और भीतर की रोशनी एक-ब-एक हो रही थी। हल्के उजास में बिस्तर पर निश्चल लेटी, आलोक और समीर की सफेदपोश आकृतियां बर्फ में गढ़ी मूर्तियों की तरह दिख रही थीं।

बिना शब्द किये माधवी पलंग के पास कुर्सी पर बैठ गयी। टक लगाकर उन्हें देखने लगी। छूने की कोशिश नहीं की। तस्वीर कहीं हिल न जाये। इसमें सुंदर कहीं कुछ नहीं है! वह भ्रमग्न थी। आनंद-लीन देख रही थी। आंखों में आंसू उमड़कर गालों पर बहने लगे थे। नीचे गिर-गिरकर उसकी साड़ी की पटलियां भिगो रहे थे।

एक घंटा बीत गया…

चेहरे के नक्श साफ होने लगे…समीर ने कसमसाकर बदन तोड़ा…

माधवी बाहर निकल आयी। आंसुओं को उसने नहीं पोंछा, खुद सूख गये।

शांत मन से उसने राकेश से कहा कि फैक्टरी जाते हुए उसे तिलक रोड छोड़ता जाये।

रास्ते-भर वह उसे अपलक निहारती रही पर छूने की कोशिश फिर नहीं की। उतरने लगी तो राकेश ने मुड़कर उसकी तरफ देखा और मुस्करा दिया। कितना सुंदर है सब-कुछ, माधवी ने अगाध तृप्ति के साथ महसूस किया और घर के अंदर चली गयी।

सुबह आठ बजे उसे पहुंचा देखकर ममता चकित रह गयी। "अभी तो मैंने मां का स्पंज भी नहीं किया," उसने कहा।

"स्पंज मैं कर देती हूं," माधवी ने कहा, "पर तू घर मत भाग जाना। नौ बजे मुझे एक घंटे के लिए त्रिवेणी जाना है। दस बजे लौट आऊंगी तो तू चली

जाना।"

"ठीक है," ममता ने कहा, "पर जब तुम एक घंटे यहां हो तो मैं एक काम कर आऊं। बहुत दिनों से बेबी के स्कूल जाना चाह रही हूं, आज हो आती हूं।"

"नौ बजे तक आ जायेगी न?"

"उससे भी पहले। मुझे वहां करना ही क्या है!"

ममता को भेजकर माधवी मां के कमरे में चली आयी। मां ने मुस्कराकर उसका स्वागत किया। आज यह पूछने की जरूरत भी महसूस नहीं हुई कि तबीयत कैसी है। पौने नौ तक उनका सब काम निबट गया।

ममता के आते ही त्रिवेणी के लिए चल पड़ूंगी, माधवी ने पर्स में पड़े पैकेट को थपथपाकर तय किया।

तभी मां कह उठीं, "कल तेरे बनाये परवल तो बहुत बढ़िया थे। ऐसा नहीं हो सकता, आज मैं थोड़ी-सी गोभी खा लूं?"

"गोभी तो बहुत सकील होगी मां," उसने कहा।

"बस, जरा-सी, जायका बदलने को," मां मनुहार कर उठीं।

बना देती हूं, माधवी ने सोचा, इतना मन है तो चख लेंगी जरा-सी। कुछ नहीं होगा। अब किसीका कुछ बुरा नहीं होगा। बुराई की जड़ मिटने वाली है। दस-पंद्रह मिनट में गोभी तैयार हो जायेगी, उतने ममता भी आ जायेगी। त्रिवेणी पहुंचने में दस-बीस मिनट की देरी हुई तो कोई बात नहीं। कौशल इंतजार करेगा, आदत है। बहुत हुआ तो इंतजार करता-करता फोन कर लेगा। कोई बात नहीं। माधवी अब उसके फोन से नहीं डरती। माधवी अब किसी चीज से नहीं डरती। हर डर से वह मुक्त है, निर्भय, निःशंक, निश्चय पर अटल।

सब्जी तैयार हो गयी। ममता नहीं आयी। नौ बज गये। माधवी ने गैस पर सूप बनने रख दिया। चलो, इसे भी बना डालती हूं। आ जायेगी ममता। बाद में मां को अकेले ही संभालना होगा उसे। संभाल लेगी। बच्चों को राकेश संभाल लेगा। मुझे भी...समझ जायेगा। हमारे बीच अब कोई गलतफहमी बाकी नहीं रही। वह समझ जायेगा मैंने जो किया, करना ही था, और उपाय नहीं था इसलिए।

"ममता आयी क्यों नहीं? अब और देर नहीं होनी चाहिए। कहीं मुझे..."

मां के बिस्तर के पास पड़ी घंटी चीत्कारकर बज उठी और बजती चली गयी।

माधवी के सिर पर जैसे गाज गिरी। सूप का पतीला नीचे पटककर वह उनके कमरे की तरफ भागी।

घंटी उसी तरह बजती रही।

मां का हाथ घंटी पर गिरा पड़ा था; चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं; सांस

उखड़ रहा था; बदन के कपड़े पसीने से भीग रहे थे। घंटी बजती चली जा रही थी।

"क्या हुआ ?" घबराहट में उसके मुंह से निकला।

मां ने बोलने की नाकाम कोशिश की।

"नहीं-नहीं, बोलिए नहीं," उसने कहा और गोली उसके मुंह में डाल दी। धीरे से हाथ घंटी पर से हटा दिया। पसीने से भीगा हाथ बर्फ की तरह ठंडा था। माधवी को खुद पसीना छूट गया। "डाक्टर को बुलाती हूं!" कहती वह फोन पर पहुंची।

वह चोंगा उठाती, उससे पहले ही फोन की घंटी बज उठी।

झपटकर उसने चोंगा उठाया और कहा, "फोन रख दीजिए। मुझे डाक्टर···"

उसके वाक्य को बीच में काटकर उधर से आवाज चहकी, "कौशल हूं। आप आयीं नहीं। आपने तो कहा था, नवें घंटे पर तत्काल ··"

"फोन रख दीजिए," माधवी चीखी, "मुझे डाक्टर को मिलाना है।"

"क्यों, क्या हो गया ?" कौशल ने आराम से पूछा।

"मां की हालत खराब है। फोन फौरन काटिए!"

"इतना घबराइए मत। ठीक हो जायेंगी। आप हौसला···"

"फोन काटिए जल्दी!"

"आप हौसला रखिए। इस तरह से घबराने से तो आपकी अपनी तबीयत···"

माधवी ने फोन का चोंगा नीचे पटक दिया और पड़ोसियों के घर फोन करने दौड़ी। मां के कमरे से जाते-जाते कहा, "आती हूं फोन करके।"

मां ने कातर नजरों से उसे देखा और अस्फुट स्वर में पूरा दम लगाकर किसी तरह कहा, "···मत···जा···मेरे···पास···"

माधवी रुकी नहीं। दौड़कर पड़ोसी के यहां पहुंची और डाक्टर भार्गव को फोन करके वापस दौड़ पड़ी। रास्ते-भर प्रार्थना करती रही—हे भगवान, मां के पास ममता पहुंच चुकी हो! पहुंच चुकी हो! पहुंच चुकी हो!

ममता नहीं पहुंची थी।

माधवी मां के पास आयी। उनका सांस घुट रहा था। सांस लेने की कोशिश में पेट इतनी बुरी तरह ऊपर नीचे हो रहा था कि पूरा पलंग हिल रहा था।

"मा···ध···वी···" टूटती आवाज में उन्होंने कहा।

"डाक्टर आ रहा है," उसने कहा और उनका हाथ थाम लिया।

हाथ उसके हाथ पर कस गया जैसे ··नहीं-नहीं ··जैसे लाश की पकड़ हो! "न · ही ··ब···चूंगी···" घरघर करती आवाज में उन्होंने कहा, "म···म···ता···"

"जरूर बचोगी!" माधवी ने कहा, "मैं डाक्टर शिंदे को बुलाती हूं।"

पता नहीं डाक्टर भार्गव अब तक पहुंचे क्यों नहीं। डाक्टर शिंदे को भी बुला ले, शायद वे जल्दी पहुंच जायें। किसी तरह हाथ छुड़ाकर वह फोन के पास आयी और चोंगा उठा लिया।

कोई आवाज नहीं थी। क्या हुआ, फोन खराब हो गया या···! अब तक कौशल उसपर लिसड़ा पड़ा है।

"हलो ऽ!" संतुलन खोकर वह चीखी।

"कहां चली गयी थीं? क्या हो गया?" कौशल की आवाज आयी।

"मां मर रही हैं!" वह रो दी।

"ओहो, मैं कुछ कर सकता हूं?"

सहसा उसका पगलाया दिमाग काम कर गया।

"हां," उसने कहा, "७९२१६३ पर फोन करके कहिए, ममता फौरन यहां आ जाये, मुझे इस फोन पर डाक्टर से बात करनी है," जो भी अंक सबसे पहले उसके मन में आये, उन्हें बतलाकर उसने कौशल को टालना चाहा।

"अच्छा, क्या नम्बर···?"

"७९२१६३। जल्दी!"

"उनासी, इक्कीस, तिरसठ?" कौशल को, लगता था, कोई जल्दी नहीं है।

"हां-हां, जल्दी कीजिए।"

"किसको बुलाना है—ममताजी को?"

"जल्दी! प्लीज!" वह जोर से चीखी।

आखिर फोन कट गया।

माधवी ने डाक्टर शिंदे का फोन मिलाया। कहा, "माधवी हूं। डाक्टर सा'ब, फौरन आ जाइए! मां की तबीयत बहुत खराब है।"

"मैं यहां हूं," मां के कमरे से आवाज आयी। डाक्टर भार्गव पहुंच गये थे।

वह भागकर वहां पहुंची। डाक्टर भार्गव इंजेक्शन-पर-इंजेक्शन लगा रहे थे।

"एंबुलेंस के लिए फोन कीजिए, अस्पताल ले जाना होगा।" उसे देखते ही उन्होंने कहा।

माधवी वापस फोन पर भागी तो सुना उसकी घंटी पहले से बज रही है। उठाकर उसने हलो नहीं कहा, सीधा चिल्लायी, "फोन रख दीजिए। एंबुलेंस को करना है।"

"अरे, क्या नम्बर बतला दिया आपने?" उधर से आवाज आई, "उसपर कोई ममता नहीं हैं।"

"रहने दीजिए। मां को फौरन अस्पताल ले जाना है। फोन काट दीजिए।"

"पर ममता जी का सही नंबर तो बतला दीजिए।"

"रखो फोन!" होशोहवास खोकर वह चीख उठी, "डाक्टर! डाक्टर! यह

आदमी फोन नहीं रख रहा !"

डाक्टर भार्गव ने आकर उसके हाथ से फोन ले लिया। इशारे से उसे मां के पास जाने के लिए कहा।

मां के कमरे में जाते-जाते उसने सुना, डाक्टर भार्गव ने सर्द-सख्त स्वर में कहा है, "फोन रखो !" और तत्काल अपनी तरफ से नंबर घुमाने लगे हैं। एक···दो···तीन··· अब एंबुलेंस आ जायेगी, मां के पास पहुंचने पर उसने राहत महसूस की।

मां ने एक बार पूरा दम लगाकर सांस बाहर फेंका और···पलंग हिलना बंद हो गया ! पेट नीचे गिरकर ऊपर नहीं उठा !

"डाक्टर !" स्तंभित माधवी ने आवाज दी।

डाक्टर भार्गव ने फोन रख दिया।

मां की गरदन लटक गयी ; होंठ खुल आये; आंखें ऊपर को टंग गयीं।

"डाक्टर !" माधवी पूरा दम लगाकर चीखी।

डाक्टर भार्गव अंदर आये और···यह क्या ! डाक्टर मा की छाती पर मुक्के क्यों मार रहे हैं !

"डाक्टर?" वह फुसफुसायी।

उन्होंने धीरे से हाथ हिलाया और फिर वही हाथ आगे बढ़ाकर मां की आंखें बंद कर दीं।

माधवी अवसन्न रह गयी।

अंदर फोन बजने लगा।

डाक्टर शिंदे आ पहुंचे। डाक्टर भार्गव ने उन्हें देखकर सिर हिला दिया।

ममता लौट आयी।

दोनों डाक्टर वापस चले गये।

अंदर फोन बजता रहा।

ममता फफक-फफककर रो दी।

माधवी फिर भी अवाक् बैठी रही।

लोग आने लगे।

ममता ने खुद को संभाला। मा को नीचे उतारा गया। [illegible] रही। ममता ने हाथ पकड़कर उसे उठाया और मा के बराबर [illegible] दिया। माधवी बैठ गयी। बैठी रही।

लोग आते रहे, पास बैठते रहे, फोन बजता रहा, [illegible]

दुपहर बाद, ममता ने आकर कहा, "तुम्हारा फोन है [illegible]

"फोन !" उसके वदन में धुरधुरी आ गयी।

"नहीं !" वह चीख पड़ी।

"कई वार मना कर चुके, वार-वार किये जा रहा है, जाकर सुन लो और खत्म करो," कड़वे स्वर में ममता ने कहा।

माधवी को चोंगा उठाना पड़ा।

"मां मर गयीं।" उसने कहा।

"हां, पता चला। फिर तो आज आपका आना नहीं होगा ?"

माधवी सुन्न-चुप रही।

"तब कल आइए। दस वजे। मेरी किस्मत भी कितनी खराव है, अव तो यकीन आ गया होगा आपको। कितनी शिद्दत से आज का इंतजार किया था पर··· आज आप आतीं तो मन का सब-कुछ आपके सामने उगल देता !"

माधवी अवाक्-मूक रही।

"हल्लो ! हल्लो ! हल्लो !" कौशल चीखा, "माधवी जी ! माधवी जी !"

"हां," माधवी ने कहा। कहना पड़ा।

"कल आयेंगी न ?"

"हां," माधवी ने कहा। और चारा नहीं था।

"वात करने की सुविधा नहीं है क्या ?" कौशल ने पूछा।

"नहीं," माधवी ने कहा।

"अच्छा, रख रहा हूं, कल मिलेंगे," कौशल ने कहा और फोन काट दिया।

कल-कल-कल ! माधवी के कानों में चुभता रहा। फिर एक कल ! कल इस आदमी से मिलना होगा ? न मिली तो ? तो···क्या होगा ? तिलक रोड आ धमकेगा। मां की तवीयत···कहां है मां ? उसका वदन एक वार जोर से थरथराया फिर सुन्न पड़ गया। मां मर गयीं। घवराकर उसने अपना पर्स टटोला। पुड़िया सुरक्षित है। माधवी ने किसीको जहर नहीं दिया। फिर मां मर कैसे गयीं ?

अगले दिन सुवह साढ़े दस वजे, माधवी को फिर फोन पर बुलवाया गया।

"अव तक आयीं नहीं?" कौशल ने साधिकार पूछा।

"नहीं।" माधवी ने कहा।

"कव तक आयेंगी ?"

"नहीं !"

"क्या ? हल्लो-हल्लो-हल्लो···!"

"नही आऊंगी।"

"क्यों ?"

"...."

"रिश्तेदारों के बीच फंस गयी हैं क्या ?"

"...."

"आ जाइए न थोड़ी देर के लिए, ऐसे मन मारिए हमें। इंतजार कर रहा हूं, आयेंगी तो बहुत बढ़िया खबर दूंगा आपको।"

"...."

"नहीं आयेंगी ?"

"नहीं !"

"आना तो पड़ेगा। आज नहीं तो कल। पच्चीस तारीख को मणि कौल आ रहा है। कल चिट्ठी आयी है। आज सीनारियो फाइनल करके भेजना है। आपसे बात करना जरूरी है।"

"नहीं।"

"कंपोजिंग एजेंसी के बारे में भी तय करना है।"

"नहीं।"

"मैं आ जाऊं वहां ?"

"नहीं।"

"तो आपके घर आ जाता हूं। कब जायेंगी आप घर ?"

"नहीं।"

"घर नहीं जायेंगी ?"

"नहीं।"

"कब तक ?"

"...."

"ठीक है, आपकी इच्छा। मेरा काम तो रुक नहीं सकता। मैं तिलक रोड आ रहा हूं।"

इसके काफी देर बाद तक दोनों तरफ चुप्पी रही। कौशल प्रतीक्षा कर रहा होगा कि उसके मुंह से मुक्त मन 'नहीं' का चीत्कार सुनकर ही फोन काटे। पर जब चुप्पी काफी खिंच गयी तो उसूलों के पक्के, पुश्तैनी डाकू की साफगोई के साथ चिल्लाकर बोला, "तो आ रहा हूं !" और फोन काट दिया।

माधवी अंदर कमरे में जाकर जमीन पर बैठी चाचियों-मामियों की भीड़ के बीच दुबक गयी। कमरे की खिड़की से उसने देखा, अपनी पतली-लंबी सींखिया टांगों पर खबड़-खबड़ करता कौशल दरवाजे के भीतर घुसा है। एक बुजुर्ग ने इशारे से मर्दों का कमरा दिखला दिया है और वह अंदर चला गया है।

चंद मिनट गुजर गये। वैसे ही खबड़-खबड़ करता वह बाहर निकला और दरवाजा लांघ गया।

अगले बारह दिन माधवी तिलक रोड से बाहर नहीं निकली।

रोज कौशल का फोन आता था। एक-दो-तीन-चार बार। बहुत-कुछ था कहने को उसके पास। वही सब जो अनगिनत बार पहले कह चुका था। आह, पर उसकी अभिव्यक्ति। शिल्प-शैली! हर बार भिन्न। मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कापाय, तिक्त; अनुरोध, चेतावनी, मनुहार, आग्रह, अधिकार, आतंक; हर रस-भाव को उसने शब्दों में बांधा, बुना और बट-बटकर संवारा। अद्भुत था उसका वाक्य-विन्यास, भावों की अनुगूंज। पर न जाने क्या हुआ कि माधवी के भीतर शब्द नहीं उफने, भावों का ज्वार नहीं फूटा, उमंग के हर दौर के जवाब में एक ही शब्द उसने कहा, नहीं!

यह कैसे हो गया! हतबुद्धि कौशल बार-बार अपने से पूछ रहा है, मैंने तो मुट्ठी की पकड़ जरा ढीली नहीं की, फिर मेरे हाथ से सब-कुछ छूट कैसे गया? देखते-देखते, मेरे और माधवी के बीच अकंपित 'नहीं' की दीवार कैसे खड़ी हो गयी? बारह दिन से रोज फोन करता हूं, एक नहीं, तीन-तीन, चार-चार बार, फिर मेरी आवाज के नंगे तार को छूकर भी वह बेअसर कैसे रहती है? यह कैसी दीवार है जिसे फोड़कर बिजली का करंट उस तक पहुंच नहीं पाता, शरीर तनिक तड़फड़ाता नहीं, आवाज से बिलबिलाहट जाहिर नहीं होती। दीवार के उस पार वह देख नहीं सकता, सुनने को अधिक कुछ मिलता नहीं; तिलक रोड वाले घर गया तब भी वह नहीं दीखी। दुबारा जाने में वितृष्णा अनुभव होती है। सफेदपोश अमीरजादों का वह समूह, जैसे सफेद उकाब घात लगाये बैठे हों! कंचों-सी भावविहीन उनकी आंखों ने एक सम्मिलित दृष्टि उसपर डाली थी, क्षणांश के लिए उनमें जुगुप्सा की धुंध छायी थी, फिर वही भावहीन ठंडापन जम गया था। कौशल को लगा था उसका तीसरा नेत्र आज खुलकर रहेगा! पर···

मरने दो! प्रलय एक दिन होगा, वह जानता है। अभी सवाल माधवी का है। वह साफ महसूस कर रहा है कि दीवार के पीछे खड़ी माधवी, जिसे वह देख नहीं सकता, धीरे-धीरे लुप्त हो रही है, रोज थोड़ा-थोड़ा सिकुड़कर, मोम की प्रतिमा आग की तपिश पाकर रफ्ता-रफ्ता पिघल रही हो जैसे। नहीं, माधवी लोप नहीं हो सकती। रुपये-पैसे चाहे उसे मिलने बंद हो जायें, इतनी तपस्या-साधना से प्राप्त किया अक्षय पात्र उसके हाथ से छिन जाये पर माधवी को वह नहीं छोड़ सकता। उसकी मौजूदगी उसे चाहिए। अपने अस्तित्त्व के आतंक से वशीभूत उसका फूलता-मुरझाता अस्तित्त्व उसे चाहिए। अपना अस्तित्त्व बचाये रखने का यही एक उपाय है उसके पास। अपना कहने को है क्या कौशल के पास, सिवाय उस 'मैं' के, जो माधवी के संसर्ग में बार-बार पृथ्वी पर गिरकर दुगुना-

चौगुना आकार ग्रहण करता रहा है। आधारशिला है माधवी, वह न रही तो इतनी मेहनत से बनाया शीशे का महल नीचे गिरकर चकनाचूर हो जायेगा। बहुत-कुछ करने को बाकी है···सभी कुछ करने को बाकी है ! उसे कुछ अद्वितीय लिखना है ! स्क्रीनप्ले के वे दो-चार पन्ने तो भूमिका-भर हैं। उसे एक महान् उपन्यास का सृजन करना है, ऐसा उपन्यास जो कभी लिखा नहीं जा सकता अगर कौशल उसे लिखने से चूक गया। माधवी न रही तो उपन्यास लिखा नहीं जा सकेगा। यह माधवी, जिसे कौशल जानता है, इसका सृजन भी तो कौशल ने ही किया है। कमजोर रचना वह बर्दाश्त नहीं कर सकता, अपना आत्मविश्वास डगमगाने नहीं दे सकता। एक रचना कमजोर निकल जाये तो दूसरी भी···

माधवी को अपने आसपास बनाये रखना होगा। यह इम्तिहान है कौशल के कलात्मक जीनियस का, साहित्य पर पकड़ की उसकी बारीकी का, इसमें उसे पास होना ही होगा। जैसे भी हो !

उसने एक लंबी सास भरकर तय किया कि रस्सी को इतना नहीं खीचना चाहिए कि टूट ही जाये। कुछ दिनों के लिए उसे ढीला छोड़ना होगा फिर एक झटके में···! रचना करने के लिए जो संतुलन व्यथा और विवेक के बीच, उन्माद और तटस्थता के बीच, तनाव और तर्क के बीच बनाये रखना होता है, वही माधवी को बचाये रखने के लिए भी जरूरी है। ठीक है, जो करना ही है, करेगा कौशल। वर्षों से मस्त विचरते अपने आवेश-आक्रोश पर अकुश लगाने की जी-तोड कोशिश मे वह होंठों से लगी सिगरेट से तावड़तोड निकल रहे धुए पर ही मुहर लगा बैठा। हवा में घुमाकर उसने दुबारा सिगरेट होंठों से लगायी और इतने आहिस्ता-आहिस्ता कश खीचने लगा जैसे पहली बार सिगरेट पी रहा हो।

उन्नीस

तेरहवी की रस्म पूरी हो गयी।

माधवी घर लौट आयी। यह भी एक रस्म है।

घर के बाहर सीढियां नहीं होनी चाहिए। लौटने की ललक न हो तो ऐसा लगता है जैसे पहाड पर चढ रहे हो। निढाल माधवी ऊपर पहुंची और सीधी अपने सोने वाले कमरे की तरफ चल दी। जाडे के बेरहम धुधलके ने सब कमरों में भुतहा नीम अधेरा भर रखा था। माधवी ने उनकी तरफ नहीं देखा। कमरे धूल की परतों के नीचे दबकर स्थायी गोधूलि में खो भी जायें तो उसे क्या। उसका नफा-

नुकसान इसमें कुछ नहीं है। उसे तो बस पनाह चाहिए।

अपने कमरे में दाखिल होकर वह बिस्तर पर लेट गयी और आंखें कोरी छत पर टिका दीं। छतों को सफेद नहीं, काला होना चाहिए, आंखों में इस तरह चुभें तो नहीं। फिर भी···वह सफेद में स्याह देखती चुपचाप लेटी रही।

दरवाजे पर पड़ा परदा हिला और समीर अंदर आया। आकर उसके बराबर में बिस्तर पर लेट गया। हाथ उसके पेट पर डाल दिया। माधवी का बदन निस्पंद पड़ा रहा। दृष्टि छत पर अटकी रही। समय शायद काफी बीत गया।

अंधेरा गहरा हो गया। हरिचरण ने आकर कमरे की बत्ती जला दी पर वापस जाने के बजाय वहीं दरवाजे पर खड़ा रहा।

माधवी का ध्यान उसकी तरफ नहीं गया।

"बीबीजी," उसने धीमे से पुकारा।

माधवी की नजर उसकी तरफ घूमी पर चेहरा भावहीन बना रहा।

"गांव से तार आया है," उसने हिचकिचाते हुए कहा, "घरवाली सख्त बीमार है···" वह जरा रुका पर माधवी की तरफ से कोई सवाल नहीं आया।

"हमें जाना पड़ेगा," आखिर उसने खुद ही कहा, "इस वक्त आप खुद इतना परेशान हैं पर···क्या करें···हमें···"

"ठीक है, जाओ!" माधवी ने कहा।

चौंककर हरिचरण ने उसकी तरफ देखा, फिर पहले से भी ज्यादा झिझकते हुए कहा, "कुछ रुपये, एडवांस···"

"नहीं!" उसकी बात पूरी होने से पहले ही माधवी बोल उठी।

"जी?" चकित हरिचरण के मुंह से निकला, फिर अपने सुने पर अविश्वास करके उसने निष्ठा के साथ बात पूरी कर डाली, "पंद्रह-बीस दिन में लौट आयेंगे, पांच सौ रुपये चाहिए।"

"नहीं," माधवी ने दुहरा दिया।

"क्या कह रही हैं, बीबीजी, बारह साल से आपके पास हूं, पहले तो कभी आपने मना नहीं किया!"

"अब और उधार नहीं दे सकते।"

"उधार हम नहीं मांग रहे," हरिचरण ने अभिमान के साथ कहा, "एडवांस मांग रहे हैं, तनखा से काट लेना।"

"नहीं।"

तभी आलोक अंदर आया और बोला, "एडवांस दे दो। उसे गांव जाना है।"

"नहीं," माधवी ने कहा।

"नहीं कैसे?" आलोक ने आक्रामक होकर कहा, "चाहिए जो उसे।"

समीर उठकर बैठ गया। "दे दो न ममी," उसने फुसफुसाकर कहा, "वो बहुत बीमार है। तुम यहां थी नहीं न, इसीलिए पहले नहीं गया। वो···रो रहा था!" आखिरी बात उसने उसके कान के पास मुह लाकर कही।

"साहब से बात करो," कहकर माधवी ने आखें बंद कर ली।

"तुम क्यो नहीं दे सकती!" आलोक आकर एकदम उसके सिर पर सवार हो गया।

"पापा से बात करो।"

"पापा नहीं हैं। देर से आयेंगे।"

"जब आयें बात कर लेना।"

"तब बात कैसे करेगा? उसे अभी फौरन जाना है!" आलोक पूरी ताकत लगाकर चीखा। उसका मुंह लाल हो गया था, आखों में आंसू छलछला आये थे, गुस्से और हताशा से बदन कांप रहा था। समीर ने नीरव रहकर क्षण-भर उसे देखा, फिर फटी आवाज में चिल्लाया, "तू ममी को क्यो तंग कर रहा है!" और रो दिया।

हरिचरण ने आगे बढ़कर आलोक का हाथ पकड़ लिया और उसे कमरे से बाहर ले जाने लगा।

"दरवाजा बंद करते जाओ और बत्ती भी," माधवी ने पीछे से कहा और करवट बदलकर समीर की तरफ पीठ कर ली।

सुबह नौ बजे के बाद आंख खुली तो देखा राकेश उसके बराबर में बैठा उसका चेहरा पढ़ रहा है। एक दफा उसकी तरफ ताककर माधवी आखें बंद करने जा रही थी कि उसने कसकर उसका हाथ थाम लिया। दूसरा हाथ माथे पर रखकर आखें खुली रखने पर मजबूर कर दिया। कोमल स्वर में कहा, "सुनो, तुम अपना उपन्यास पूरा कर डालो।"

माधवी आंखें बंद करना भूल गयी। अपलक उसे देखती रह गयी।

"तुम एक उपन्यास लिख रही थी न?"

माधवी चुप रही।

"पूरा नहीं हुआ है न?"

"नहीं।"

"कर लो।"

"नहीं।"

"क्यों नहीं?"

"होगा नहीं।"

"होगा। जरूर होगा। करके देखो तो सही।"

"नहीं," कहकर माधवी ने आंखें बंद कर ही लीं।

"अच्छा छोड़ो, पूरा मत करो। जितना लिखा जा चुका, उतना तो मुझे दिखलाओ। उठो अब।" राकेश ने जबरदस्ती हाथ पकड़कर उसे उठा दिया और कहा, "जाओ, लेकर आओ।"

यंत्रचालित-सी वह उठी और आलमारी खोलकर खड़ी हो गयी। सुस्त भाव से खानों में हाथ डालकर देखा, पाण्डुलिपि नहीं मिली। "बाद में देखूंगी," उसने कहा, "कागजों के बीच दबा होगा।"

पर राकेश नहीं माना। उसे बांह से घेरकर आलमारी के पास रोके रखा। कहा, "कागज निकालकर देखो।"

और चारा न देख, माधवी मंथर गति से एक-एक कागज निकालकर बाहर डालने लगी। पलंग पर कागजों का अंबार लग गया। पुरानी पत्रिकाएं, जहां-तहां से आये पत्र, उसके प्रकाशित उपन्यास की पांडुलिपि, प्रकाशित कहानियों की अखबारी कतरनें, टंकित प्रतिलिपियां, हस्तलिखित प्रतियां, ढेरोढेर आधे-पौने लिखे कागज और कौशल की कहानियों की कतरनें। कौशल के कहानी-संकलन की टंकित प्रतिलिपि, कौशल के खत, कौशल की कहानियों पर प्रतिक्रियाएं, कौशल के लेख, कौशल का हलफनामा, कौशल का···

पागल की तरह वह उन्हें फर्श पर पटकने लगी। पलंग से भी बड़ा-ऊंचा ढेर फर्श पर उठ आया। आलमारी खाली हो गयी या शायद नहीं हुई। पूरे कमरे में एक अजीब-सी बदबू फैल गयी जैसे मुर्दाघर में रखी बासी लाशें गंधा रही हों। साड़ी के पल्लू से नाक दबाकर, माधवी ने अपने चारों तरफ एक बेचैन नजर डाली। राकेश नहीं दीखा। कहां गया, कागजों की इस हौलनाक चारदीवारी के बीच उसे अकेला छोड़कर? खिड़की के बाहर से चिलचिलाती धूप मुंह चिढ़ा रही है, भीतर सीलन ही सीलन है। शरीर का एक-एक रोमछिद्र पसीने से चिपचिपा रहा है।

अनदेखती आंखों से उसने कागज उठाये और वापस आलमारी में ठूंसने शुरू कर दिये। बिना तरतीब, जो जब हाथ लगा, अंदर अड़ा दिया और दोनों पल्ले कस कर बंद कर दिये। पर कागजों की बू पर ताला नहीं लगा। वह वैसे ही कमरे में बसी रही। और तो और, खुद उसके कपड़ों और बदन से वह-बहकर उसे बेचैन करने लगी। काश कि कपड़ों की तरह वह शरीर की त्वचा भी उतार फेंक सकती! वह भागकर गुसलखाने में जा घुसी और फव्वारे को पूरी रफ्तार से खोलकर उसके नीचे बैठ गयी। और बैठी रही।

रात के सन्नाटे मे, जोर-जोर से सांस लेने की कोशिश मे हांफती, बदहवास माधवी बिस्तर पर उठ बैठी। दोनों हाथों से कसकर पलंग की पाटिया पकड़ ली। इस बिस्तर पर कैसे पहुच गयी, अभी कुछ देर पहले तो तिलक रोड के घर के अंदर ऊपर-नीचे सीढ़ियों पर दौड लगाती, होश खोती चली जा रही थी। बीसियो कमरे थे—सूने, अकेले और अंधेरे से अटे, कुछ सीढ़ियों के ऊपर, कुछ सीढ़ियों के नीचे। हर कमरे के एक-एक कोने मे झुक-झुककर माधवी एक कागज तलाश कर रही थी। एक कोने से दूसरे कोने तक, एक कमरे से दूसरे कमरे मे, एक मंजिल से दूसरी मंजिल पर; बदहवास, हताश, विपण्ण, वह दौड़ी चली जा रही थी। पर ···कागज···नही मिला···नही···ही···मिला···

किस पैशाचिक शक्ति ने उसे तिलक रोड से उठाकर यहा ला पटका? कहां है वह कागज? कौन रोक सकता है उसे तलाश करने से?

वह झटके से उठ बैठी। आजाद तो है वह। एक लबी सांस भरकर उसने चेहरे का पसीना पोंछा और भागती हुई बराबर के कमरे में जा घुसी। अभ्यस्त हाथो ने बिजली का स्विच ढूढ निकाला और कमरे से अंधेरा भाग गया। दौडकर माधवी ने आलमारी खोल ली। पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी···एक फाइल निकाली और जमीन पर पटक दी। फिर दूसरी, तीसरी, चौथी···फर्श पर एक ऊंचा ढेर उठा और दायें लुढक गया। दूसरा ढेर बढा और बायें पसर गया। हर आलमारी के पास और दूर-दूर तक फर्श पर कागजों के ढेर लुढकते गये। पूरे कमरे की जमीन पर लावारिस शरणार्थियों की तरह कागज दम तोड गये। और उस नामुराद बाढ के बीच माधवी इस तरह फंस गयी कि बाहर निकलने के लिए कागजो को रौंदना पडा। फाइलो के बेतरतीब ढेर को कुचलती हुई वह आगे लडखड़ायी तो देखा सामने राकेश है। रात कब की बीत गयी। सुबह की रोशनी में फाइलों के खुले होंठ चीत्कार कर रहे है। वैसी ही चीत्कार करती नजर से राकेश ने उसे देखा।

"मेरा उपन्यास!" माधवी ने कहा।

हाथ से खींचकर राकेश ने उसे कागजो के भवरजाल से बाहर निकाल लिया और ले जाकर बिस्तर पर लिटा दिया। लेट तो वह गयी, आखें भी बद कर ली पर नींद, हर करवट के साथ दूर भागती चली गयी। करवटें बदलते-बदलते उसने महसूस किया, घर धीरे-धीरे खाली हो रहा है। सबके पास अपना-अपना काम है और दिन और रात के बीच का फर्क बहुत मानी रखता है। अब शायद दिन है··· इसीलिए घर मे अब वह अकेली है।

वह उठी और वापस राकेश के कमरे मे जा पहुंची। देखा, दरवाजे पर ताला लटक रहा है। खिडकी से झांककर देखा, फर्श पर फाइलो का ढेर वैसा-का-वैसा उघडा पड़ा है। उनमें तो था नही उसका उपन्यास···

वह आलोक-समीर के कमरे में जा घुसी और उनकी आलमारियों में ढूंढ़ना शुरू कर दिया। पहले समझदार आदमी की तरह कापियों-कितावों के वीच हाथ डालकर देखा; नहीं मिला तो और उपाय न देख, उन्हें वाहर निकालना शुरू किया। वेतरतीव उन्हें जमीन पर पटका नहीं। एक ढेर कितावों का वनाया, एक कापियों का। कवायद करते स्कूली वच्चों जैसी पंक्तियां सज गयीं। फर्श पर छोटी-वड़ी कितावों की अलग-अलग मीनारें खड़ी हो गयीं। पर उसका उपन्यास उनमें नहीं था।

लंवी सांस भरकर, उसने एक वार फिर उन्हें अलग करके छांटना शुरू किया। भरसक कोशिश की कि तरतीव वनी रहे, कितावें इधर-उधर विखरें नहीं पर ज्यादा देर तक अपने को संभाले न रख सकी। एक वदहवासी उसपर हावी होती चली गयी और हाथ से छूटकर कापियां-कितावें फर्श पर विखरने लगीं। लग रहा था, जितनी वार उन्हें उलटती-पलटती है, उनकी संख्या वढ़ती जाती है। अभी तो सव-की-सव फर्श के आधे हिस्से में आराम से टिकी हुई थीं और अव क्या हुआ कि एक कोने से दूसरे कोने तक फैल गयीं और फिर भी कुछ वाकी हैं, जिन्हें पहले से उल्टाई कितावों के ऊपर पटक देने के सिवाय चारा नहीं है। हाथ की तमाम कितावें जव उसके इख्तियार से वाहर हो गयीं तो माधवी निढाल होकर, वहीं कितावों के ऊपर चित्त पड़ रही।

वाहर दरवाजे पर चटखनी नहीं लगी; रसोईघर के दरवाजे वंद रहे।

वाहर दरवाजे की घंटी एक-दो-तीन वार घनघनायी। माधवी नहीं उठी। भड़भड़ाकर दरवाजा खुला और दोनों वच्चे अंदर आ गये।

"हमारी कितावें!" चीखकर समीर ने कहा और फफककर रो दिया। वुत वना आलोक देर तक जमीन पर विखरी कितावों को और उसे ताकता रहा, फिर अचानक हाथों से मुंह ढांपकर वह भी रो पड़ा। माधवी फटी-फटी आंखों से उन्हें देखती रही।

हाथ में डवलरोटी-मक्खन थामे राकेश भीतर आया तो दोनों वच्चे उससे ऐसे चिपट गये जैसे कोई हौलनाक सपना देखकर डर गये हों।

राकेश उन्हें पकड़कर वाहर लिवा ले गया। माधवी को नींद आ गयी।

और फिर हर रात, माधवी तिलक रोड के अंधेरे-सूने-भुतहे घर में भटकती घूमती और सुवह आंख खुलने पर इंतजार करती कि घर के सव प्राणी अपने-अपने काम पर निकल जायें, जिससे अकेले खाली घर के अंदर वह अपनी तलाश जारी रख सके।

"पांडुलिपि वाद में ढूंढ़ लेना," आखिर राकेश ने कहा, "अभी आगे का लिख लो। कुछ दुवारा भी लिखा गया तो हर्ज क्या है?"

माधवी के वदन में विजली का शॉक लगा। उसने दिमाग पर जोर देकर

सोचना शुरू किया, कहां आकर रुका था उपन्यास? अब तक क्या लिखा है उसमें ? कहना क्या चाह रही थी वह ? कितना कहा जा चुका, कितना शेष है ? जरूरी क्यों हो गया था वह लिखना, जो उसने लिखा और अब याद नहीं आ रहा···कुछ भी तो याद नहीं आ रहा···

सहसा माधवी खिलखिलाकर हँस पड़ी। एक घनघोर शब्द, बादलों की टकराहट की तरह, जब पानी बरसता नहीं।

"सुनो," उसने कहा, "मैंने तय किया है कि आज के बाद मैं जो कुछ भी लिखूंगी, उसके संपूर्ण अधिकार कौशल कुमार को सौंप दूंगी।"

भौंचक राकेश से कुछ कहते नहीं बना और तभी फोन बज उठा।

"परसों मणि कौल आ रहा है," कौशल ने कहा।

"बहुत दिन बाद याद किया," माधवी ने कहा, "आपसे एक जरूरी बात कहनी थी। मैंने एक हलफनामा लिखा है, जिसके मुताबिक मैं भविष्य में लिखे जाने वाले अपने सारे उपन्यासों के सर्वाधिकार आपको सौंप रही हूं।"

"क्या ?"

"हां, याद है, एक हलफनामा आप मुझे दे गये थे। उसके बदले में मुझे भी तो कुछ करना चाहिए वरना दुनिया कृतघ्न न कहेगी !" कहकर माधवी चीख-चीखकर हँसने लगी।

"क्या वक्त तय करूं मणि से आपसे मिलने का ?" हँसी से जैसे घबराकर कौशल ने कहा।

"जो आप चाहें।"

"मैं आऊं या नहीं उनके साथ ?"

"जरूरत समझें तो आ जाइएगा।"

"आप क्या चाहती हैं ?"

"कुछ नहीं," कहकर माधवी फिर हँसी तो कौशल ने फोन काट दिया।

पच्चीस तारीख की सुबह से माधवी ने मशीन की तरह मणि कौल के स्वागत की तैयारी की। कौशल ने बाद में बतलाया था कि वे शाम चार बजे उनके घर आयेंगे। नारियल की बर्फी तैयार की, चिउड़ा भूना, अपने सबसे सुरुचिपूर्ण प्लेट-प्लेट और लेस लगे नैपकिन निकाले, दार्जिलिंग से आया रंगीली-रंगलिट का नया चाय का डिब्बा खोला और सब-कुछ करीने से मेज पर सजा दिया। खुद बादामी रंग की ढाकई साड़ी पहनकर मेज के बराबर में आ सजी।

वक्त गुजरने लगा। चार बजे, साढ़े चार···पांच। माधवी अपनी जगह बनी रही। उसे कोई जल्दी नहीं थी। आधा घंटा और बीता। फोन की घंटी बजी।

माधवी ने घड़ी देखी। वक्त ने लम्हों से हटकर घंटों की शक्ल अख्तियार की।
उसने फोन उठा लिया।

"मणि अभी यहां से गया है, एक जरूरी मीटिंग में। आपके यहां सात-साढ़े सात तक पहुंचेगा। माफी मांग रहा था," कौशल ने कहा।

माधवी अपनी जगह बैठी रही। ढाकई साड़ी का करारा कलफ बदन में चुभने लगा। लम्हे घड़ी की सुई की नोक पर जा टंगे। उसकी चुभन महसूस करती माधवी जड़ हो गयी।

साढ़े सात बज गये। राकेश घर लौट आया। वह भी उसके बराबर में, पत्रिका हाथ में लेकर, इंतजार करने बैठ गया। पर उसका साथी नहीं बन पाया। उसके चेहरे पर सुकून था और इंतजार के जल्द पूरा होने का यकीन। उसकी आस्था माधवी के लिए घड़ी की दूसरी सुई बन गयी। इससे तो राकेश न आया होता।

नौ बजे कौशल का फोन फिर आया। "अभी-अभी मणि कौल से बात हुई है। उसे खेद है कि आपके पास नहीं आ सका। कल बंबई वापस जा रहा है। दो दिन बाद आयेगा। तब आपसे मिलेगा। अनुबंध मुझे दे रहा था पर मैंने कह दिया आप ही से बात करें।"

"आप मुझे उनका फोन नंबर दे दीजिए," माधवी ने कहा।

"वह मैं नहीं दे सकता, मणि को पसंद नहीं है।"

"नहीं पसंद है तो न सही," माधवी ने कहा, "नंबर मुझे देना ही होगा, यह मेरा हुक्म है।"

"क्या!" कौशल चौंक उठा।

माधवी हंस पड़ी।

"अच्छा लिखिए," कौशल ने कहा, "७२५६१२."

आधे घंटे तक माधवी नंबर घुमाती रही, घंटी नहीं बजी। सहायता सेवा से मिलाने को कहा, नहीं मिला। आखिर पूछताछ से पूछा नंबर किस पते पर है; मालूम हुआ कि दिल्ली में ऐसा कोई नंबर नहीं है।

साढ़े दस बजे कौशल का फोन आया। "मणि कौल ने अपना बंबई जाने का कार्यक्रम स्थगित कर दिया। कल सुबह साढ़े आठ बजे आपको फोन करेगा तब···"

उसकी बात सुनने का धैर्य माधवी में नहीं था।

"क्या नंबर बतला दिया आपने? पूछताछ वाले कहते हैं, ऐसा कोई नंबर दिल्ली में नहीं है," उसने कहा।

"कोई नहीं···" अस्फुट स्वर में माधवी ने कहा और फोन हाथ से छोड़ दिया।

राकेश ने सुना तो सिर पीट लिया। फिल्म वनवाने के मोह में वह हर महीने कौशल को और रुपया देता रहा है, जाहिराना तौर पर कंपोजिंग एजेंसी के चालू खर्च के लिए।

'वढ़िया आदमी हैं राकेश जी!' माधवी की याददाश्त ने मुंह चिढ़ाया और वह लड़खड़ाती हुई विस्तर पर जा पड़ी।

उस एक रात में माधवी ने कई मंजिलें तय कर लीं। सुवह नौ वजे जव कौशल का फोन आया तो वह उसके लिए पूरी तरह तैयार थी।

"मणि कौल से मिलकर आ रहा हूं। वह शाम को पांच वजे आपके घर···" नन्हीं पर चपल फुदकी की तरह कौशल का स्वर कूज रहा था कि माधवी ने वात काट दी।

"मेरी वात हो गयी उनसे," उसने कहा।

"क्या?" काले गिरगिटमार ने फुदकी झपट ली। आसमान छूती चिल्लाहट मची और मौत का सन्नाटा छा गया।

छाया रहा।

फिर कौशल के गले से सवाल ऐसे निकला जैसे खून की धार वह रही हो, "कैसे?"

"आपने कहा था, वे सुवह साढ़े आठ वजे मुझे फोन करेंगे, तो कर लिया उन्होंने," माधवी ने मधुर स्वर में कहा।

"मणि कौल ने आपको फोन किया था?"

"जी।"

"उन्होंने कहा, वे मणि कौल वोल रहे हैं?"

"जी हां, इसमें अचरज की क्या वात है?"

"नहीं, नहीं, वह तो···वोल कहां से रहे थे?"

"पता नहीं। घर से ही वोल रहे होंगे।"

"कहा क्या उन्होंने?"

"यही कि फिल्म वनाने का उनका कोई इरादा नहीं है।"

"यह कैसे हो सकता है!"

इसके वाद चुप्पी इतनी देर खिंची कि माधवी को लगा दूसरे सिरे पर और कोई हो, कौशल नहीं हो सकता। उसने फोन काट दिया।

पांच मिनट वाद दुवारा वजा।

"सचमुच आपकी मणि कौल से बात हुई है ?" उसने पूछा ।
"जी ।"
"उन्होंने फोन किया था ?"
"जी।"
"दिल्ली से ?"
"आप उनसे दिल्ली में ही मिले थे न ?"
"जी···जी हां···"
"बस फिर, दिल्ली से ही किया होगा।"
"यह कैसे हो सकता है !"
"क्यों, आपने कहा था न, वे फोन करेंगे।"
"क्या कहा उन्होंने ?"
"यही कि वे फिल्म नहीं बना रहे हैं।"
"इसके अलावा क्या कहा ?"
"कुछ नहीं।"
"मेरा जिक्र किया ?"
"हां, कहा, आप उनसे मिले थे।"
"कहानी कैसी लगी, कुछ कहा ?"
"नहीं।"
"बिल्कुल कुछ नहीं ?"
"नहीं।"
"आपकी कहानी की बात हुई थी या मेरी !"
"किसीकी नहीं।"
"फिर आपने क्या कहा ?"
"कुछ नहीं।"
"तब ?"
"उन्होंने कहा, वे फिल्म नहीं बना रहे।"
"अपने-आप क्यों कहा उन्होंने ?" कौशल ने बुदबुद की ।
"क्यों, आपकी उनसे बात जो हो चुकी है।"
"हां···पर···बड़ी अजीब बात है !"
माधवी चुप रही ।
"मणि कौल आपसे बात कैसे कर सकते हैं !" कौशल के होंठों से अब भी खून की बूंदें टपक रही थीं।
"क्यों, आपने कहा था न, सुबह साढ़े आठ बजे वे मुझे फोन करेंगे तो कर लिया उन्होंने," माधवी ने घाव पर तीखा मलहम लगाते हुए कहा।

"यह कैसे हो सकता है !" कौशल ने पगलाई आवाज में कहा।

माधवी चुप रही।

"यह नहीं हो सकता !"

माधवी चुप रही।

फोन कट गया।

पांच मिनट बाद फिर बजा।

"सच बतलाइए प्लीज, वाकई मणि कौल ने आपसे बात की है ?" कौशल की आवाज गोली लगे पनकौवे की तरह कांप रही थी।

"हां," माधवी ने कहा।

"यह कैसे हो सकता है !" कौशल चीखा।

माधवी चुप रही।

फोन कट गया।

अब माधवी को पूरे व्यापार में मजा आने लगा था। अपने बिछाये जाल में खुद फंसा आदमी कितनी मनोरंजक चेष्टाएं करता है। चिकनी रोटी का ललचाता टुकड़ा लगाकर चूहेदान तैयार करें और चूहे के बजाय खुद उसमें कैद हो जायें तो बाहर खड़े चूहे को देखकर, कैसे-कैसे रोचक भाव आयेंगे हमारे चेहरे पर। आश्चर्य, अविश्वास, शेखी, और फिर धीरे-धीरे सिर पर सवार होती हताशा, नैराश्य और पागल होने का अहसास। कौशल का चेहरा दिखायी नहीं दे रहा पर आवाज ही काफी मनोरंजक है। माधवी उसकी हर जुंबिश से वाकिफ है। वाह, मेरे दोस्त, अब तुम और मैं एक ही दायरे के अंदर कैद हैं। क्या झूठ है और क्या सच ? क्या यथार्थ है और क्या नाटक ? क्या है वास्तविकता और क्या कल्पना और फरेब के बल पर खड़ा किया गया फंतासी का संसार ?

ग्यारह बजे, सूखा चेहरा लिये राकेश घर आया। कंपोजिंग एजेंसी देखने गया था! जहां छह महीने पहले टाइप फिट होता देखकर आये थे, वहां अब कपड़े सिल रहे थे। दरजी की दूकान पूरे जोर पर थी। आसपास पूछताछ की तो सभी दूकानदार ठठाकर हंस दिये थे। एक ने तो मुंह पर ही राकेश को 'भोले बाबू' की उपाधि से सुशोभित कर दिया था। किराये पर लाये गये टाइप की बात बहुतों को अब तक याद थी।

माधवी को अचरज नहीं हुआ। लगा यही सच है, युक्तिसंगत और न्यायपूर्ण। एजेंसी का होना झूठ होता, तर्करहित और असंगत।

राकेश का चेहरा देखने के काबिल है। उसपर वही भाव आ-जा रहे हैं; आश्चर्य, अविश्वास, नैराश्य और बेवकूफ बनाये जाने का अहसास, जो सारी

सुबह कौशल की आवाज से प्रकट होते रहे हैं।

सहसा माधवी बेकाबू हो हँस दी।

तड़पकर राकेश उठ खड़ा हुआ। "तुम दोनों ने मिलकर अच्छा बेवकूफ बनाया मुझे!" हिकारत के साथ उसने कहा और तेजी से बाहर निकल गया।

हँसते-हँसते माधवी रो दी। पर कान तब भी फोन की तरफ लगे रहे। राकेश गया, अब और बचा क्या है जिंदगी में।

घंटी बजते ही उसने झपटकर चोगा उठा लिया।

फोन कटता-बजता रहा।

बार-बार कौशल पूछता, वाकई मणि कौल से आपकी बात हुई थी? माधवी कहती, हाँ और भौचक कौशल चीख पड़ता, यह कैसे हो सकता है!

दुपहर तक यह सिलसिला चलता रहा फिर शापग्रस्त पागल की तरह कौशल फट पड़ा, "मणि कौल जब दिल्ली में है नहीं तो आपको फोन कैसे किया!"

"बंबई से किया होगा," माधवी ने सहज भाव से कहा।

"आपका नंबर उनके पास कैसे आया?"

"आपने दिया होगा।"

"पर मेरी तो उनसे आपके बारे में कोई बात ही नहीं हुई।"

"जब मेरी कहानी पढ़ने को दी तभी बतलाया होगा।"

"कहानी दी ही नहीं।"

"आपको याद नहीं है," माधवी ने बेहद मीठे स्वर में कहा, "कहानी दिये बिना फिल्म बनने की बात कैसे हो सकती थी।"

"फिल्म बनने की बात नहीं हुई!" कौशल जोर से चीखा जैसे कलेजे में घुपा चाकू खींचकर बाहर निकाल रहा हो।

माधवी का बदन उत्तेजना और प्रहर्ष से कांप उठा। वह धीमे से हँसी और सरस स्वर में बोली, "यह कैसे हो सकता है? सुबह उन्होंने मुझसे बात की है। यह जरूर कहा कि अभी फौरन फिल्म बनाने के लिए पैसा नहीं है पर यह भी विश्वास दिलाया कि फाइनेंस कारपोरेशन से उधार लेकर, बहुत जल्दी, वे मेरी कहानी पर फिल्म बनायेंगे। मेरी 'आधा सच' उन्हें बेहद पसंद आयी है।"

"और मेरी कहानी?" कराहकर कौशल ने पूछा।

"उसका कोई जिक्र उन्होंने नहीं किया।"

"यह कैसे हो सकता है!"

"कह रहे थे, आप उनसे मिले जरूर थे, अपनी कहानियां भी पढ़वायी थीं पर फिल्म के लायक नहीं लगीं।"

"नहीं ! यह नहीं हो सकता !" कौशल तड़पकर चीखा।

"आप खुद उनसे पूछ देखिए।"

"मैं कैसे पूछ सकता हूं !"

"क्यों ? बंबई फोन कर लीजिए ? नंबर दूं ?"

"वे मुझसे बात नहीं करेंगे।"

"क्यों नहीं करेंगे ? बहुत शालीन आदमी हैं। फिर आपकी इतनी इज्जत करते हैं। वह तो फिल्मांकन में आपको अपने साथ लेना चाहते हैं।"

"किसने कहा ?"

"खुद उन्होंने।"

"आपसे कहा ?"

"जी हां।"

"कब ?"

"आज सुबह।"

"क्या कहा ?"

"यही कि आपकी कहानी इस्तेमाल नहीं कर सकते पर फिल्मांकन में आपको अपने साथ रखना चाहते हैं। कह रहे थे, विजुअल का आप जैसा ज्ञान और कहीं नहीं देखा।"

"उन्होंने कहा ?"

"हां।"

"यह कैसे हो सकता है !"

"आप बात कर लीजिए उनसे। न हो तो जब मुझसे मिलेंगे, मैं याद दिला दूंगी। आपका पता भी दे दूंगी।"

"कब मिलेंगे आपसे ?"

"अगले महीने। दिल्ली आने पर। बीस तारीख को।"

"अगली बीस को वह दिल्ली आ रहे हैं ?"

"जी हां। कह तो रहे थे। वैसे चिट्ठी लिखकर पक्का कर देंगे।"

"अजीब···बात···है" कौशल के मुंह से हर शब्द ऐसे निकला जैसे टिकटी पर टंगा आदमी कोड़े खाकर कराह रहा हो।

माधवी के होंठों पर क्रूर, आह्लादपूर्ण मुस्कराहट खेल गयी। कब-कब कोड़ा हाथ आता है। पूरे वेग के साथ उसने उसे घुमाया और कहा, "एक बात और बतलानी थी। एजेंसी के लिए ग्राहक मिल गया है। कल राकेश उसे साथ लेकर एजेंसी दिखला आये हैं।"

"क्या ?" चीत्कार के बाद सन्नाटा ! कोई-कोई चोट बेहोश भी कर देती है।

माधवी चुप रहकर उसकी यातना का स्वाद लेती रही।

आखिर उसे होश आया। "कैसे ?" उसने कहा, "चाबी किससे ली ?"

"चाबी की क्या जरूरत थी ? आपका लड़का काम देखता है न, वह वहीं तो था।"

"परसों आप एजेंसी पर रहिएगा। राकेश उसे लेकर आयेंगे," माधवी ने हँसकर कहा, "सौदा तो भई, आपको तय करना पड़ेगा।"

उधर की बेहोशी शायद टूटी नही। माधवी ने फोन काट दिया और उसके दुवारा बजने का इंतजार करने लगी। एक मिनट भी नही बीता था कि घंटी बज उठी।

'वह कहां एजेंसी देखकर आये हैं ?" कौशल ने पूछा।

"वहीं जहां आपने दिखलायी थी।"

"एजेंसी वहां नही है," कौशल ने जवाबी वार किया।

"अच्छा-अच्छा, शिफ्ट कर दी होगी," माधवी ने कहा, "आपका लड़का नयी जगह ले गया होगा।"

"कैसे हो सकता है !" वार खाली जाता देख वह तड़पा।

"क्यों नही हो सकता ?"

"चाबी मेरे पास है !" वह जोर से चीखा।

"हां-हां, पर एक चाबी लड़के के पास भी है, तभी तो काम देख पाता है," माधवी ने मधुर स्वर में कहा।

"आजकल नहीं देखता। एजेंसी बंद है।"

"नही," माधवी ने इतने मीठे स्वर में कहा कि खुद उसपर अचरज हो आया, "बंद नही है। राकेश उसे चलाने के लिए बराबर पैसा दे रहे है।"

"कुछ दिन पहले तक चल रही थी, अब बंद है," कौशल ने कहा।

"तब जरूर राकेश कुछ दिन पहले गये होंगे। खैर, ग्राहक एजेंसी देख चुका है। अब आप तीस हजार पर सौदा तय करके हमारे रुपये वापस करवाइए।"

"यह झूठ है !" कौशल जोर से चीखा।

"क्या झूठ है ?"

"जो है नही उसे कसे देखा जा सकता है !"

"बेच दी या कभी खोली ही नही ?" माधवी ने कहा और फौरन महसूस किया कि इस सवाल ने कौशल को टिकटी से उतार दिया है। बंधन खुल गये हैं, कोड़ा दूर जा पड़ा है। घायल लकड़बग्घे की तरह हमला करते हुए उसने कहा, "खोली क्यों नहीं ? बाकायदा खोली थी। पर आपके परम मित्र राजेश्वर मिश्र सलामत रहें, वहां से बराबर सामान चोरी करवाते रहे। मेरा सर्वनाश करने के लिए उन्होंने क्या नही किया ! आप नही जानती मुझे कितनी मुसीबतों का सामना करना पड़ा है। आप…"

"जानती हूं," माधवी ने बात काटकर कहा; अपने प्रभाव से निकल भागने की छूट वह उसे नहीं दे सकती। रेंगकर कुछ दूर जाये तो और बात है; आखेट का मजा दुगना हो जायेगा। माधवी खुद अपने पर मुग्ध है। लग रहा है मीलों दूर देख सकती है, सुन सकती है, सूंघ सकती है; जो पास नहीं है उसे छू सकती है, उसका स्वाद ले सकती है। अब इस दिलचस्प खेल को वह नहीं छोड़ सकती।

"मैं अच्छी तरह जानती हूं, वहां अब कुछ नहीं बचा," उसने कहा।

"आप जानती हैं, राजेश्वर मिश्र वहां चोरी···?" कौशल चकित-स्तब्ध था।

"करवाते रहे हैं, जानती हूं। अब तो मणि कौल से फिल्म बनवानी ही पड़ेगी नहीं तो हमारा रुपया वापस कैसे मिलेगा ? उनका खत आते ही मैं आपको लिखूंगी।"

"उनका खत आयेगा आपको यकीन है ?"

"बिल्कुल। कहा है तो क्यों नहीं आयेगा। आप नहीं जानते मेरी कहानी उन्हें कितनी पसंद आयी है और आपसे तो वह बुरी तरह प्रभावित हैं। कह रहे थे आपको स्थायी तौर पर फिल्मांकन के लिए अपने साथ लेना चाहते हैं।"

"सच ?"

"बिल्कुल। मैं सूचना देती रहूंगी आपको। हजार रुपया महीना आपको देने को तैयार हैं।"

"सच?"

कितना आसान है एक के बाद एक झूठ बोलते चले जाना। और कितनी खूब-सूरत, पारदर्शी और रंगबिरंगी है झूठ की दुनिया। सच क्या है उसके सामने। एक ठोस, मटमैला और खुरदुरा पत्थर। झूठ की दुनिया में उड़ान भरने वाला मन, कल्पना के गुब्बारे में सुई चुभाकर, पथरीली धरती पर क्यों उतरेगा ?

पूरा दिन बीत गया।

कौशल टेलीफोन बूथ से बाहर नहीं निकला।

खाने-पीने की सुध नहीं ली।

बस अठन्नी पर अठन्नी खांचे में डालता रहा।

सिर की नसें फूलकर गुब्बारा हो गईं। सोचने-समझने की शक्ति जवाब दे गयी। जमीन पर टिके पांव उखड़ने लगे। अपनी तर्कबुद्धि से छुटकारा पाने के लिए जिस सहारे की उसे जरूरत थी, वह मिल गया था। पर हवा में तर्कहीन विचरने के परमानंद को प्राप्त करने से पहले धरती का गुरुत्वाकर्षण जोर मार रहा था। कौशल का अंग-अंग भयानक पीड़ा से टूट रहा था। सड़ाक-सड़ाक कोड़े बरस रहे थे। मुंह से बार-बार पृथ्वी के कैदी का आर्तनाद फट रहा था, यह कैसे

हो सकता है, कैसे !

धीरे-धीरे उस भयावह यातना में आनंद आने लगा। वह उसके आगे समर्पण करता चला गया। दिमाग का अकुश पूरी तरह हट जाने पर जो सुख मिलता है, उसे वही आदमी जान सकता है जो हर पल दिमाग से काम लेता रहा हो। दर्द की प्रतीती छटपटाहट के बजाय रोमाच पैदा करने लगे तो और क्या चाहिए !

एक अदृश्य जिन्न कौशल को उठाकर ऐसे मायावी जगल मे ले आया था, जहां का हर पेड उसके देखते-देखते फूटा, फूला और फलने लगा। आंखो के सामने से एक पगडंडी गायब हुई कि बड का पेड़ चटखा और नयी पगडंडी खुल गयी। जादू की छड़ी घूमी और पेडों से हीरे-जवाहारात झड़ने लगे; हर झाडी हजार रंगो की रोशनी से जगमगा उठी। उसकी आंखें चुधिया गयी, पांव डगमगा उठे, सारे बदन के रोगटे खडे हो गये। आज एक ऐसे रगीन गुब्बारे की डोर उसकी पकड़ मे आ गयी थी जिसमे हवा भरने का काम उसे नही करना पडा था। जिदगी मे पहली बार। किसी और के भरोसे, हमेशा के लिए हवा मे उठने से पहले, उसने एक बार आंखें पूरी तरह खोल ली और जेब टटोलकर देखी। एक आखिरी अठन्नी बची थी।

पसीजी हथेली की मुट्ठी बांधकर, उसने कुछ देर उसे महसूस किया फिर खाचे मे डाल दिया और बुदबुदा उठा, यह कैसे हो सकता है। माधवी तो कभी झूठ बोलती नही; तो क्या मैं ही पूरा समय सच बोलता रहा।

●●●